साक्षात्कार

संयुक्तांक : 499-500-501
जनवरी, फरवरी, मार्च, 2022

साक्षात्कार

डॉ. विकास दवे
सम्पादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

जनवरी, फरवरी, मार्च, 2022
संयुक्तांक : 499-500-501

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-462003

फ़ोन : 0755 - 2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email - sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।

वार्षिक सहयोग राशि

व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए :₹ 250

संस्थाओं के लिए :₹ 300

आजीवन :₹ 3,000

यह अंक :₹ 75 (रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त)

समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

आवरण : अमरजीत कुमार

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रम

संपादकीय

गंगा जमुनी तहजीब का अर्थ // 05

बातचीत

डॉ. मंजरी शुक्ला से विकास दवे की बातचीत // 07

आलेख

डॉ. शशिकला त्रिपाठी मातृभाषाएँ और हिन्दी बनाम अंग्रेजी // 14
डॉ. सतीश चतुर्वेदी 'शाकुन्तल' पं. दीनदयाल उपाध्याय का जीवन-दर्शन और आधुनिक उपभोगवाद // 22
शुभदा मिश्र : कर्म प्रभाव होहीं बड़ भारी // 29
डॉ. नलिनी श्रीवास्तव कृष्ण भक्ति काव्य और आधुनिकता की अवधारणा // 34
ओम प्रकाश खुराना वैदिक दर्शन : लोकतन्त्र और जीवनमंत्र का मार्गदर्शक // 38
शोभा शर्मा 'म्हारो मालवो म्हारी पेचाण' अन सांस्कृतिक धरोहर // 41
ऊषा सक्सेना बुंदेली भाषा का उद्भव और विकास // 44
शिवचरण चौहान बैताल कहे ब्रिक्रम सुनो // 47
कृष्ण बिहारी पाठक रामचंद्र शुक्ल : प्रेम कसौटी // 49
डॉ. रवीन्द्रकुमार उपाध्याय शिक्षकों को अब चाणक्य बनना होगा // 54
राजेश भण्डारी बाबू संजा लोकपर्व आज भी उतना ही लोकप्रिय // 58
डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव/डॉ मनमोहन प्रकाश साहित्य, शिक्षा एवं शिक्षा नीति // 60
अंजली खेर हिन्दी को पटरानी बनाएँगे // 64
डॉ. रामकिशोर उपाध्याय भारतीय संस्कृति का वैश्विक रूप : संसार को जोड़ने में सक्षम // 67
हार्दिक दवे मीडिया में हिन्दी का प्रभाव और हिन्दी का योगदान.... // 72
डॉ. अखिलेशचन्द्र शर्मा स्वामी दयानंद सरस्वती : हिन्दी भाषा // 76
डॉ. मधुर नज्मी कविता में छन्द-लय-प्रयोग : कुछ प्रश्न कुछ उत्तर // 81

कविताएँ

सविता दास सवि सृष्टि से प्रलय तक // 84
गिरेन्द्र सिंह भदौरिया 'प्राण' भारत का कीर्ति नाद // 86
दुष्यंत दीक्षित चौपट नगरी // 91
अंकित शर्मा 'इशुप्रिय' देव वंदित भूमि // 94
डॉ. योगेंद्र नाथ शुक्ल कालचक्र // 95

रूपाली सक्सेना वर्दी// 97
देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव मेरी रचनाएँ // 99
यामिनी नयन गुप्ता रक्तबीज // 102
मधु प्रधान मधुर वृद्धों का सम्मान // 104
समीर उपाध्याय मैं ॐ हूँ // 106
नरेन्द्र दीपक ग़ज़ल // 107
शिव डोयले बच्चे की हँसी // 108

कहानी

विवेक द्विवेदी आरोप // 109
स्वरांगी साने दुनिया // 117
डॉ. आर.एस. खरे एहसास... अंत की पीड़ा का // 122
श्यामल बिहारी महतो बंधक // 125
मोहन वर्मा अमरबेल से फूटती खुशबू // 133
अखिलेश श्रीवास्तव चमन दादी के आँसू // 136
महावीर रवांल्टा साकार होंगे सपने // 144
हेमराज कुर्मी सहारा // 150

लघुकथा

सतीश राठी जुड़ाव // 154

व्यंग्य

सत्यप्रकाश शर्मा द्वितीय राजभाषा // 155

समीक्षा

प्रो. महेश दुबे खोजत-खोजत सतगुरु पाइये // 157
ए.के. शर्मा वतन तेरे लिये // 158
विवेक रंजन श्रीवास्तव हम इश्क के बंदे हैं // 159
डॉ.चन्द्रभान सिंह यादव सन्त-साहित्य का मर्म // 161
डॉ. प्रेम भारती भारतीय तीर्थ दर्शन // 166
वसंत निरगुणे साथ नहीं देती परछाईं // 168
डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र अथर्वा : प्रयोगधर्मी काव्यकला की सशक्त कृति // 170
चिट्ठी // 176

गंगा जमुनी तहजीब का अर्थ

हिंदी साहित्य और उर्दू अदब में एक मुहावरा बहुत वर्षों से प्रचलित हो रहा है और वह है 'गंगा जमुनी तहजीब'। मुझे आज तक इस मुहावरे का सही अर्थ समझ नहीं आया। साहित्य क्षेत्र में लंबे समय से काम करते हुए कठिन से कठिन मुहावरों को भी समझने का प्रयास करने पर उसके अर्थ और भाव समझ आने लगते हैं किंतु मुझे आज तक गंगा जमुनी तहजीब ही भारत में कहीं दिखाई नहीं दी। सामान्यतया इस मुहावरे का उपयोग हिंदू-मुस्लिम एकता के संदर्भ में किया जाता है। आप जब दो विचारों की एकता की बात करते हैं तो स्वाभाविक रूप से उनके एक-एक प्रतीक को सामने रखकर उनके एक्य की कल्पना करने लगते हैं। स्वाभाविक रूप से हिंदू समाज की श्रद्धा गंगा माता के प्रति अत्यधिक है इसलिए गंगा तहजीब संभवत: हिंदुओं की मान ली गई होगी किंतु दूसरी ओर मुस्लिम समाज की प्रतिनिधि बनाकर जमुनी तहजीब बताई जाती है। मुझे आज तक समझ नहीं आया कि यह जो यमुना है क्या यह मुस्लिम समाज की पवित्र नदी है या मुस्लिम समाज के आध्यात्मिक मूल्यों में यमुना का कोई विशिष्ट स्थान है? अध्ययन करने पर ध्यान में आता है कि ऐसा बिल्कुल नहीं है। यमुना भी हिंदुओं की उतनी ही पवित्र नदी मानी जाती है जितनी गंगा। यहाँ तक कि कृष्ण की समस्त बाल लीलाएँ इसी यमुना के तट पर संपन्न होती हैं और हिंदी साहित्य की रचनाओं में रचनाकार ईश्वर से यही कामना करता पाया जाता है कि यदि उसे पुनर्जन्म मिले तो यमुना के किनारे कदम्ब का वृक्ष बनने को तैयार हूँ ताकि कान्हा की बाँसुरी मेरे कानों में सतत् रस घोलती रहे। ऐसे में गंगा जमुनी तहजीब का वास्तव में क्या अर्थ रह जाता है?

हाँ यदि भारत के विभाजन के पश्चात् भारत से अलग हुए पाकिस्तान और बांग्लादेश में बह रही किसी नदी के बारे में बात की जाती अथवा गंगाजल और आबे जमजम के मिलन की बात होती तो शायद इस मुहावरे का अर्थ ठीक निकल पाता किंतु आज प्रचलित दोनों ही प्रतीक उस अर्थ को प्रकट नहीं करते जिस अर्थ को प्रकट करने की चेष्टा निरर्थक रूप से वर्षों से की जा रही है।

स्वतंत्रता दिवस हमें स्मरण कराता है अखंड भारत के मजहब के नाम पर विखंडित हो जाने की। दुर्भाग्य से विश्व इतिहास का यह एकमात्र राष्ट्र विभाजन ऐसा है जो किसी राजनीतिक अथवा भौगोलिक कारण से संपन्न नहीं हुआ अपितु इसके मूल में मजहब कारण बना। इतना ही नहीं तो इस विभाजन के पश्चात् मात्र मजहबी कारणों से ही अनेक साहित्यकार और कलाकार देश की सीमाएँ लाँघकर इस पार से उस पार जाने का उपक्रम करते रहे। विगत दिनों अंतरताने (इंटरनेट) पर कुछ संदर्भ देखते हुए मैं आश्चर्य में था। बँटवारे के बाद लगभग पंद्रह साल भारत से पाकिस्तान और पाकिस्तान से भारत आते-जाते रहने का यह सिलसिला चलता रहा। बहुत से लोग तो बरसों तक तय नहीं कर पा रहे थे कि यहाँ रहें या वहाँ रहें।

साहिर लुधियानवी को पाकिस्तान में अपमान भोगना पड़ा तो वे रातोंरात भारत भाग आये, एक और प्रख्यात लेखिका कुर्रतुल ऐन हैदर भारत से पाकिस्तान गईं थीं जहाँ उन्होंने उर्दू का अमर उपन्यास 'आग का दरिया' लिखा जो लाहौर से प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास प्राचीन भारत से बँटवारे तक के इतिहास को समेटते हुये भारत की संस्कृति को महिमा मंडित करता था जो पाकिस्तानी कट्टरपंथियों को

बर्दाश्त नहीं हुआ और कुर्रतुल ऐन हैदर को इतनी धमकियाँ मिलीं कि वे सन् 1959 में भारत वापस आ गईं और संयोग से उसी वर्ष जोश मलीहाबादी पाकिस्तान के लिये पलायन कर गये। जोश की आत्मकथा 'यादों की बारात' में वह अपने इस निर्णय के लिये पछताते दीख रहे हैं। बड़े गुलाम अली खाँ भी इसी तरह भारत वापस आये।

यह सुविधा भी सभी को नहीं थी कि जब जहाँ चाहें जा के बस जायें। हिंदू एक भी भारत से पाकिस्तान नहीं गया बसने। हाँ पाकिस्तान के पहले कानून मंत्री प्रसिद्ध दलित नेता जे. एन. मंडल बड़ी अपमानजनक परिस्थितियों में पाकिस्तान छोड़ने पर मजबूर हुए और भारत में कहीं अनाम मृत्यु को प्राप्त हुए। अखिल भारतीय साहित्य परिषद के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्रद्धेय श्रीधर पराड़कर जी की जोगेंद्रनाथ मंडल जी पर लिखी पुस्तक साहित्यकारों को पढ़नी चाहिये।

आश्चर्य है कि इस देश में शिक्षा के नाम पर करोड़ों रुपये की जमीन जुटा कर उस मुहम्मद अली जौहर के नाम से यूनीवर्सिटी बना ली जाती है जिसने इस नापाक मुल्क में न दफनाये जाने की वसीयत की थी और आज एक-दूसरे देश इजराइल में दफन है। उसी देश में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय जैसे भारतीय विद्याओं को समर्पित विश्वविद्यालय को खोलने के लिए महामना मदन मोहन मालवीय को अक्षरशः झोली लेकर घर-घर शिक्षा माँगने के लिए निकलना पड़ता है।

मिर्जा मुहम्मद रफी सौदा का एक शेर है जो उन्होंने कभी नवाब अवध के दरबार में कहा था-

'हो जाये अगर शाहे खुरासाँ का इशारा,
सजदा न करूँ हिंद की नापाक जमीं पर।'

उन्हीं सौदा को उर्दू अदब में भारत में आज भी सम्मानित होते देखा जा सकता है।

साहित्य जगत इन दिनों इस तरह के संवेदनशील प्रश्नों पर मुखर होने लगा है। यह राष्ट्र की चैतन्य होती प्रवृत्ति का प्रतीक है। वास्तव में जो साहित्य जगत समाज की चेतना को जागृत करने का काम करता है उसका स्वयं गहन निद्रा में सोए होना किसी राष्ट्र को प्रगति के मार्ग पर नहीं ले जा सकता। अब समय आ गया है स्वातंत्र्य समर के अमृत महोत्सव को मनाते हुए हम सब उन रचनाकारों को अवश्य स्मरण करें जिन्होंने राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत लेखन करने के कारण न केवल उपेक्षा सही बल्कि सम्मान पुरस्कारों से वंचित रहते हुए अपने घर के बर्तन कपड़े तक बेचकर पुस्तकें छापीं और ठेला गाड़ी पर लेकर गाँव-गाँव, डगर-डगर घूमते रहे।

अब वास्तव में यदि गंगा जमुनी तहजीब को सही अर्थों में साहित्य जगत में मूर्त रूप देना है तो हीरे को हीरा और काँच को काँच कहने की हिम्मत साहित्य जगत को दिखाना होगी। विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान पलायन कर जाने वाले किसी साहित्यकार का कौमी तराना हमारी जुबान को गंगा जमुनी तहजीब का रस नहीं दे पाएगा। उसके लिए तो राष्ट्र को साहित्य से बंकिम बाबू चाहिए। 'वंदे मातरम्' ही देश की गंगा जमुनी तहजीब का प्रतीक बन सकेगा।

-डॉ. विकास दवे
संपादक

अपनी पत्रिका के शीर्षक के अनुरूप भारत भर के वरिष्ठ रचनाकारों से संवाद स्थापित करते हुए साक्षात्कार लेकर उनकी साहित्य यात्रा और रचना कर्म से अन्य रचनाकारों को परिचित करवाना यह इस स्तम्भ का मुख्य हेतु रहेगा। यूँ तो 'साक्षात्कार' पत्रिका अपने नाम के अनुरूप इस तरह के साक्षात्कारों का पहले भी प्रकाशन करती रही है किंतु इसमें एक प्रयोग प्रारंभ किया है। विगत दिनों भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता के संदर्भ में एक पुस्तक पढ़ते हुए श्रद्धेय माखनलाल चतुर्वेदी जी और धर्मवीर भारती जी के संबंध में एक आलेख पढ़ते हुए यह ध्यान में आया था कि कोई भी साहित्यकार पत्रिका का संपादक बनते ही अपने आप को एक अलग पाले में खड़ा कर लेता है और रचनाकारों को दूसरे पाले में खड़ा कर देता है। यदि संपादक और रचनाधर्मियों के बीच सीधा संवाद स्थापित करने की सुचारू व्यवस्था बन जाए तो स्वाभाविक रूप से वह साहित्यिक पत्रिका साहित्यकार पाठकों के लिए भी अत्यंत आत्मीय हो जाती है। बस इसी बात को ध्यान में रखकर यह सोचा है कि पत्रिका में संपादकीय का आकार भले थोड़ा छोटा रहे किंतु मैं स्वयं चर्चा करके वरिष्ठ रचनाकारों के साक्षात्कार लूँ और उन्हें आप सबके समक्ष रखूँ। इस बहाने मेरा तो प्रशिक्षण होगा ही आप सब भी इन रचनाकारों के जीवनानुभवों से बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे। इसी शृंखला में प्रस्तुत है यह साक्षात्कार।–सम्पादक

डॉ. मंजरी शुक्ला से डॉ. विकास दवे की बातचीत

डॉ. विकास दवे : आपको लिखने की प्रेरणा कैसे मिली और आपके लिखने की शुरुआत कब और कैसे हुई? रचनाकार का प्रारंभ बिन्दू भावी रचनाकारों के लिए प्रेरक होता है।

डॉ. मंजरी शुक्ला : मैं ये मानती हूँ प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही लेखक होता है हाँ, ये बात अलग है कि उनमें से कुछ लोग भावों को मन में ही लिखते हैं तो कुछ उन्हें लिखकर कागज़ में साकार रूप दे देते हैं। हमारे घर में लिखने-पढ़ने का माहौल हमेशा ही रहा। मुझे याद है कि मैं उस समय ग्यारवीं कक्षा में थी और होशंगाबाद में जब मैं मेरी माँ के साथ कहीं जा रही थी तो रास्ते में रविवार का बाज़ार लगा हुआ था, जिसमें चिलचिलाती धूप में एक आदमी पुराने कपड़े बेचने वाले के पास उससे एक कुर्ते के पैसे कम कराने की कोशिश कर रहा था। उसके गिड़गिड़ाने को सुनकर पता नहीं क्यों मेरा मन बहुत द्रवित हो गया। उसने एक जेब में हाथ डाला तो दूसरी तरफ़ से उसका हाथ निकल गया। फिर उसने दूसरी जेब में हाथ डाला तो उसमें से कुछ चवन्नी के सिक्के निकले जिन्हें वो इतनी सावधानीपूर्वक हाथ में पकड़ा था मानों वो हीरे-मोती जैसे बहुमुल्य रत्न हों। मेरे पास भी उस समय पैसे नहीं थे कि मैं उसकी कुछ मदद कर पाती। इसलिए बस बेबस सी आगे बढ़ गई पर वो बूढ़े आदमी के फटे कुर्ते के छेद और हाथों में चवन्नी में कभी भूल नहीं सकी और फिर मैंने उस पर एक कविता लिखी कि 'उस के हाथों की चवन्नियाँ उसके कुर्ते में आकर पैबंद की तरह लग गईं हैं... अब आगे तो मुझे याद नहीं है पर ये कविता नईदुनिया में छपी थी। पर इसके बाद मैंने कई साल कुछ नहीं लिखा जबकि मन में आता था कि जैसे कोई अदृश्य शक्ति मुझे कह रही हो लिखने के लिए।

2008 में फिर ईश्वर का आशीर्वाद लेकर मैंने नंदन में एक कहानी प्रतियोगिता में एक कहानी भेजी और फिर उसके बारे मैं ये सोचकर भूल गई कि कौन सा इनाम मुझे ही मिलना है। जब महीने भर बाद अचानक नंदन का नया अंक पलट रही थी तो देखा कि उसमें द्वितीय पुरस्कार मिला था बस फिर

क्या था इस बात ने मुझे इतनी खुशी दी कि मुझे लगा कि मैं भी लिख सकती और लोगों को पसंद आ सकता है फिर मैंने टिंकल में कई कहानियाँ भेजी। अनंत पई जी के हस्तलिखित कई पत्र मैंने आज भी संभाल कर रखे है। हाँ वैसे ये बात सच है कि प्रेरणा तो ईश्वर ही देता है। जब तक मन से ये बात नहीं आये मुझे लगता है कि शायद ही कोई लिख पाता हो। पर मेरे लेखन में मेरी माँ के अलावा मेरे पति और मेरी बेटी रिमझिम का भी बहुत सहयोग रहा। उन दोनों ने हमेशा मुझे बेहतर लिखने के लिए प्रेरित किया जिससे मुझे लगा कि मैं इस कार्य में निरंतर प्रगति करती जाऊँ।

डॉ. विकास दवे : आप कई वर्षों से बाल साहित्य की साधना कर रहीं हैं तो आप बच्चों तक बाल साहित्य पहुँचाने के लिए क्या करती हैं? कोई प्रायोगिक कार्य करती हों तो बताइए?

डॉ. मंजरी शुक्ला : मेरे आस पास जो बच्चे हैं उन्हें मैं कहानियाँ सुनाती हूँ और जिन्हें वे बड़े चाव से सुनते भी हैं। अपनी कहानी सुनाने के बाद मैं उनसे कहानी कहने के लिए कहती हूँ और फ़िर वो अपने दोस्तों से लेकर अपने पेड़ और पौधे तक की कहानियाँ तुरंत मन से बना देते हैं। मुझे लगता है कि बच्चों में कल्पनाशीलता तो होती ही हैं पर हम उन्हें थोड़ा सा प्रोत्साहन देकर, थोड़ी सी सही दिशा देकर उनकी सोच को बहुत विकसित कर सकते हैं। बच्चों को उपहार में पुस्तकें देना भी मुझे बेहद पसंद है। मुझे लगता है कि जब तक हमें बच्चे के अंदर पढ़ने की उत्सुकता नहीं पैदा करेंगे तो वह किताबों की तरफ़ से उदासीन होता चला जाएगा और वीडियो गेम में अपना समय व्यतीत करेगा। इंटरनेट पर भी कई जगह मैं अपनी कहानियाँ लगाती रहती हूँ ताकि बच्चे उन्हें पढ़ सकें। चाहे प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, मेरी कोशिश रहती है कि बच्चा पढ़ने में रुचि ले।

डॉ. विकास दवे : बाल-साहित्य का पाठक किशोर भी होता है और आजकल हम देखते हैं कि वर्तमान आभासी दुनिया ने भी किशोरों को अपनी ओर खींचा है तो इसका कैसा असर आपको बाल-साहित्य की वर्तमान स्थिति पर दिखाई देता है?

डॉ. मंजरी शुक्ला : इंटरनेट के व्यापक प्रचार और प्रसार के कारण सूचना का आदान-प्रदान अब बहुत ही सरल और व्यापक हो गया है। इसकी वजह से व्यक्ति यूट्यूब, फेसबुक, व्हाट्सप्प, ट्विटर और भी तमाम एप्स के मकड़जाल के अंदर फँस कर रह गया है। बच्चे भी पढ़ने की प्रवृत्ति से दूर होते जा रहे हैं। कई तरह के ऐप्स हैं जिनमें अपना समय व्यतीत करना वह ज्यादा मनोरंजक और ज्यादा सुलभ समझते हैं बजाय इसके कि वह किसी पुस्तक को पढ़ने में आपसी चर्चा करे या मित्रता बढ़ाकर अपना सामाजिक दायरा बढ़ाये। इसका सकारात्मक पहलू भी हमें नज़र आता है जैसे मैं एक कार्यशाला ले रही थी, उसमें कहानी की प्रतियोगिता थी उसमें अधिकतर बच्चों से जब बातचीत हुई तो उन्होंने कहा कि वह अंतरिक्ष में जाना चाहते हैं, नासा में जाना चाहते हैं, चाँद पर जाना चाहते हैं, मंगल पर जाना चाहते हैं। वे देखना चाहते हैं जाकर कि चाँद पर सच में गड्ढे हैं या नहीं है। मंगल में कितना पानी है, उनमें से कई बच्चे तो शनि ग्रह के बारे में जानने के लिए बहुत उत्सुक थे। उनमें से कई बच्चों को यह पता है कि नासा के हबल टेलीस्कोप से जो शनि की तस्वीरें मिली हैं, वहाँ पर जो उनके छल्ले हैं यानी जो रिंग्स हैं वे कैसे दिखते हैं। और उनके बारे में और ज्यादा, जानकारी पाने के लिए ये बच्चे बहुत उत्सुक हैं। छोटे-छोटे बच्चों से बात करके मुझे पता लगा कि वे हबल टेलीस्कोप को भी जानते हैं, चाँदी के समान, चमकीले रंग के

छल्लों में लिपटा शनि ग्रह भी उन्हें पता है वहीं बृहस्पति ग्रह के चार चाँद यानी उपग्रह गायनामिड, कैलेस्टो, आइओ व यूरोपा भी उन्हें पता हैं, तो मुझे जानकर बहुत आश्चर्य हुआ और बहुत खुशी हुई कि हमारे बच्चे आज की तारीख में कितना ज्यादा जानते हैं।

डॉ. विकास दवे : आपके प्रेरणा स्रोत कौन हैं? कई बार हम कहते हैं जीवन के जीवंत पात्र ही पन्नों पर उतर आते हैं। क्या आपके साथ भी यह होता है?

डॉ. मंजरी शुक्ला : मुझे लगता है कि जिससे भी हम मिलते हैं तो उससे कुछ ना कुछ सीखने के लिए जरूर मिलता है कई बार हमें बचपन में भी बताया जाता था कि अरे उस आदमी से दूर रहना वह बहुत गुस्सा करता है या वह बहुत चिल्लाता है या उसकी झूठ बोलने की आदत है पर मैंने यह देखा है कि प्रत्येक व्यक्ति में एक ना एक अच्छाई जरूर होती है। हम बिल्कुल सिरे से किसी के सारे सद्गुणों को इग्नोर नहीं कर सकते हैं कि वह पूरा का पूरा व्यक्ति खराब है क्योंकि यह बात हम अपने ऊपर भी लागू कर सकते हैं। अगर मैं किसी एक चीज में अच्छी हूँ तो हो सकता है मैं दूसरी चीज में नहीं हूँ और किसी को मेरी वह बात नहीं अच्छी लगती हो। इसी तरह से अगर हमें सीखना है और अपने बच्चों को सिखाना है तो हमें उन्हें यह बताना पड़ेगा कि वह किसी भी व्यक्ति से अच्छी बातों की प्रेरणा ले सकते हैं। इस कारण बहुत सारे व्यक्ति ऐसे रहे जो मेरे जानने वालों में रहे, रिश्तेदारों में रहे कि वह मेरे प्रेरणा स्रोत बन गए जाने-अनजाने जिन लोगों ने मुझे बहुत दुखी किया, बहुत सताया वे भी मेरी कहानियों में आए। अगर मैं नहीं होती मैं वह पात्र कहाँ से लाती जिन लोगों ने मुझे कई बार रुलाया, उनकी भी मैं शुक्रगुजार हूँ क्योंकि अगर मेरी कहानियों में सिर्फ सब हँसते तो कहानियों में असलियत की कमी हो जाती। इस कारण जो लोग मेरे लिए नेगेटिव रहे। जो मेरे लिए पॉजिटिव रहे सभी मेरी इंस्पिरेशन रहे। प्रेरणा और जिन लोगों ने मुझे आगे बढ़ने से रोका उनके लिए मैं सबसे ज्यादा थैंकफूल हूँ। उन लोगों ने मुझे जितना आगे बढ़ने से रोका मैं ईश्वर का नाम लेकर, साईं बाबा का नाम लेकर इतनी मजबूती से आगे बढ़ती चली गई।

डॉ. विकास दवे : आप बचपन में पढ़े हुए लेखकों और उनकी कुछ कहानियों के विषय में बताइए जो आपको आज भी याद हैं?

डॉ. मंजरी शुक्ला : मुझे कहानियाँ पढ़ने का बचपन से ही बहुत शौक था। हमारे घर में अमृता प्रीतम की रसीदी टिकट, दलीप कौर तिवाणा की नंगे पैरों का सफर, महादेवी वर्मा, मुंशी प्रेमचंद के मानसरोवर के आठों खंड, शरत चट्टोपाध्याय की बहुत सारी कहानियाँ, मन्नू भंडारी, शिवानी, प्रेमचंद, महाश्वेता देवी की नटी, आशापूर्णा देवी की प्रथम प्रतिश्रुति, वर्षों पूर्व दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर 'प्रथम प्रतिश्रुति' का धारावाहिक रूप में प्रसारण भी हुआ था। रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा लिखी गई कहानी 'काबुलीवाला' ने मेरे मन पर बहुत छोड़ा। किस तरह से एक पिता दूसरे पिता की मज़बूरी समझता है और उसकी मदद करता है, उसे वापस उसके वतन अपनी बेटी के पास भेजता है। रहमत, जो कि काबुलीवाला है, जितने बरस जेल में रहता है तो जैसे वो वर्ष, वो समय उसके लिए ठहर जाता है, और वह जेल से छूटकर ही सीधा मिनी से मिलने जाता है। जिस तरह की कहानी, रवीन्द्रनाथ टैगोर सालों पहले लिख गए, उसके किरदार आज भी हम सभी के अंदर जीवित हैं। सन 1961 में इस पर फ़िल्म भी बनी थी, और बलराज साहनी जैसे सशक्त अभिनेता ने काबुलीवाले का किरदार बहुत ही खूबसूरती से निभाया था, भीष्म साहनी की 'चीफ़ की दावत' मुझे बेहद पसंद है, ये कहानी बेहद मार्मिक है।

इस कहानी में उन्होंने मध्यमवर्गीय समाज के खोखलेपन तथा दिखावटीपन को दर्शाया है। उनके

द्वारा रचित कहानी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। 'चीफ की दावत' एक ऐसी ही कहानी है, जिसमें स्वार्थी बेटे शामनाथ को अपनी विधवा बूढ़ी माँ का बलिदान फर्ज ही नजर आता है।

महादेवी वर्मा की गिल्लू, प्रेमचंद की पूस की रात, बेहद मार्मिक कहानियाँ हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान की हींगवाला भी बेहद भावपूर्ण और मार्मिक कहानी है।

डॉ. विकास दवे : कहानियाँ दो तरह से जनमानस तक पहुँचती हैं एक तो स्वयं खरीद के पढ़ लें और द्वितीय कहानियाँ पाठ्यक्रम की हिस्सा हों आपकी दृष्टि में कौन-सी पद्धति ज्यादा बेहतर है और क्यों?

डॉ. मंजरी शुक्ला : पाठ्यक्रम और बाल साहित्य में केवल एक ही समानता है और वह यह कि दोनों में ही बाल साहित्य का समावेश होता है किंतु बच्चे पाठ्यक्रमों से दूर भागते हैं। वास्तव में पाठ्यक्रम में आ जाने के बाद अच्छी खासी रचना से बच्चे केवल इसलिए दूर भागने लगते हैं क्योंकि वह उनकी पढ़ाई की किताबों का हिस्सा बन जाती है। मैंने पूर्व में जिस काबुलीवाला कहानी का उल्लेख किया था उसी कहानी को मैंने जब प्रथम बार बाल साहित्य की एक पुस्तक में पढ़ा था तब मुझ पर एक अद्भुत प्रभाव हुआ था जबकि उसी कथा को मैं जब बच्चों को पाठ्यक्रम में पढ़ते और उस कहानी पर आधारित प्रश्न उत्तर, रिक्त स्थान, सही जोड़ियाँ बनाना, मुहावरों के प्रयोग आदि करते हुए देखती हूँ तो मुझे लगता है कि बच्चे उन कहानियों से थोड़ा दूर भागने लगते हैं। वास्तव में पाठ्यक्रम को रोचक बनाया जाना यह आज की शिक्षा नीति की प्रथम आवश्यकता है। बाल साहित्य के क्षेत्र में नित नवीन प्रयोग हो रहे हैं, उन्हीं प्रयोगों को यदि पाठ्यक्रम पर भी लागू कर दिया जाए तो मुझे लगता है कि बच्चे पाठ्य पुस्तकों को पढ़ने में भी उतनी ही रुचि लेने लगेंगे जितनी रुचि वह बाल साहित्य को पढ़ने में लेते हैं।

डॉ. विकास दवे : बाल-साहित्य में नैतिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए क्या किया जाना अपेक्षित और आवश्यक है? इससे बच्चा बाल साहित्य को कड़वी कुनैन तो नहीं समझने लगेगा?

डॉ. मंजरी शुक्ला : कहानियाँ कई बार हमें बातों ही बातों में अच्छी बातें भी सिखाती हैं। हजारों लाखों कहानियाँ ऐसी हैं जिन्हें पढ़कर हमें शिक्षा मिलती है कि हमें दूसरों की मदद करनी चाहिए, बुराई से दूर रहना चाहिए क्योंकि ऐसा करके हम सामने वाले के साथ-साथ खुद भी बेहतर बनते हैं।

कोई भी बच्चा, अच्छा या बुरा एक दिन में नहीं बन जाता है बल्कि धीरे-धीरे ही अच्छी आदतों का विकास हमारे अंदर होता है। नैतिक शिक्षा और सांस्कृतिक मूल्यों को अगर हम बच्चों को दिन-रात समझाना चाहें या यूँ कहें कि हम उसे कितना भी समझा लें कि उसे किस प्रकार का व्यवहार करना है और अगर हम स्वयं उसके सामने वैसा आचरण नहीं करेंगे तो बच्चा हमारी बात बिल्कुल भी नहीं मानेगा। डर कर मान ले यह बात अलग है क्योंकि उसे लगेगा कि उसे मार पड़ेगी या डाँट पड़ेगी पर अंदर से उसकी आत्मा इस बात को स्वीकार नहीं करेगी कि जो व्यक्ति खुद अनैतिक काम कर रहा है, जिसके स्वयं के मूल्य नहीं हैं, वह उसे अच्छी बातें सिखा रहा है। सबसे पहले तो हमें बच्चे के सामने ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे उसमें स्वयं नैतिकता का विकास हो। अगर हम किसी गरीब व्यक्ति को देखें तो उसे कुछ पैसे दे दें, कपड़े दे दें, भोजन दे दें, उसकी मदद कर दें। अगर कोई हम पर क्रोधित हो रहा है तो हम कोशिश करें कि बात शांतिपूर्वक सुलझ जाए। अपशब्दों का प्रयोग करने से बचें तो बच्चा स्वयं ही आत्मसात कर लेगा।

दरअसल कहानियों के माध्यम से ही त्याग साहस बलिदान परिश्रम तमाम गुण हैं वह बच्चे को

सिखाए जाते हैं। हमें सच बोलना चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए, झूठ बोलने से पाप पड़ता है, यह सब गुण कहानियों के माध्यम से जब बच्चे को सिखाए जाते हैं तो बच्चा बातों ही बातों में सीख कर भविष्य में इन गुणों को अपनाता है और एक बेहतर इंसान के रूप में जाना जाता है।

डॉ. विकास दवे : ऐसा कहा जाता है कि स्थानीय भाषाओं का प्रभाव भी बाल साहित्य पर होता है, तो इसे लेकर आपका क्या कहना है? बोलियों से नई पीढ़ी दूर होती जा रही है।

डॉ. मंजरी शुक्ला : हम देखते हैं कि हर बड़े साहित्यकार ने जब भी लिखा है चाहे वह बच्चों के लिए लिखा हो, चाहे बड़ों के लिए लिखा हो, चाहे किसी भी विधा में लिखा हो, अपनी स्थानीय भाषा में जरूर लिखा है या अपना प्रेम उस भाषा के लिए जरूर प्रकट किया है क्योंकि स्थानीय भाषा व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के दिल से सीधा जोड़ती है पर कई बार ऐसा हुआ है लेखकों ने अपनी स्थानीय भाषा में लिखा तो है पर आज की बदलती हुई दुनिया के कारण उतना व्यापक प्रचार-प्रसार नहीं हुआ।

उदाहरण के तौर पर अगर हम देखें तो रवीन्द्र नाथ टैगोर जी ने बहुत अच्छी कहानियाँ बंगाली भाषा में लिखीं पर हम उनकी काबुलीवाला को सबसे ज्यादा जानते हैं, पसंद करते हैं। उस कहानी को लाखों बच्चों तक पहुँचने का श्रेय पाठ्य पुस्तक को भी जाता है क्योंकि जब कक्षा में किताब पढ़ाई गई, वह कहानी पढ़ाई गई तो बच्चे को पता चला कि काबुलीवाला कहानी है और उसके लेखक गुरु देव, रवीन्द्र नाथ टैगोर जी हैं तब उनके बारे में ढूँढ़ना शुरू किया। जब कहानी का अनुवाद होता है और कहानी जन-जन तक पहुँचती है तो कहानी का प्रचार-प्रसार बहुत ज्यादा हो जाता है।

डॉ. विकास दवे : बाल-साहित्य के क्षेत्र में क्या संभावनाएँ हैं ज़्यादा से ज़्यादा बच्चे साहित्य पढ़ें इसके लिए क्या किया जाना चाहिए? कौन सा साहित्य बच्चों को देना उत्तम होगा?

डॉ. मंजरी शुक्ला : जितना महत्त्वपूर्ण एक बच्चा होता है, एक बालक होता है उतना ही महत्त्वपूर्ण बाल साहित्य भी होता है, बच्चों की कहानियाँ भी होती हैं। बच्चों को बाल साहित्य से हम अलग नहीं देख सकते क्योंकि बचपन की शुरुआत ही माँ की कहानियों से होती है, किस्सों से होती है। चाहे वह चाँद को बच्चे का मामा बनाकर बताना, उस चाँद में बैठा एक छोटा सा खरगोश जो अपने कान उठाये इधर-उधर देख रहा है और या फिर उस चाँद में चरखा कातती हुई एक बुढ़िया। बच्चा किसी अजनबी के साथ ना चला जाए इसलिए उसे ये कहना कि किसी के साथ नहीं जाना चाहिए वरना झोली वाले बाबा पकड़ लेंगे।

कहानी सुनना सभी को अच्छा लगता है चाहे फिर वे बच्चे हों या बड़े। हाँ यह बात जरूर होती है कि उम्र के साथ-साथ हमारी पसंद, आदतें और रुचियाँ बदलती रहती हैं। अब अगर छोटे से बच्चे को हम बहुत ज़्यादा कठिन शब्दों में कोई कहानी या बात सुनाएँगे तो वह समझने में जरा सी भी रुचि नहीं लेगा, इसी तरह बहुत कठिन शब्दों को भी लगातार सुनने से वह उनका अर्थ ही खोजता रह जाएगा और उसका कहानी में मन नहीं लगेगा। उसे लगेगा कि किसी तरह ये कहानी खत्म हो और वह यहाँ से भागे ताकि उसका पीछा छूटे, वहीं अगर हम उसी बच्चे को बड़े ही मजेदार ढंग से, उसकी उम्र के हिसाब से किसी प्यारी सी सफ़ेद या काली बिल्ली की या फिर चिड़िया की कहानी सुनाएँगे तो वह खुश हो जाएगा।

पंचतंत्र की कहानियाँ, हितोपदेश की कहानियाँ, सिहासन बत्तीसी, इस तरह की बहुत सारी ऐसी किताबें हैं जो अगर हम बच्चों को पढ़ाएँ तो उनमें कहानियों के माध्यम से ही बच्चा ज्ञान की बातें बातों ही

बातों में सीख लेगा। गीता प्रेस की भी बहुत किताबें आती हैं जो बहुत पतली-पतली होती हैं और उनमें बहुत छोटी-छोटी कहानियाँ होती हैं, वे भी जीवन मूल्यों को दर्शाती हैं, बच्चों में नैतिकता का विकास करती हैं। हम बहुत सारे बाल साहित्यकारों की कहानियों को देखते हैं तो ज्यादातर कहानियाँ इसी तरह से लिखी जाती हैं जो बच्चे को एक बेहतर इंसान बनाने के रूप में कार्य करती हैं, उनमें मानवीय संवेदनाएँ जगाती हैं और उनका आत्मिक उत्थान करती हैं।

डॉ. विकास दवे : बाल साहित्य रचते समय बच्चों के स्तर पर उतरकर जो सृजन होता है, वह बालमन में गहराई से उतर जाता इसके लिए एक बाल साहित्यकार को क्या करना पड़ता है और क्या यह सहज है?

डॉ. मंजरी शुक्ला : बाल साहित्यकार का ज्ञान बच्चों से बहुत ज़्यादा होता है पर बच्चों के मनोभावों को समझते हुए हमें मानसिक स्तर पर उनके बराबर ही आना पड़ेगा। बचपन इतना भोला-भाला होता है कि वह धन दौलत और महँगे उपहार नहीं देखता बल्कि जो भी उससे दो बोल प्यार के बोल ले वह उसी का हो जाता है। इसलिए वर्तमान में बाल साहित्य ऐसा रचा जाना चाहिए जिसे पढ़कर बच्चों को लगे कि वो उन्हीं के लिए लिखा गया है। कहानी सुनना सभी को अच्छा लगता है चाहे फिर वे बच्चे हों या बड़े हाँ यह बात जरूर होती है कि उम्र के साथ-साथ हमारी पसंद, आदतें और रुचियाँ बदलती रहती है।

डॉ. विकास दवे : आपकी बाल कहानियाँ छोटा बच्चा भी सहजता से पढ़ लेता है और शोधार्थियों के लिए भी उनमें बहुत कुछ होता है। भाषा को इस रूप में गढ़ने के लिए आप नए रचनाकारों को क्या सतर्कता बरतने की सलाह देना चाहेंगी?

डॉ. मंजरी शुक्ला : मैं कहना चाहूँगी कि सबसे बड़ी सतर्कता यही है कि कोई सतर्कता ना बरतें। सहज होना बहुत मुश्किल कार्य है सबसे मुश्किल कार्य है हम स्वयं को कठिन ना बनाएं क्योंकि जब हम खुद को अलग बनाने की कोशिश करते हैं तो हमारी कहानी की मौलिकता ही समाप्त हो जाती है। जो हम अपनी बात कहना चाहते हैं वह बात सीधे तरह से व्यक्त नहीं कर पाते। कोई कहानी मेरे दिल को छू जाती है या मैं सोचती हूँ कि इस कहानी में ऐसा क्या था जिसने मुझ पर इतना प्रभाव डाला तो सबसे पहले उस कहानी की सादगी ही ज़ेहन में आती है। अगर बच्चा हमारी कहानी पसंद करता है तो हमारा लिखना सफल हो जाता है, भले ही वह कहानी फिर उसके बाद किसी को पसंद आए या ना आए क्योंकि हमारा पाठक वर्ग बच्चा है और हम खासतौर से सिर्फ एक बच्चे के लिए कहानी लिख रहे हैं। इसका उदाहरण इस तरह से हो गया कि माँ अगर बच्चे की पसंद की खीर बना रही है और बच्चे का जन्मदिन है और बच्चे को खीर ही खाना है, तो वह जब बच्चा खीर खा लेता है और माँ से कहता है कि तुम दुनिया में सबसे अच्छी खीर बनाती हो, तुमसे अच्छी खीर कोई बना ही नहीं सकता। माँ का चेहरा, उसके जो भाव होते हैं, उसकी आँखों में जो खुशी के आँसू छलछला जाते हैं। उन्हें शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता। वह अनुभूति होती है फिर भले ही घर के और सदस्य उस खीर को खाएँ या ना खाएँ। इसी तरह से हमारा जो पाठक है, वह बच्चा है, अगर बच्चा हमारी कहानी समझ रहा है, हमें याद कर रहा है तो हमारी लेखनी सफल हो जाती है।

डॉ. विकास दवे : साहित्यकार जहाँ अपने साहित्यिक दायित्व को निभाता है, वहीं उसे अपने सामाजिक दायित्व का भी ध्यान रहता है। आप एनआईवीएच से भी जुड़ी हैं और दिव्यांग विशेषकर नेत्रहीन बच्चों के लिए आपने बहुत अच्छा कार्य किया है। आपसे उनके लिए किए कार्यों के बारे में जानना चाहेंगे?

डॉ. मंजरी शुक्ला : देहरादून में एन.आई.वी.एच. (National Institute of Visually Handicapped,) अर्थात् राष्ट्रीय दृष्टि बाधितार्थ संस्थान।

वहाँ पर उन्होंने कम्युनिटी रेडियो खोला है। कम्युनिटी रेडियो खोलने का उद्देश्य होता है समाज में सब लोगों की मदद करना। एनआईवीएच में जो कम्युनिटी रेडियो है वह देहरादून तक ही आता है और इसे खुले हुए करीब नौ साल हो रहे हैं। यह 2012 से प्रसारण कर रहा है। जो लोग देख नहीं सकते हैं, उन्हें भी कला के क्षेत्र में अवसर मिल सके, जो बच्चे वहाँ रहते हैं, वे कार्यक्रमों में नाटक भी करते हैं, कहानी भी सुनाते हैं, और इस तरह से उन्हें रेडियो के माध्यम से अपनी बात पहुँचाने का अवसर प्रदान होता है। सबसे बड़ी बात है कि जो बच्चे थोड़ा देख सकते हैं, वे एडिटिंग वगैरह भी करते हैं। तो हमें इन बच्चों से बहुत कुछ सीखने को मिलता है। मैं जब एक साल पहले वहाँ पर गई थी तो तीन दिन के लिए रुकी थी। वहाँ पर तो एक कार्यक्रम आता है, आओ बच्चों सुने कहानी, उसमें मैंने अपनी कहानियाँ रिकॉर्ड की थीं और यह बच्चों को रात में आठ बजे के करीब सुनाई जाती हैं।

वहाँ पर मेरी कुछ किताबें भी ली गई हैं जिन पर काम चल रहा है। अभी ब्रेल लिपि में कन्वर्ट की जा रही हैं ताकि उन्हें वे बच्चे पढ़ सकें मैंने वहाँ पर देखा कि कई बाल पत्रिकाएँ, नंदन,चंपक और भी कई किताबें हैं जो ब्रेल लिपि में है और जिन्हें बच्चे बड़े चाव से पढ़ते हैं। उन बच्चों से मिलकर मैंने बहुत महत्त्वपूर्ण बात देखी कि उनमें से किसी भी बच्चे ने कभी मुझसे यह नहीं कहा कि जो लोग देख सकते हैं उनसे वे कमतर हैं बल्कि वे अगर जयपुर घूमने गए थे या किसी और शहर में गए थे तो यह कहते हैं कि हमने देखा, हमने हवा महल देखा, हमने संग्रहालय देखा। सबसे अच्छी बात यही है कि उनके सर्वांगीण विकास के लिए साहित्य से भी उनका परिचय कराया जा रहा है। उन्हें साहित्य को बहुत ही सुलभ बनाते हुए उन बच्चों तक पहुँचाया जा रहा है। इस वजह से बच्चों की कहानियाँ सुनने की, पढ़ने और बोलने की क्षमता बेहतर हो रही है।

डॉ. विकास दवे : बाल साहित्य के साथ-साथ आपने स्त्री विमर्श पर भी बहुत कहानियाँ लिखी हैं। उन कहानियों में आप क्या सन्देश देना चाहती हैं?

डॉ. मंजरी शुक्ला : कई बार रिश्तों को सँभालने के लिए बहुत सारी बातों को नज़रअंदाज़ करना ही पड़ता है। प्यार के धागों को इतनी मजबूती से बाँधना पड़ता है कि घर के सदस्य तिनकों की तरह बाहर की तेज आँधी में उड़कर अपना ही आशियाना तितर-बितर ना कर दे और ये कार्य एक संवेदनशील नारी जितनी खूबसूरती से कर सकती है, दूसरा कोई नहीं कर सकता।

मेरी अधिकतर कहानियों में नारी की संवेदना, सहनशीलता और वात्सल्य जैसे गुणों को दिखाया हैं। रिश्तों को बचाने के लिए वह अंत तक हिम्मत नहीं हारती और अपने दर्द को सीने में छुपाये हुए अपना हक लेने की पुरजोर कोशिश करती है। समाज से टक्कर लेने में भी वह जरा भी नहीं हिचकती है जब बात उसके मान सम्मान की आती है तो वह समाज की दकियानूसी ख्यालों वाली बेड़ियों को भी तोड़ने में देर भी नहीं करती है।

चलिए साहित्य पर एक सार्थक चर्चा सम्पन्न हुई। रचनाकारों को विशेषकर नवोदित रचनाकारों को बहुत लाभ मिलेगा।

धन्यवाद मंजरी जी।

सम्पर्क : *प्रयाग (उ.प्र.), मो. 9616797138*

डॉ. शशिकला त्रिपाठी

मातृभाषाएँ और हिन्दी बनाम अंग्रेजी

भाषा का मुद्दा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पुराकाल से अद्यतन उस पर निरंतर विमर्श हो रहा है क्योंकि भाषा और उसके अवयव शब्द का घनिष्ठ संबंध शिक्षा, दर्शनशास्त्र, व्याकरण भाषाविज्ञान और प्रयोजनमूलकता से है और संवाद के लिए तो उसकी उपयोगिता अनिवार्य रूप से आवश्यक है। मनुष्य के दो अधर संवाद- सेतु हैं जिनसे गुज़रकर बजरिए भाषा मनुष्य आपसी संबंध विकसित करता है। अतएव, ऋषि, मुनि और संस्कृताचार्यों ने अक्षर, शब्द या भाषा पर गहन चिन्तन किये हैं। फिर भी, भाषा के स्वरूप और सम्प्रेषणीयता के प्रश्न पर विद्वतजनों की दृष्टि एक जैसी नहीं बन सकी। युगधर्म के अनुरूप उसकी स्थिति, व्यवहार और मान में परिवर्तन होता रहता है। वायु पुराण में यथार्थ ही कहा गया है-

''मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना कुण्डे-कुण्डे नवं पयः।
जातौ जातै नवाचाराः नवा वाणी मुखे-मुखे।।''

भारतीय मनीषियों के अनुसार, शब्द ही ब्रह्म है जिसे 'शब्दब्रह्म' या 'नादब्रह्म' कहा गया। यह जगत ही पूर्णतया शब्दमय है। कहा जाता है कि शब्दों की संरचना माहेश्वर सूत्र से हुई है जो ताण्डव नृत्य करते हुए शिव के डमरू-निनाद का प्रतिफलन है। भक्तिकालीन कवि कबीर और तुलसी भी 'राम' के नाम को राम से बड़ा बताते हैं। अलंकरवादी आचार्य दण्डी कहते हैं, यह जगत अंधकार से भरा होता, अगर शब्दों का ज्योतिपुंज प्रकाशित न हुआ होता-

इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीव्यते।। (काव्यादर्श)

यदि, शब्दों में प्रकाशपुंज की इतनी संभावना है तो निश्चित ही उससे निर्मित भाषा मनुष्य की अनमोल सम्पत्ति है जो शिक्षा का सशक्त माध्यम होती है। शिक्षा से मनुष्य की अज्ञानता का अंधकार दूर होता है क्योंकि भाषा, मनुष्य के पारस्परिक संवाद का ही माध्यम नहीं है, विचार-चिन्तन, शिक्षण-प्रशिक्षण व्यवसाय, व्यापार, आर्थिकता, शासन-प्रशासन, न्यायालय, सूचना, ज्ञान साहित्य, संस्कृति, सभ्यता और जातीय राष्ट्रीय पहचान की भी वह संसाधन है और संघर्ष के लिए हथियार भी है। औपनिवेशिक पराधीनता के विरोध और स्वराज प्राप्ति के लिए हिन्दी भाषा को हथियार रूप में ही इस्तेमाल किया गया था ताकि राष्ट्र को भाषाई एकता के सूत्र में बाँधा जा सके। सुखद यह कि इस पहल की अगुवाई

अहिन्दीभाषी महात्मा गाँधी, काका कालेलकर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द्र सेन, अरविन्द घोष, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि ने की थी।

यद्यपि, उस समय हिन्दी के साथ उर्दू को भी राष्ट्रभाषा बनाए जाने की माँग सज्ज़ाद ज़हीर जैसे लोग कर रहे थे क्योंकि शासकीय भाषा के रूप में उर्दू प्रयुक्ति की लम्बी पृष्ठभूमि थी। अंग्रेजों ने 1837 में छः सौ वर्षों से व्यवहृत फारसी को हटाकर भारतीय भाषाओं में उर्दू को कचहरी और दफ्तर की भाषा बनाया था। बहुत लंबे संघर्ष के पश्चात् बिहार, पश्चिमोत्तर आदि प्रान्तों में हिन्दी को उर्दू के समकक्ष स्थान प्राप्त हो सका था। किन्तु, बहुसंख्यक भारतीयों की भाषा हिन्दी ही थी जिसकी वज़ह से हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' का दर्जा दिया गया। वह, स्वतन्त्रता पूर्व राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान बनी और स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त 'राजभाषा'। अद्यतन, 'विश्वभाषा' के रूप में वह दूसरे या तीसरे स्थान पर दुनिया में प्रतिष्ठित है। तात्पर्य यही है कि भाषा की उपादेयता तभी सिद्ध होती है, जब वह जनजीवन की आकांक्षाओं, स्वप्न, रोजगार अस्मिता और अस्तित्व का माध्यम बनती है। अतएव, यह विचारणीय प्रश्न है कि समकालीन स्थिति में कौन सी भाषा अधिक उपयोगी हो सकती है जो उक्त कार्यों के संपादन में समर्थ हो। मातृभाषाएँ, राजभाषा, राष्ट्रभाषा या भारत की औपनिवेशिकता का स्मरण कराती अंग्रेजी भाषा? मान्यता तो यही है कि निज भाषा ही सोच-विचार, कल्पना, सृजनशीलता और अनुसंधान के लिए अधिक उर्वर होती है। आधुनिक काल, दूसरे शब्दों में हिंदी नवजागरण के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने अल्पायु में ही औपनिवेशिक परिस्थियों को भाँपते हुए कहा था-

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल,

निज बिनु भाषा ज्ञान के मिटै न हिय का शूल।। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-हिन्दीवर्द्धिनी सभा (सं. 1934) में पढ़ी गई कविता-'निज भाषा उन्नति अहै' कविता का अंश। हिन्दी प्रदीप खंड 1-2 में प्रकाशित, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। सौजन्यः भारतेन्दु रचना संचयन-गिरीश रस्तोगी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली। प्रथम संस्करण : 2010 ई.।

इक्कीसवीं सदी के वैश्विक परिदृश्य में शिक्षा का माध्यम क्या हो, यह बुनियादी सवाल राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020, के बहाने पुनः मंथन के लिए प्रेरित करता है, चर्चाएँ भी खूब हो रही हैं। भारत जैसे देश में जहाँ शक, हूण, पुर्तगाली, यवन, मुगल और अंग्रेज व्यापार करने आए, अकूत सम्पत्ति लूटी, तुर्की, मुगल और अंग्रेज अधिनायक बन कर यहाँ ठहर गये और भारतीयों को अपनी अँगुली पर नचाने लगे। तब, उन विदेशी शासकों की भाषा ही शासन-प्रशासन और न्यायालय की भाषा बनी। परिणामस्वरूप, उच्चकुलीन भारतवासी तत्परतापूर्वक उनकी भाषा सीखकर बदली व्यवस्था के अग्रिम पंक्ति में खड़े होने का प्रयास करने लगे और अपने बच्चों को भी उसे सीखने को प्रेरित किये। तत्कालीन सत्तासीनों की भाषा में उन्हें अपना भविष्य सुरक्षित दिखाई देने लगा। अपनी भाषा और संस्कृति उन्हें लज्जास्पद लगी। अद्यावधि अधिसंख्य भारतीयों की जीवनदृष्टि यही है। मगर, जिन्होंने बदलने का प्रयास नहीं किया, अपनी भाषा और संस्कृति से प्रेम करते रहे, वे गँवार या अशिष्ट कहलाए। शिष्ट-अशिष्ट की अवधारणा यहीं से विकसित होती है। खैर.....

राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020 के भाषाई संदर्भ की चर्चा का उद्देश्य सिर्फ मसौदे का पाठ या प्रशंसा

करना नहीं है, अपितु भाषाई मुद्दे की जटिलता का पुनराख्यान करते हुए औचित्यपूर्ण, संस्कृतिगर्भी और भविष्योन्मुखी शिक्षा के माध्यम रूप में ऐसी कारगर उपयोगी भाषा को रेखांकित करना है जिसके ज़रिए नई पीढ़ी का सचमुच उत्थान हो। वह, अपनी सभ्यता-संस्कृति का संवाहक बने, पद-प्रतिष्ठा प्राप्त करे और विश्व नागरिक बनने का भी उसमें सामर्थ्य आये। अत: यह कहना गलत न होगा कि भाषाई प्रसंग बच्चे और उनके अभिभावकों के लिए एक बड़ी चुनौती है कि वे वैश्विक परिदृश्य में सुरक्षित और सम्मानजनक अस्तित्व के लिए किन भाषाओं का चयन करें? उनकी औपचारिक शिक्षा का माध्यम प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक क्या हो? विकास का रास्ता तो साफ-साफ़ अंग्रेजी में दिखाई देता है, मगर सांस्कृतिक धरोहरों के छूट जाने, ज़मीनी और राष्ट्रीय पहचान के लुप्त होने का ख़तरा भी उन्हें चैकन्ना बनाता है।

नई शिक्षा नीति 2020 के मसौदे का एक अंश है, ''प्राचीन और सनातन ज्ञान और विचार की समृद्ध परम्परा के आलोक में यह नीति तैयार की गई है। प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परम्परा और दशज़्न में सदा सर्वोच्च लक्ष्य माना जाता था।'' (परिचय, पृ. सं. 4, राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।) इसी तरह, तक्षशिला नालन्दा विक्रमशिला जैसे संस्थानों और उन महापुरुषों का स्मरण किया गया है जो भारतीय वाङ्मय की चिन्तन परम्परा और अनुसंधान के लिए विख्यात रहे हैं। भारत ने चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट वराहमिहिर भाष्कराचार्य बह्मगुप्त, चाणक्य, पाणिनी, पतंजलि जैसे अनेक विद्वानों को जन्म देकर यह सिद्ध किया है कि अपनी भाषा में उच्चस्तरीय गुणवत्तापरक शोध किया जा सकता है। इस कथन की प्रबल पुष्टि प्राचीनतम भाषा संस्कृत करती है। संस्कृत, मात्र एक भाषा नहीं, भारतीय संस्कृति की उत्कृष्ट सम्पदाओं की धरोहर है। अत: इसे भी संरक्षित किये जाने पर ज़ोर है। संस्कृत, माध्यमिक कक्षाओं में महत्त्वपूर्ण विकल्प रूप में और आठवीं कक्षा तक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। यह, संविधान की आठवीं अनुसूची में एक समृद्ध भाषा के विकल्प रूप में है। जगज़ाहिर यथार्थ यही है कि संस्कृत भाषा में लिखित ग्रन्थों के कारण ही भारतीय चिन्तन परम्परा का गौरव विश्व में गूँजता है। इसीलिए, उत्तर प्रदेश सरकार पहली मर्तबा संस्कृत में भी अधिसूचनाएँ जारी करने का निश्चय करती है, यह सुखद है।। संस्कृत को 'राष्ट्रभाषा' की संज्ञा देने की वकालत भी की जा रही है, यह तर्क देते हुए कि इसका विरोध दक्षिणवासी भी नहीं करेंगे। तथ्य यही है कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ-तमिल, तेलुगु, कन्नड़ मलयालम, ओड़िया आदि की जननी संस्कृत है। इसीलिए, उनमें संस्कृत की प्रभूत शब्दराशियाँ हैं। संभवत: यह सोच, राष्ट्रवादी चिन्तक पं. दीनदयाल उपाध्याय की भाषा विषयक दृष्टि का प्रतिबिम्बन है।

दक्षिण भारतीयों में अपनी क्षेत्रीय भाषा को लेकर सजगता है और वे इस मुद्दे पर बेहद संवेदनशील हैं। उन्हें, अपनी संस्कृति से भी बेहद प्यार है जो भाषा में अन्तर्निहित होती है। यहाँ, यू. आर. अनन्तमूर्ति का उल्लेख किया जा सकता है। अंग्रेजी के प्रोफेसर होकर भी उन्होंने कन्नड़ में रचनात्मक लेखन किए तथा 'बेंगलुरू' संज्ञा के लिए अभियान भी चलाया। वस्तुत: मातृभाषा, मातृकुल परिवेश की भाषा होने से मीठी लगती है। उसके महत्त्व का मूल कारण जन्मभूमि और क्षेत्रीय पहचान का प्रतिनिधित्व करना है। दरअसल, क्षेत्रीयता का संबंध भौगोलिकता से होता है और अपने भूगोल से कोई विरागी या निरपेक्ष नहीं

हो पाता। जन्मभूमि प्रिय होती है और वहाँ की भाषा भी विद्यापति के शब्दों में-'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' होती है। वर्तमान जीवन का यह सच हो न हो मगर साहित्यिक पूर्वजों की यही धारणा रही है। आदिकवि वाल्मीकि 'रामायण' में राम से लक्ष्मण के प्रति कहलाते हैं-

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।। (लंकाकाण्ड, वाल्मीकि-रामायण।)

क्षेत्रीय वैविध्य के कारण भाषाई अनुसंधान कार्य भी भाषावैज्ञानिकों के लिए एक बड़ी चुनौती है। लोकोक्ति है-'कोस-कोस पर पानी बदले, चार कोस पर बानी'। ऐसी स्थिति में प्राथमिक शिक्षा, मातृभाषा में दी जायेगी तो बच्चों की सीखने की प्रक्रिया तो निश्चित रूप से सहजग्राह्य होगी, ऐसी धारणा अनुभव और विचार मंथन के बाद ही बनी है। दो से आठ तक की उम्र में सीखने की क्षमता भी अधिक होती है। किन्तु मातृभाषाओं में शिक्षण-प्रक्रिया संभव कैसे होगी, यह चिन्ता अवश्य उभरती है। जब, शिक्षा का स्वरूप राष्ट्रीय हो, सरकारी-गैर सरकारी संस्थानों में शिक्षा- प्रक्रिया को अधिकाधिक प्रभावोत्पादक बनाने हेतु नूतनातन प्रयोग अर्थात् नवाचार किये जा रहे हों तथा शिक्षा के बल पर ही भारतीयों की प्रतिभा का लोहा विश्व मानता हो, ऐसी तीव्रगामी स्पर्धापरक स्थिति में भाषाई महिमा अन्यतम हो जाती है राष्ट्र और व्यक्ति दोनों के चरित्र निर्माण के लिए। जैसे राजभाषा हिन्दी को अधिकाधिक उपयोगी बनाने के लिए उसे ज्ञान साहित्य से संबद्ध किया जा रहा है, वैसा ही प्रयत्न अन्य भारतीय भाषाओं के लिए संभव हो सकेगा क्या? प्रादेशिक स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जा सकता है बेशक, परन्तु उसी प्रदेश में वह जीवनपर्यन्त रह सकेगा, रोटी और बेटी का संबंध भारतीय स्तर पर नहीं होगा, यह आश्वासन कौन देगा और जो अभिभावक अखिल भारतीय स्तर पर कार्यरत होंगे, वे किस भाषा में अपने बच्चों को शिक्षित करेंगे?

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारतीय भाषाओं के प्रति संरक्षण- भाव ही नहीं रखती, उसके महत्त्व का प्रमुखता से रेखांकन भी करती है। मसौदे के 4.11वें अंश में लिखा गया है, ''जहाँ तक संभव हो, कम से कम ग्रेड 5 तक लेकिन बेहतर यह होगा कि यह ग्रेड 8 और उससे आगे तक भी हो, शिक्षा का माध्यम घर की भाषा/मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा होगी। इसके बाद भी, घर/स्थानीय भाषा को जहाँ भी संभव हो, भाषा के रूप में पढ़ाया जाता रहेगा। सार्वजनिक और निजी दोनों तरह के स्कूल इसका अनुपालन करेंगे। उच्चतर गुणवत्ता वाली पाठ्यपुस्तकों को घरेलू भाषा/मातृभाषा में उपलब्ध कराया जाएगा''। (बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति, 4.11, पृ.सं. 19, राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।) इस अंश का निचोड़ यही है कि प्राथमिक स्तर शिक्षा व समझ का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए ताकि बच्चा सहज रूप से पाठ्यपुस्तक से जुड़कर ज्ञान अर्जित कर सके। मसौदे के इस संदर्भ की सर्वत्र प्रशंसा की गई। मैं भी मानती हूँ, इस सोच पर किसी को ऐतराज नहीं होना चाहिए। शिक्षा-माध्यम के प्रश्न पर महात्मा गाँधी और अरविन्द घोष भी यही राय रखते थे। गाँधी का विचार था, ''माता का दूध पीने से लेकर जो संस्कार और मधुर शब्दों द्वारा शिक्षा मिलती है उसके और पाठशाला की शिक्षा के बीच संगत होना चाहिए। परकीया भाषा से वह शृंखला टूट जाती है और उस शिक्षा से पुष्ट होकर हम मातृद्रोह करने लग जाते हैं।'' हालाँकि, मातृभाषा पर कोठारी आयोग (1964-66) में भी दी गई है

जिसका गठन शिक्षा प्रणाली को नया स्वरूप प्रदान करने हेतु हुआ था और जिसके अध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष दौलत सिंह कोठारी थे। यहाँ, आयोग के महत्त्वपूर्ण सुझावों का उल्लेख करना चाहूँगी– 1. बच्चों को प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में दिया जाये। 2. माध्यमिक स्तर भी स्थानीय भाषाओं में शिक्षण के लिए प्रोत्साहन दिया जाये। 3. स्नातकोत्तर तक की शिक्षा मातृभाषा में दिया जा सकता है और 4. महत्त्वपूर्ण सुझाव यह भी था कि एक समान शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए। कोठारी आयोग के इन सुझावों को मान्यता देते हुए सन् 1968 में प्रथम राष्ट्रीय शिक्षानीति की घोषणा हुई थी। तदुपरान्त कुछ संशोधन समेत सन् 1986 में अगली राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू की गई जो अब तक चल रही है। यद्यपि, सन् 1990 में आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में समीक्षा समिति बनी तथा सन् 1993 में प्रो. यशपाल समिति का भी गठन हुआ। तात्पर्य यह कि परिवर्तन की लहरें शिक्षा व्यवस्था के पुनर्मूल्यांकन की भी माँग करती हैं।

दुनिया के सबसे बड़े लोकतान्त्रिक देश भारत की एक महती विशेषता बहुभाषिकता है। विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय और जाति के लोगों की धरती होने से यहाँ सांस्कृतिक और भाषाई बहुलता सहज ही अनुभव की जा सकती है जो एक दूसरे के पूरक हैं। भाषा, संस्कृति और सभ्यता को सँजोये हुए होती है इसीलिए जब एक भाषा मरती है तो उसकी धरोहर भी नष्ट हो जाती है। अत: उसे संरक्षित और संवर्द्धित करने की आवश्यकता होती है। इसी युक्ति से समाज का स्वरूप लोकतांत्रिक और समावेशी बनता है। कहना चाहूँगी कि नई तकनीकें भी भाषा–माध्यम से विकसित होती हैं। तकनीकी विशेषज्ञ या विज्ञानी जिस परिक्षेत्र का होता है, उसे अपने क्षेत्र के प्रति सम्मोहन होता है। इसीलिए, भारतीय भाषाओं का प्रयोग इन्टरनेट पर खूब हो रहा है। प्रौद्योगिकी से भाषाओं की यह मैत्री विकीपीडिया पर हम देख सकते हैं। स्थानीय सांस्कृतिक परम्पराओं का सटीक ज्ञान निजी भाषा में ही संभव होता है। तथापि, अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है क्योंकि वह सत्ता के सिंहासन पर आज की तारीख में भी विराजमान है। अत: कुछ शंकाएँ, प्रश्न और उलझनें भी मन को कुरेदती हैं जिन्हें आपसे साझा करना चाहूँगी।

1. अंग्रेजी को भारतीयों पर लादने वाले मैकाले की हम जमकर निन्दा करते हैं। मगर, मैकाले की भाँति क्या हमलोग अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति प्रतिबद्धता बनाये हुए हैं? सभ्य और शिष्ट बनने के प्रयत्न में हम अपनी मातृभाषा से दूर होते गये। उत्तर भारतीयों ने खड़ी बोली को बच्चों की मातृभाषा बना दिये, इसकी एक सकारात्मक परिणति यह हुई कि बच्चा भाषाई द्वैत से मुक्त हुआ अर्थात् घर और पाठशाला की भाषा एक हुई। किन्तु नुक़सान यह हुआ कि वह अपनी क्षेत्रीय बोली से अपरिचित हो गया। हास्यास्पद स्थिति तब उत्पन्न होती है जब माताएँ हिन्दी शब्दों को अनुप्रयुक्त मानकर वस्तु– पहचान अंग्रेजी शब्दों से कराती हैं जिसकी वज़ह से शैशवावस्था में ही रटन्त कला की बुनियाद पड़ जाती है। ऐसी मानसिकता के कारण हिन्दी 'हिंग्रेजी' और अंग्रेजी 'हिंग्लिश' हो जाती है। भारतीय जनमानस के भीतर यह धारणा गहरा गई है कि भविष्य अंग्रेजी में ही सुरक्षित हो सकता है। सरकारी या गैर सरकारी सभी कार्यसंस्थानों में अंग्रेजी का वर्चस्व है भी। इसीलिए, सरकारी पाठशाला में निर्धन अभिभावक भी बच्चे को नहीं भेजना चाहते। यह यथार्थ भी है कि वहाँ से पढ़े बच्चे ताउम्र अंग्रेजी में मुखर नहीं हो पाते। उन्हें पग–पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। परिणामस्वरूप, अंग्रेजी माध्यम के स्कूल मुहल्ले–मुहल्ले दिखाई देने लगे हैं। वस्तुत: भारतीयों का चरित्र इज़राइलियों जैसा नहीं है कि उनमें हिन्दी के प्रति

अस्मिताई बोध हो। उन्होंने हजारों वर्ष से मृत पड़ी हिब्रू को आज की तिथि में ज्ञान, विज्ञान और शोध, नवाचार की श्रेष्ठ भाषाओं में से एक सिद्ध किया है। जबकि, यहाँ पीड़ादायी और शर्मनाक स्थिति यह घटित हुई कि हिन्दीभाषी उत्तर प्रदेश की बोर्ड परीक्षा में लाखों विद्यार्थी अपनी मातृभाषा/राजभाषा हिन्दी में अनुत्तीर्ण हुए। ऐसी घटना, हिन्दी के प्रति घोर उपेक्षा भाव की परिणति है।

2. स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी और जननायकों द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया गया। फिर भी, ऐसे स्थलों पर जहाँ कई प्रान्तों के शिक्षित समुदाय हों, वहाँ उनकी सम्पर्क भाषा अंग्रेजी होती है न कि हिन्दी। यह व्यवहार, न तो राष्ट्रहित में है और न व्यावसायिक दृष्टिकोण से हितकर है। हिन्दीतर भाषियों ने अंग्रेजी को सहज ही गले लगा लिया किन्तु हिन्दी उन्हें थोपी जाने वाली भाषा लगी। हिन्दीभाषियों में भी दक्षिण भाषाओं के प्रति कोई औत्सुक्य आकर्षण नहीं, उनका मातृभाषाई प्रेम भी केवल राजनीतिक है ताकि उनकी अलग शिनाख्त हो और वे स्वत: को लाभान्वित कर सकें। किन्तु अंग्रेजी तो पद- प्रतिष्ठा की भाषा है अत: उसे शिरोधार्य करना अनिवार्य है। वेदना और विडम्बनापरक स्थिति तब होती है जब दक्षिण भारतीय हिन्दी नहीं जानता और उत्तर भारतीय अंग्रेजी; वे दो अजनबी ग्रह के प्राणियों की भाँति साथ यात्रा करते हुए भी मूक रहकर एक दूसरे को ताकते हैं। ऐसी दूरियों को मिटाने, राष्ट्रीय एकता और भाषाई अस्मिता/समस्या के राजनीतिक समाधान के लिए 'त्रिभाषा सूत्र' की सिफारिश सर्वप्रथम, 1956 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने की थी ताकि भाषाई वैमनस्य दूर हो और हिन्दी को सर्वस्वीकार्यता मिले। कालान्तर में भी हिन्दी को सम्पर्क भाषा और राजभाषा रूप में स्वीकृति दिलाने के प्रयास हुए। सन् 1961 के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में पुन: त्रिभाषा सूत्र का मुद्दा उठाया गया और सुझाव दिया गया- हिन्दीभाषी राज्यों में हिन्दी और अंग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा अर्थात् दक्षिण भारतीय भाषा पढ़ाई जाय। इसी प्रकार, हिन्दीतर भाषी राज्यों में क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेजी के साथ हिन्दी पढ़ाई जाये। सन् 1968 में भारतीय संसद के दोनों सदनों में इस त्रिभाषा सूत्र की मुख्य बातों को मान भी लिया गया। किन्तु, वस्तुस्थिति यह है कि इस सूत्र के परिपालन में कभी ईमानदारी नहीं बरती गई। हिन्दी भाषी राज्यों में दक्षिण भाषाओं की जगह उर्दू को रखा गया जबकि उर्दू और हिन्दी बहनें हैं। यह सिलसिला भी आगे के वर्षों में कायम नहीं हुआ। नतीजतन, दक्षिण-प्रान्तों में हिन्दी के प्रति सहज स्वीकार्य भाव आज तक नहीं आया। अलबत्ता, विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भारतीय साहित्य को पढ़ा जा रहा है लेकिन अनुवाद के ज़रिए। भारतीय भाषाओं में डिप्लोमा पाठ्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं। दुखद यह कि विद्यार्थी रचनाकारों से तो अवश्य परिचित हो जाते हैं, किन्तु भाषा में दक्ष नहीं हो पाते। उनकी दक्षता बनती है तो सिर्फ अंग्रेजी में। संघ में राजभाषा हिन्दी की सहायक रूप में अंग्रेजी को व्यवहृत करने की स्वीकृति दी गई थी, मगर इसके विपरीत संघ की प्रमुख भाषा अंग्रेजी बन बैठी है। संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षा में अंग्रेजी की अनिवार्यता है। नई शिक्षा नीति 2020 का मसौदा भी अंग्रेजी में ही तैयार हुआ, पुन: हिन्दी लिप्यांतरण किया गया। भारत के सभी कार्य संस्थानों में अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में त्रिभाषा फामूर्ले पर कोई विशेष टिप्पणी नहीं हुई है, यथावत् नैरन्तर्य बनाने की बात जरूर कही गई है। हिन्दी को भी अलग से विशेष महत्त्व नहीं दिया गया; न राजभाषा के रूप में और न ही राष्ट्रभाषा रूप में, जबकि हिन्दी बनाम अंग्रेजी का द्वन्द्व निरन्तर गतिमान है।

3. बाज़ारवाद और उपभोक्तावादी स्पर्धा में आम आदमी भी भौतिक सुख के शिखर छूने को लालायित है। बाज़ार में नये नये उत्पादों का अवतरण, लुभावन विज्ञापन और इलेक्ट्रनिक उपकरण, वाहनों के बदलने की अनिवार्यता से संतोष धन नष्ट हो गया है। अत: सुख-सुविधा और अकूत सम्पत्ति के लिए उसे उसी भाषा के प्रति अनिवार्य आकर्षण बढ़ा है जिसके ज़रिए वह सुखद अवसर अपने पक्ष में कर सके। वह फ्रेंच, जर्मन, अरबी स्पैनिश सीखना चाहता है ताकि विदेशों में भी भविष्य सँवार सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मसौदे में भी ''कोरियाई, जापानी, थाई, फ्रेंच, जर्मन स्पैनिश पुर्तगाली और रूसी भाषा को माध्यमिक स्तर से ही सीखने का विकल्प उपलब्ध कराने को कहा गया है।'' (बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति, 4.21, पृ.सं. 22, राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।) इन भाषाओं को सिखाने हेतु भी प्राय: अंग्रेजी को माध्यम रूप में अपनाया जाता है। फिर यह सवाल अधिक पैना हो जाता है कि मातृभाषाओं में शिक्षण की योजना केवल दिली मामला है, शुभाकांक्षा है या सचमुच ठोस क़दम जिससे राष्ट्रीय गौरव में अभिवृद्धि होगी? मातृभाषा माध्यम से शिक्षित युवा पीढ़ी की राष्ट्रीय पहचान बन सकेगी क्या? एक तरफ क्षेत्रीय भाषाओं को महिमान्वित करने की योजना और दूसरी तरफ विदेशी विश्वविद्यालयों की भारत में प्रविष्टि; दोनों में संगति बनेगी या विषमता की रेखा मोटी होगी? शिक्षा के निजीकरण की प्रक्रिया से भी अमीर गरीब की खाइ बढ़ेगी ही। मुझे लगता है, समझ की सुविधा हेतु शिक्षा- माध्यम मातृभाषाएँ हों बेहतर होगा। परन्तु, अंग्रेजी को एक विषय रूप में कक्षा एक से पढ़ाया जाने में औचित्य अधिक प्रतीत होता है। विज्ञान, तकनीक और सूचनाओं के आकाश से अंग्रेजी को अपदस्थ करना संभव नहीं लगता। प्राय: सत्ता प्रतिष्ठानों में हिन्दीभाषी बमुश्किल प्रवेश पाते हैं। फिर, वर्तमान परिवेश में व्यक्ति विश्व नागरिक भी तो हुआ है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की पैठ और दुनिया के विभिन्न देशों में रोजगार और सेवा अवसरों की उपलब्धता से विदेशी भाषाएँ अनिवार्य रूप से आवश्यक लगने लगी हैं। संभवत: इसी सत्यता का परिज्ञान कर उत्तर प्रदेश सरकार ने माध्यमिक विद्यालयों में अंग्रेजी माध्यम के विकल्प को भी लागू किया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में कम्प्यूटर, सूचना तकनीक, उदारीकरण आदि पर ज़ोर दिये जाने के कारण अंग्रेजी का महत्त्व बढ़ा था। परन्तु आज की तारीख में जिस तीव्रता से कार्य शैली, आचार-विचार और शिक्षण पद्धति में परिवर्तन आया है, हम ऑनलाइन हुए हैं, उससे भी अंग्रेजी का महत्त्व बरक़रार रहेगा। डिजिटल इण्डिया से 'भारत' बनने का राह भी पत्थर पर दूब उगाने जैसा ही लगता है। सच यही है कि भाषा वही समृद्ध होती है जिसका संबंध प्रतिदिन के व्यवहार, व्यवसाय और रोजगार से हो। लेकिन उसे बाजारू बनने से बचाना भी अनिवार्य है ताकि उसकी सांस्कृतिक सम्पदा सुरक्षित रह सके। अतएव, हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं को जब तक रोजगार और सेवाक्षेत्रों से जोड़ा नहीं जायेगा, भविष्य संभावनापूर्ण नहीं हो सकता। वैसे उम्मीद बाँध लेने में कोई हर्ज़ नहीं। जहाँ चाह, वहाँ राह। भारतीय भाषाओं को ज्ञान सम्पदा, विज्ञान और तकनीकी उपायों से समृद्ध करने की भी आवश्यकता है। हिन्दी के प्राध्यापक भी अंग्रेजी शब्दों के तर्ज पर हिन्दी शब्द गढ़ने की आवश्यकता नहीं समझते, अपितु अंग्रेजी शब्दों को ही तपाक से ग्रहण कर लेते हैं। इस तरह, अंग्रेजी वर्चस्व का एक महती कारण वर्तमान जीवन धारा के अनुकूल विभिन्न विषयों के लिए हिन्दी में ठोस सामग्रियों का अभाव है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने डेढ़-

दो दशक पहले ही संभावित स्थितियों को भाँपते हुए निज भाषा को विश्व भर के ज्ञान विज्ञान से समृद्ध करने के लिए लिखा था-

विविध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार।

सब देसन से लै करहू भाषा माहि प्रचार। (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-हिन्दीवर्द्धिनी सभा(सं. 1934) में पढ़ी गई कविता-'निज भाषा उन्नति अहै' कविता का अंश। हिन्दी प्रदीप खंड 1-2 में प्रकाशित, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। सौजन्य: भारतेन्दु रचना संचयन-गिरीश रस्तोगी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली। प्रथम संस्करण : 2010 ई.)

सदिच्छा और सद्भावना से कटु यथार्थ नहीं बदलता। उसके लिए नानाविध उपायों के द्वार खोलने पड़ते हैं। इसीलिए, सोच को यथार्थ धरातल देने के लिए नई शिक्षानीति 2020 में कुछ उपायों की भी चर्चा की गई है। संदर्भ 22.14 के अनुसार, ''उच्चतर गुणवत्ता वाला अधिगम सामग्री और अन्य महत्त्वपूर्ण लिखित एवं मौखिक सामग्री उपलब्ध'' कराने के लिए 'एक इंस्टीट्यूट ऑफटांसलेशन एंड इंटरप्रिटेशन (आई आई टी आई) की स्थापना की जायेगी।' (भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति का संवर्द्धन, 22.14, पृ.सं. 90, राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।) ज़ाहिर है, प्रौद्योगिकी के अधिकाधिक प्रयोग से भारतीय भाषाओं में प्रायोगिक उर्वरता आयेगी, इस्तेमाल बढ़ेगा किन्तु उसी अनुपात में सेवाकार्यों में वृद्धि भी होनी चाहिए। नई शिक्षा नीति में भाषा प्रौद्योगिकी के साथ ही कृत्रिम मेधा के विकास पर भी जोर दिया गया है। इस आधार पर भी शिक्षानीति में भारी परिवर्तन लाने की उम्मीद की जा रही है। कृत्रिम मेधा से आशय है, कृत्रिम ज्ञान का विकास जिससे मशीनों में भी निर्णय लेने की क्षमता पैदा हो सके। वैसे, प्रौद्योगिकी के ज़रिए प्रदेशानुसार भाषा विशेष में सरकारी अधिसूचनाओं को प्रेषित कर आपसी भाषाद्वेष कम किया जा सकता है। इससे अंग्रेजी वर्चस्व का ग्राफभी घटेगा। प्रश्न, अस्मिता, स्वदेशी भाव और आत्मनिर्भरता का है, अंग्रेजी भाषा के बहिष्कार का नहीं।

अंतत: हमारी सोच यही है कि हिन्दी और हिन्दीतर भाषाओं का जो अधिकार है, वह उन्हें प्राप्त होना ही चाहिए। वैसे, विश्व के तमाम विश्वविद्यालयों में इंडोलाजी विभाग चलाए जा रहे हैं जहाँ विदेशी छात्र भारतीय भाषाओं के माध्यम से भारतीय ज्ञान संपदा और चिन्तन परम्पराओं से परिचित हो रहे हैं, यह भारतीयता और भारतीय भाषाओं की सकारात्मक स्थिति और सर्वव्यापी स्वीकृति है। प्रवासी भारतीय विदेशों में हिन्दी संस्थाएँ बनाकर हिन्दी के प्रचार प्रसार में सक्रिय हैं। हिन्दी फिल्मी गीतों पर विदेशी थिरक ही नहीं रहे हैं, अपितु पश्चिम में वैदिक मंत्रों के सस्वर पाठ भी सुनने को मिल जाते हैं। निस्संदेह, लोकप्रियता और राष्ट्रीय भावबोध से हिन्दी की परिधि का विस्तार और गौरववर्धन हुआ है। इसीलिए, अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी दिवस 10 जनवरी को पूरा विश्व मनाता है। वस्तुत: हिन्दी और भारत का अटूट रिश्ता अन्योन्याश्रित है। अत: स्वदेश में उसकी स्थिति हर हाल में मज़बूत होनी चाहिए।

सम्पर्क : *वाराणसी (उ.प्र.)*
मो. 9936439963, 8840473942

डॉ. सतीश चतुर्वेदी 'शाकुन्तल'

पं. दीनदयाल उपाध्याय का जीवन-दर्शन और आधुनिक उपभोगवाद

पं. दीनदयाल उपाध्याय एक उच्च कोटि के विचारक, प्रतिभा संपन्न लेखक, कुशल पत्रकार प्रभावी वक्ता, निपुण संघटक, चतुर राजनीतिज्ञ व सफल आंदोलनकर्ता थे। वे अनासक्त, निष्काम कर्मयोगी थे। उनका हृदय शुद्ध, चरित्र प्रखर देशभक्ति तथा लोक-संग्रह की अपूर्व शक्ति का पवित्र संगम था। एक बिस्तर, कुछ पुस्तकें, शरीर को सर्दी और गर्मी से बचाने के लिए अत्यंत आवश्यक कुछ वस्त्र ही उनकी संपत्ति थी। (पं.दीनदयाल उपाध्याय : महाप्रस्थान और जीवन-दर्शन-तनसुखराम गुप्त, पृ.9) तभी तो डॉ. श्याम प्रसाद मुखर्जी ने एक बार कहा था - 'यदि दीनदयाल जैसे दो-तीन व्यक्ति मुझे और मिल जाएँ, तो मैं भारत की राजनीति बदल सकता हूँ।'

उनकी सादगी, न्याय एवं सत्यप्रियता के संस्मरण बहुत हैं।

उपाध्याय जी भारतीय संस्कृति, भारतीय अर्थशास्त्र और भारतीय राजनीति के पारदर्शी पंडित थे। निरभिमानी स्वभाव एवं मधुर वाणी से युक्त उनका व्यक्तित्व ऋषियों जैसा और बुद्धि चाणक्य जैसी थी। व्यक्तित्व सुख-सुविधा की दृष्टि से अपना अलग से घरौंदा बनाने की साधारण मानव की अभिलाषा उनके मस्तिष्क को कभी छू न सकी। माँ भारत की गोद, यही उनका घर था; ईश्वरप्रदत्त नीलगगन, यही उनका छप्पर था। भारत की हर नारी उनकी माँ और बहन थी। भारत माँ का हर एक लाल उनका सहोदर भाई था। देश की अखण्डता व स्वतन्त्रता की रक्षा, वही एक उनके मन की धुन थी। समाज के हर व्यक्ति की खुशहाली के लिए अपने जीवन का एक-एक क्षण लगाना, यही उनके हृदय की एकमेव आकांक्षा थी। वे अपनी समग्र कर्मचेतना, प्रतिभा और जीवन का राई-रत्ती सब कुछ देश को निछावर कर चले थे। (पृ. 28-29)

1. उनकी सादगी का एक नमूना देखिए। यात्रा में एक बार किसी स्टेशन पर बनियान पहने खड़े थे। भूख लगी थी। डाइनिंग कार का बैरा उधर से गुजरा। उन्होंने बैरे से कहा, 'भाई जरा खाना पहुँचा देना।' इस आत्मीयपूर्ण सम्बोधन का सही मूल्यांकन बैरा क्या जाने? दो स्टेशन गुजर गए, भोजन न आया। गंतव्य स्टेशन से एक स्टेशन पूर्व वही बैरा दिखाई दिया। दीनदयाल जी ने उसे बुलाया। बैरा यह देखकर कि 2 घंटे पूर्व थाली का आर्डर देने वाला अत्यन्त सामान्य व्यक्ति प्रथम श्रेणी का यात्री है, डरा, झिझका और हाथ जोड़कर कहने लगा, 'साहिब! माफ कर दें। गलती हो गई।' दीनदयाल जी ने कहा, 'डरो मत।

शिकायत मैं नहीं करता, लेकिन एक बात याद रखो कि कपड़े देखकर खाना देने की आदत बुरी है- इसको छोड़ देना।'

2. एक बार दीनदयाल जी बम्बई से नागपुर रेल द्वारा जा रहे थे, जो तृतीय श्रेणी के डिब्बे में थे। परम पूजनीय गुरु जी प्रथम श्रेणी में यात्रा कर रहे थे। किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर चर्चार्थ गुरु जी ने दीनदयाल जी को बुलाया। बातचीत करने के उपरांत दीनदयाल जी जब लौटे तो सर्वप्रथम उन्होंने टी.टी.ई. की खोज की। टी.टी. के मिलने पर उन्होंने कहा, 'उनके पास तृतीय श्रेणी का टिकट है, किन्तु उन्होंने दो स्टेशनों तक प्रथम श्रेणी के डिब्बे में यात्रा करी है, अत: तत्सम्बंधी अधिक किराया जमा करवाना चाहते हैं।' एक क्षण टी.टी.ई. ठिठका और आश्चर्य में पड़ गया। कहाँ तो लोग आँखों में धूल झौंककर बगैर टिकिट यात्रा करते हैं और कहाँ यह सीधा-साधा प्राणी जो केवल दो स्टेशनों का प्रथम श्रेणी की यात्रा यात्रा का पूरकधन देने को स्वयं तत्पर है? उसने धनराशि जोड़ी, उक्त धन लिया और पूछा, क्या आप रसीद भी चाहते हैं? दीनदयाल जी ने तत्काल उत्तर दिया, 'अवश्यमेव।' यह है उनकी सच्चाई और ईमानदारी का एक उदाहरण। वस्तुत: उनका अन्त:करण ही उनका मार्गदर्शक था।

वे कम बोलते थे, सुनते अधिक थे। अतिशयोक्ति और प्रचार में उनकी रुचि नहीं थी। दूसरा व्यक्ति उनकी बात पूर्णत: समझ ले, यही उनका उद्देश्य था। कार्यकताओं द्वारा भूल हो जाने पर 'अब जो हो गया सो हो गया, भविष्य में ध्यान रखना चाहिए', इस सूत्र-वाक्य के द्वारा उन्हें समझा देते थे।

आगरा में नानाजी देशमुख और दीनदयाल जी साथ-साथ रहते थे नानाजी बताते हैं कि एक दिन प्रात: हम दोनों मिलकर सब्जी खरीदने गये। दो पैसे की सब्जी खरीदी। लौटकर घर पहुँचने को ही थे कि दीनदयाल जी एकाएक रुक गये, वे बोले नाना बड़ी गड़बड़ हो गई। मेरे पूछने पर उन्होंने कहा मेरी जेब में चार पैसे थे। उनमें से एक पैसा खोटा था। वह पैसा ही उस सब्जी वाली को दे आया हूँ। मेरी जेब में बचे दोनों पैसे अच्छे हैं वह क्या कह रही होगी, चलो उसे ठीक पैसे दे आयें। सब्जीवाली को बताया तो वह कहने लगी कि कौन ढूँढ़ेगा तुम्हारा खोटा सिक्का? किन्तु दीनदयाल जी नहीं माने। उस बुढ़िया के पैसों के ढेर में से अपना खोटा सिक्का ढूँढ़ा और बुढ़िया को ठीक सिक्का दिया। बुढ़िया की आँखें डबडबा आयीं।

द्वितीय वर्ष के अध्ययन के दौरान ममेरी बहिन रमादेवी बीमार हो गई। दीनदयाल जी की परीक्षायें सामने थीं। परिवार के मना करने पर भी वह बहन को इलाज के लिये सैनिटोरियम ले गये, पर अपार परिश्रम के बाद भी बहन नहीं बची। दीनदयालजी परीक्षा भी न दे सके।

इसके बाद मामा के आग्रह पर शासकीय प्रशासनिक पद हेतु लिखित परीक्षा में बैठे व साक्षात्कार हेतु चुन लिये गये। साक्षात्कार हेतु सूट चाहिये था। अन्तत: मामी से 25 रू. लेकर कपड़ा खरीदा व दर्जी को दे आये। सूट समय पर न सिल पाया। दीनदयाल जी धोती कुर्ता में ही गये। वहाँ उपस्थित अन्य प्रतियोगियों ने उनकी वेषभूषा देखकर उन्हें पंडित जी कहा। यह पहला अवसर था जब उन्हें पंडित जी कहा गया। परिणाम आने पर दीनदयाल जी का नाम चयनित लोगों की सूची में सबसे ऊपर था।

दीनदयाल जी संघ की शाखा में जाते थे। देश की गुलामी, गरीबी अभाव व चारित्रिक पतन की स्थिति से चिंतित थे। उन्होंने निर्णय किया कि इस जीवन में वह नौकरी नहीं करेंगे। यह जीवन देश के लिये ही समर्पित होगा।

विवाह के लिए जब उन पर दवाब बनाया गया तो दीनदयाल जी ने अपने मामा को 21 जुलाई 1942 को पत्र लिखकर कहा कि-समाज की उन्नति के बिना व्यक्ति का विकास असंभव है। यदि कुछ व्यक्ति समाज में उन्नत हो भी गये, तो उससे समाज को क्या लाभ है? वस्तुतः यह हानिकारक विकास है। आज समाज को हमारे जीवन की अपेक्षा है। हमें उसे पूर्ण करना है।

''जिस समाज और धर्म की रक्षा के लिये राम ने वनवास सहा, कृष्ण ने अनेक कष्ट उठाये, राणा प्रताप जंगल-जंगल मारे फिरे, शिवाजी ने सर्वस्व समर्पण कर दिया, गुरु गोविंद सिंह के छोटे-छोटे बच्चे जीते जी किले की दीवारों में चुने गये क्या उसकी खातिर हम अपने जीवन की आकांक्षाओं का भी त्याग नहीं कर सकते हैं।''

1945 में वे उत्तर प्रदेश प्रान्त के सह प्रान्त प्रचारक हो गये। भाऊराव देवरस उस समय प्रान्त प्रचारक थे। दीनदयाल जी ने राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना की। हिन्दी में राष्ट्रधर्म मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। पान्च्जन्य व स्वदेश का प्रकाशन भी दीनदयाल जी ने प्रारंभ किया।

दीनदयाल जी राष्ट्रधर्म प्रकाशन के मैनेजिंग डायरेक्टर थे, फिर भी प्रेस का कोई भी कार्य करने में उन्हें कोई झिझक नहीं होती थी। एक दिन अत्यधिक ठंड के कारण रात्रि पाली में कम्पोजीटर कम आये। स्वदेश दैनिक निकलने की समस्या खड़ी हो गई। प्रातः अखबार निकले तो कैसे? दीनदयाल जी को पता लगा। वे तुरन्त प्रेस पहुँचे और संपूर्ण रात कम्पोजिंग करते हुये सुबह स्वदेश का छपना संभव बनाया। (हमारे दीनदयाल जी, अर्चना प्रकाशन, पृ. 15-16) दीनदयाल जी के जीवन का प्रत्येक क्षण प्रेरणादायी था।

दीनदयाल जी के जीवन का प्रत्येक क्षण प्रेरणादायी था। उनकी सादगी, सरलता, संत स्वभाव के अनेकों किस्से किवदंती बनकर कार्यकर्ताओं के लिये प्रेरणा बनकर कार्य कर रहे हैं। एक घटना का उल्लेख आवश्यक समझता हूँ। दीनदयाल जी को बाल कटवाने थे। वे बाल कटवाने गये। लौटकर आये तो बाल कुछ अव्यवस्थित कटे देखकर किसी ने पूछा कि हजामत कहाँ बनवाई? तो दीनदयाल जी बोले गुम्मा सैलून में। किसी की समझ में नहीं आया कि यह गुम्मा सैलून कहाँ है और कैसा है। दीनदयाल जी ने खुलासा किया कि टूटे ईंट के टुकड़े (गुम्मा) पर सड़क के किनारे बैठ कर नाई से हजामत बनवाई थी।

एक बार वे ट्रेन से पटना जा रहे थे, तभी एक छोटा बच्चा जूते पालिश करने के लिये उनके पास आया। साथी ने उसे मना कर दिया और वह वहाँ से चला गया। पंडित जी ने साथी को उसे दोबारा बुलाने को कहा। उन्होंने उससे अपने जूते पालिश करवाये। उस लड़के के पास जूते चमकाने के लिए कपड़ा नहीं था। दीनदयाल जी ने अपने झोलों से अपनी बनियान निकालकर उसे दे दी। उसी दौरान उससे बातें करके उसके परिवार के बारे में जानकारी प्राप्त कर उसे उसकी मजदूरी से अधिक पैसे दे दिए। ये संस्मरण उनके एकात्मवाद के व्यावहारिक स्वरूप को स्वतः सिद्ध कर देते हैं।

एकात्म मानववाद सिद्धांत के प्रवर्तक उपाध्याय जी को अध्ययनशीलता एवं विचारों को पढ़कर 'सियाराम मय सब जग जानी' गोस्वामी तुलसीदास जी का सहज स्मरण हो जाता है। पंडित जी की मान्यता है कि देश काल एवं परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक धर्म एवं संस्कृति भिन्न होती है और अपनी ही परिस्थिति में मानव के लिए हित साधक सिद्ध होती है, यहाँ तक कि औषधि भी। इसीलिए वे पाश्चात्य

दृष्टि से भारतीय दृष्टि को अलग करते हैं। उनका मानना है कि, पाश्चात्य दृष्टि खंड-खंड देखती है जबकि हमारी मनीषा अखंड भाव की है। उन्होंने भारतीय धर्म-संस्कृति, व्यक्ति और समाज, पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद द्वैत-अद्वैव स्वार्थ-परमार्थ, समानता-आत्मीयता, जनसंघ, राष्ट्र की स्थिति, पुरुषार्थ चतुष्टय, कर्तव्य एवं अधिकार, लोकतंत्र, अर्थ व्यवस्था, प्रगति के मानदंड, व्यष्टि एंव समष्टि, संगठन, प्रगति के राष्ट्र के प्रतीक और अध्यात्म जैसे बिन्दुओं पर प्रासंगिकता के साथ अत्यंत सूक्ष्मता से विचार किया है। उनकी अपनी मौलिक व्याख्या है। वर्ग-भेद और संघर्ष ही पाश्चात्य का आधार है। हमारा आधार एकात्मकता का है, सद्गुणों का है। यहाँ भी छुआछूत, जाति-पाँति अनेक दुर्गुण उत्पन्न हुए, परंतु हमने उन्हें मिटाने के प्रयत्न किए जैसे संत रामानंद ने कहा-

जाति पाँति पूछे नहिं कोई।

हरि को भजे सो हरि का होई।। (एकात्म मानववाद : तत्व भीमांसा, सिद्धांत, विवेचन-दीनदयाल उपाध्याय, पृ. 22)

पश्चिम की संस्कृति व्यक्ति निष्ठ है। हमारी संस्कृति समाजनिष्ठ से भी बढ़कर ब्रह्मनिष्ठ है। वहाँ किसान को कहा जाता है कि जीवन स्तर बढ़ाने के लिए अधिक अन्न पैदा करो। वहाँ किसान इसलिए अधिक अन्न पैदा करता है ताकि वह अधिक कमाकर अधिक सुखी हो सके, पर हमारे यहाँ किसान उसे अपना कर्तव्य समझकर सबको-चींटी, चिड़िया, गाय, कुत्ता, मनुष्य को खिलाने की इच्छा से यज्ञ कर्म समझकर अन्न का उत्पादन करता है (पृ. 23) ब्रज का किसान कहता है -

राम की चिरैयाँ, रामई को खेतु।

खाइ लेउ चिरैयाँ, भरि-भरि पेटु।।

उपाध्याय जी का मानना है कि समानता तो भाई-भाई में भी नहीं है। इस संसार में अनेकत्व है, उसमें एकता लाई जा सकती है क्योंकि चींटी में भी ईश्वर का अंश है और हाथी में भी। उपाध्याय जी ने देशटन कर देश को जाना, समझा और आनुभविक संसार से एकात्मवाद निकाला। उन्होंने औपनिषदिक दर्शन को प्रासंगिक बनाकर एकात्म मानववाद में उतारा। युगानुकूल मौलिक व्याख्या की और बताया कि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' ही आज के संकीर्णता, व्यक्तिवादिता, अति भौतिकता से त्रस्त-संत्रस्त विश्व का अवलंबन बन सकता है। वे व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से आगे बढ़कर विश्व मानव कल्याण की बात करते हैं। वे समाज एवं राष्ट्र के लिए अपने 'मैं' के 'हम' में विसर्जन को अनिवार्य मानते हैं। चाणक्य ने भी अपने श्लोक में यही निर्देश दिया है -

त्यत्रेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत।

ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत।। (चाणक्य नीति, अध्याय 3, श्लोक 10)

उपाध्याय जी अपनी जो भी सैद्धांतिक बात कहते हैं उसे उदाहरण से संप्रेषित करते हैं यह उनकी जन कल्याण की प्रतिबद्धता है। उनका मानना है कि शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा का समुच्चय ही समन्वित सुख है। इन चारों का सुख ही मनुष्य का सुख है। इन चारों की उन्नति, हित और उत्कर्ष हो, यह आवश्यक है। केवल एक का विचार करना अपूर्णता है। (पृ. 31) 'समाज व राष्ट्र के लिए इन चारों का विचार आवश्यक है क्योंकि समूह का भी शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा है देश भूमि और जन दोनों से

मिलकर बनता है। उसके लिए सामूहिक जीवन का संकल्प संविधान (धर्म) के साथ जीवन आदर्श आवश्यक मानते हैं।

समाज के बिना व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं समाज ही व्यक्ति को शिक्षित-संस्कारित करता है। माता-पिता के द्वारा सिखाई हुई शिक्षा के अनुसार व्यक्ति कर्म करता है। वह कर्म के द्वारा समाज से जुड़ता है। व्यक्ति जितने भी कर्म करता है वे समाज के लिए हैं। समाज उसके योगक्षेम की चिंता करता है। समाज में रहकर प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं के साथ-साथ अपनी अगली पीढ़ी एवं समाज दोनों की चिंता करनी चाहिए। उपाध्याय जी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों से ही जीवन की पूर्णता मानते हैं। एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था - 'हम न व्यक्तिवादी हैं, न समाजवादी, हम तो दोनों व्यष्टि और समष्टि का विचार करते हैं। हम संपूर्णता का विचार करके चलते हैं। हम किसी एक वाद को नहीं मानते। हम तो पूर्णतावादी, एकात्मवादी, आत्मवादी, संघवादी हैं। उसमें भी चैतन्य को, एक जीवमान आत्मा को मानकर चलते हैं। (पृ. 41)

उपाध्याय जी राष्ट्र के लिए अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के साथ-साथ उसके नव-निर्माण की बात करते हैं, लेकिन इसके लिए रूढ़ियों का उन्मूलन, आर्थिक दुर्व्यवस्था एवं सामाजिक अन्याय, अनाचार, असमानताएँ, असुरक्षा की समाप्ति आवश्यक मानते हैं। वे विदेशी विचार धारा के स्थान पर स्वदेशी विचारधारा के आग्रही हैं क्योंकि विदेशी और विजातीय विचार धाराओं एवं जीवन-मूल्यों को थोपने से 'स्व' का तिरस्कार होता है। भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है। सृष्टि की विभिन्न सत्ताओं तथा जीवन के विभिन्न अंगों के दृश्य-भेद स्वीकार करते हुए वह उनके अंतर में एकता की खोज कर उनमें समन्वश की स्थापना करती है। वह एकांगी न होकर सर्वांगीण है। परस्पर पूरक है। 'सर्वं खल्विदं बह्म' एवं 'एकं सदविप्रा बहुधा वदन्ति' की पोषक है। इसलिए 'भारतीय जनसंघ का उद्देश्य भारत को उसकी संस्कृति और मर्यादा के आधार पर एक राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जनतंत्र बनाना है, जिसमें व्यक्ति को समान अवसर और स्वतंत्रता प्राप्त हो तथा जो भारत को सुदृढ़ एवं संपन्न बनाते हुए उसे एक प्रगतिशील, आधुनिक और जागरूक राष्ट्र बनाए, जो दूसरों के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना कर सके और विश्व शांति के स्थापनार्थ राष्ट्र संघ में समुचित रीति से प्रभाव डाल सके। (पृ. 47)

वे समाज को केवल व्यक्तियों का समूह न मानकर एक सावयव सत्ता मानते हैं। भूमि विशेष के प्रति मातृभाव रखकर चलने वाले समाज से राष्ट्र बनता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक विशेष प्रकृति होती है, जो ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक कारणों का परिणाम नहीं, अपितु जन्मजात है। इसे 'चिति' कहते हैं। राष्ट्रों का उत्थान-पतन चिति के अनुकूल अथवा प्रतिकूल व्यवहार पर निभज़र करता है। (पृ. 49) भारतीय राज्य का आदर्श 'धर्मराज्य' रहा है। यह एक असांप्रदायिक राज्य है। उनके अनुसार कार्यपालिका, विधायिका और जनता सबके अधिकार धमार्धीन हैं। स्वैराचरण की अनुमति कहीं भी नहीं है।

राष्ट्र संत उपाध्याय जी स्पष्ट रूप से धर्म का संबंध मंदिर-मस्जिद से नहीं मानते। धर्म के मूलभूत तत्व सनातन और सर्वव्यापी हैं। उनका मानना है कि किसी साधु संत की एकांतिक साधना में यदि राष्ट्रहित सम्मिलित नहीं है, तो वह व्यर्थ है। उसकी मुक्ति समाज या राष्ट्र की मुक्ति से जुड़ी है।

वे भारत की एकात्मकता के लिए सारी शक्ति या अधिकारों का विकेन्द्रीकरण आवश्यक मानते

हैं, चाहे वे राज्य, जनपद हों या पंचायतें लेकिन स्वेच्छाचारिता स्वीकार्य नहीं है। वे प्रकृति एवं अर्थव्यवस्था सर्वत्र मर्यादा की शर्त रखते हैं। लेकिन 'मानव की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को किसी भी अर्थव्यवस्था का न्यूनतम स्तर स्वीकार करते हैं जिसमें रोटी, कपड़ा और मकान आते हैं। इसी प्रकार व्यक्ति को समाज के प्रति कर्तव्यों का निर्वाह करने में सक्षम बनाना भी समाज का आधारभूत दायित्व है। किसी भी प्रकार के अस्वास्थ्य की दशा में व्यक्ति को स्वस्थ बनाने की व्यवस्था करना भी समाज का काम है। कम से कम इतना जिस राज्य में हो वही धर्मराज्य है - नहीं तो अधर्म राज्य है। 'रघुवंश' में दिलीप का वर्णन करते हुए कालिदास ने कहा है -

प्रजानो नियाघनात् रक्षणात् भरणादनि।
सपिता पितरस्तासां केवल जन्महेतव।।

अर्थात् प्रजा के शिक्षण, रक्षण ओर भरण-पोषण की व्यवस्था के कारण, वही उनका वास्तविक पिता था। उनके पिता तो केवल जन्मदाता थे। उसका यह देश भारत है। इस देश में भरण-पोषण की गारंटी न रही तो 'भारत' नाम सार्थक नहीं होगा। (पृ. 123)

वे शिक्षा एवं चिकित्सा को समाज का दायित्व मानते हैं अत: ये नि:शुल्क मिलनी चाहिए। न्याय सुलभ होना चाहिए। प्रत्येक युवा को जीविकोपार्जन हेतु रोजगार की व्यवस्था होनी चाहिए। वे अपने अर्थचिंतन में यंत्र या मशीन को मानव के श्रम को सुगम बनाने और उसकी उत्पादकता एवं क्षमता बढ़ाने के लिए सहायक मानते हैं, मानव का प्रतिस्पर्धी नहीं। अत: अर्थ-व्यवस्था में मशीन का विवेकपूर्ण उपयोग होना चाहिए। अर्थलोलुपता पतनकारी होती है। राष्ट्र में स्वार्थ, छुआछूत, भेदभाव राष्ट्र की एकता के लिए घातक होते हैं। भाषा, व्यवस्था के नाम पर भेद न्यूनतम हों तथा शरीर के विभिन्न अवयवों की भाँति कुटुम्ब के घटकों के समान परस्पर पूरकता से काम करें। राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाएँ।

अपने देश को गौरवशाली देखने की इच्छा उनके मन में सदैव रहती थी। वे देश की के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, शैक्षणिक सभी क्षेत्रों को लोककल्याण की कसौटी पर कसकर देखते थे। 'जिसमें यह इच्छा उत्पन्न नहीं होती, वह न भारतीय है न मानव। (राष्ट्र जीवन की दिशा-दीनदयाल उपाध्याय, पृ. 33) राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में कहते हैं -

जिसका न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है।।

अंग्रेजों के जाने के बाद दिल्ली में हमारा ही शासक बैठा है यह संतोष की बात है लेकिन वे अभी मानव की उन्नति में कार्य करने की बात करते हैं और कहते हैं कि 'उसकी भावनाएँ और कामनाएँ भी हमारी भावनाएँ और कामनाएँ हों। जिस देश की मिट्टी से उसका शरीर बना है उसके प्रत्येक रजकण का इतिहास उसके शरीर के कण-कण से प्रतिध्वनित होना चाहिए। तीस कोटि हृदयों की समष्टिगत भावनाओं से उसका हृदय उद्वेलित होना चाहिए। अंग्रेजों के चले जाने के बाद आवश्यक है कि हमारा देश आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी स्वतंत्रता का अनुभव करे। राष्ट्रभक्ति की भावना को निर्माण करने और उसको साकार स्वरूप देने का श्रेय वैसे भी राष्ट्रकी संस्कृति को है तथा वही राष्ट्र की संकुचित सीमाओं को तोड़कर मानव को एकात्मकता का अनुभव कराती है। अत: संस्कृति की स्वतंत्रता

परमावश्यक है। (पृ. 34)

राष्ट्र का जागरूक बने रहना उसकी स्वतंत्रता और विकास की शर्त है। 'जो महत्त्व व्यक्ति-जीवन में व्यक्ति की अस्मिता का है वैसा ही राष्ट्रीय अस्मिता का भी है। राष्ट्रीय अस्मिता रहने से राष्ट्र जीवित रहता है, उसके क्षीण पड़ने से राष्ट्र कमजोर होता है और उसके लोप अथवा विस्मरण होने से संपूर्ण राष्ट्र का ही विनाश होने लगता है।'(पृ. 45) राष्ट्र कृत्रिम नहीं बल्कि एक जीवमान इकाई है। उसके जन का अपने भूखंड के साथ माँ-पुत्र का संबंध रहता है।

उपाध्याय जी देशभक्ति और मानवता की सेवा में कोई विरोध नहीं मानते। वे देशभक्ति को मानवता की सेवा का प्रथम सोपान मानते हैं। उनके अनुसार 'नारी मात्र की माता के रूप में सेवा करने से पहले अपनी माँ की सेवा आवश्यक है क्योंकि 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' दुर्भाग्य से हमारे राष्ट्रीय जीवन में मातृभक्ति के अभाव के कारण अनेक विकृतियाँ आई हैं। पाकिस्तान का और प्रथक नागालैंड का निर्माण, चीन का हजारों वर्गमील भूमि पर कब्जा इसी विकृति के उदाहरण हैं। (पृ. 63)

'इन विकृतियों को दूर करने का उपाय हमारी संस्कृति के पास है। हमारी संस्कृति का आधार भोग नहीं अपितु त्याग रहा। त्याग से ही अमृत्व की प्राप्ति होती है। भगवान राम ने लंका को जीतकर उसका राज्य विभीषण को दे दिया। उन्हें स्वर्णमयी लंका की तुलना में अपनी मातृभूमि अयोध्या ही अधिक पसन्द आई, क्योंकि जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर होती है। छत्रपति शिवाजी ने जयसिंह को लिखा कि तुम मुगलों का साथ छोड़ दो, फिर यह सारा राज्य तुम करो। मुझे राज्य की भूख नहीं है। भरत ने भगवान राम की पादुकाओं को राज्य सिंहासन पर विराजमान कर स्वयं नन्दी ग्राम में तपस्वी के रूप में जीवन-यापन करते हुए राज्य कार्य का संचालन किया। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के लिए एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया, पर स्वयं निस्पृह कर्मयोगी की भाँति राज्य से निरासक्त रहे। आज हमारे राजनीतिक जीवन में जो विकृतियाँ दिखाई दे रही हैं, वे आसक्ति के कारण उत्पन्न हुई हैं। सेवा का स्थान अधिकार ने ले लिया है। जीवन के प्रति अतिशय अर्थवादी, दृष्टिकोण के कारण भी अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं। मानवीय भावनाओं एवं जीवन-मूल्यों का हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं रहा। व्यक्ति की प्रतिष्ठा का आधार उसका चरित्र नहीं, उसकी योग्यता नहीं, उसके गुण नहीं रहे। पैसा ही प्रतिष्ठा का आधार बन गया है। यह स्थिति विकृतिमूलक है। हमें यह मानकर चलना होगा कि अर्थ हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधनमात्र है, साध्य नहीं। अस्तु, जीवन के प्रति दृष्टिकोण को बदलना होगा। दृष्टिकोण का यह परिवर्तन भारतीय संस्कृति के आदर्शों के आधार पर ही हो सकता है। इस गौरवमयी संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठापना से ही राष्ट्र-जीवन में चतुर्दिक परिव्याप्त विकृतियों का शमन एवं निराकरण हो सकता है। (पृ. 64) अन्ततः प्रसाद जी के शब्दों में उनका मंतव्य है -

इस पथ का उद्देश्य नहीं है, श्रांत भवन में टिक रहना,
बल्कि पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं।।

सम्पर्क : *गुना (म.प्र.)*
मो. 9425618652

शुभदा मिश्र

कर्म प्रभाव होहीं बड़ भारी

खबर सुनकर मैं सन्न रह गई।

एकदम अविश्वसनीय सी थी खबर। मगर अखबारों में आ गई। सोशल मीडिया पर वायरल हो रही है। लोग एक-दूसरे से फोन करके पूछ रहे हैं। अकबकाये से बतिया रहे हैं। किसी की हिम्मत नहीं हो रही है कि सीधे डॉक्टर साहब से पूछ लें। हिम्मत कर भी लें तो पूछें कैसे। डॉक्टर साहब ने अपना फोन बंद कर रखा है। प्रतिमा जी को ही फोन किया। वह ब्यूटी पार्लर चलाती हैं। डॉक्टर साहब की पत्नी उनके पार्लर में आती-जाती रहती हैं। प्रतिमा भी उनके घर जाती रहती हैं। घरोबा सा है प्रतिमा का। उसने ही बताया...खबर सुनते ही मैं डॉक्टर साहब के घर गई थी। ताला बंद था। पड़ोसन दिखी। उसी ने बताया... 'पति पत्नी दोनों ही कहीं चले गये हैं। कुछ ऐसे दिखे कि मैं कुछ पूछ नहीं सकी...'

सच में ऐसी बात कोई पूछे भी तो कैसे। मेरे परिवार से डॉक्टर साहब के परिवार का पीढ़ियों पुराना संबंध है। मगर बाप रे, मैं भी नहीं पूछ सकती उनसे। गरिमामय सा व्यक्तित्व है उनका तो। शायद शहर का सबसे सम्मानित व्यक्तित्व। उनके नाम से ही एक आदर, एक श्रद्धा जगती है मन में।

है ही उनका व्यक्तित्व ऐसा। इस उम्र में भी उनकी ऊँची पूरी सधी हुई सौम्य काया, चाल-ढाल, बोली-बात, पोशाक, हर चीज में एक गुरुता, एक उच्चता का आभास। अस्पताल खुलने का समय था नौ बजे। ठीक साढ़े नौ बजे वे अपनी कार स्वयं चलाते हुए अस्पताल परिसर में प्रविष्ट होते। इंतजार करते लोगों के हजूम में सुकून छा जाता। वे सीधे अपने कक्ष में प्रवेश करते....'मुख्य चिकित्सा अधिकारी कक्ष।' कम्पाउंडर उनकी मेज पर पहले ही मरीजों की पर्ची क्रमवार रख चुका होता। डॉक्टर साहब पर्चियों के क्रम अनुसार मरीजों को बुलाते। अक्सर तीन-चार मरीज एक साथ आ जाते। जब तक पहले मरीज को देखते, बाकी तीनों मरीज कक्ष में रखी कुर्सियों में बैठे रहते। कक्ष में मरीजों के लिये थीं ही बस चार कुर्सियाँ। मरीज की जाँच करने अक्सर हरे पर्दे के पीछे रखे स्ट्रेचर पर लेटने कहते। पर्दा बस कहने भर को था। हर समय हिलता-डुलता रहता। डॉक्टर-मरीज दिखते ही रहते। उनकी बातें भी सुनाई देती रहतीं। जाँच के बाद मरीज डॉक्टर के पास रखे स्टूल पर बैठता। अब डॉक्टर साहब के ढेरों सवाल। बीमारी से संबंधित तो होते ही, व्यक्तिगत जीवन से संबंधित भी....कितने बच्चे हैं। क्या पढ़ते हैं। किस स्कूल में हैं। पढ़ने में कैसे हैं। बच्चे बड़े हैं, तो बेटा-बहू ख्याल रखते हैं कि नहीं। मरीजा गर्भवती हो तो घर

में कोई मदद करने वाला है कि नहीं। सबसे बड़ा सवाल,..तुम्हारे साथ कौन आया है। जो व्यक्ति साथ आया हो उसे अच्छी तरह समझाते, किस तरह दवाई देनी है। क्या-क्या खयाल रखना है। मरीज बूढ़ा हो तब तो किसी को साथ लेकर आना परम आवश्यक। गरीब हो तो अपने पास से दवाई देना। योग, आसन, प्रणायाम की हिदायत देना। कौन सा आसन उसकी इस बीमारी में लाभदायक होगा, समझाना। डाँटना भी। बुजुर्ग तो थे ही, उनका हिदायत देना, डाँटना, उन्हें और भी बड़ा बना देता। उससे भी बड़ा बना देता उनका एक और गुण। चाहे कितनी भी देर हो जाए, जब तक आखिरी मरीज को न देख लें, कुर्सी नहीं छोड़ते थे।

मैं हारी बीमारी में अक्सर उन्हीं के पास जाती। अपनी बारी का इंतजार करती, उनके तौर तरीके गौर से देखती रहती और उनके बड़प्पन की, उनकी गुरुता की, कायल होती रहती। मेरा उनका पारिवारिक संबंध था। मगर वे मुझे मेरा नंबर आने पर ही बुलाते। मुझे ही नहीं हर किसी को। चाहे कितनी भी बड़ी हस्ती हो।

हाँ, मगर कभी वे अपने कक्ष में अकेले हों, और मैं पहुँच गई होऊँ, तो मेरे लिए चाय मँगवाते। खूब बात करते। बीमारी के बारे में नहीं, किताबों के बारे में। वे खूब पढ़ते थे और मुझे प्रसिद्ध लेखकों की श्रेष्ठ पुस्तके पढ़ने देते। हम पढ़ते और खूब चर्चा करते। चर्चा इसलिये भी होती क्योंकि डॉक्टर साहब के कोई मित्र ही नहीं थे। घर, अस्पताल, और किताबें, बस यही उनका जीवन था। किताबें उनके पुत्र जो कि नामी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे, भेजते रहते।

मित्र वगैरह तो उनके थे नहीं मगर शहर में होने वाले आयोजन, शादी-ब्याह की पार्टियाँ, गमी, आदि में वे अवश्य जाते। पार्टियों में तो हमेशा सपत्नीक। पार्टियों में पत्नी विचित्र ढंग से सजतीं और एकदम अजूबा नजर आतीं। जब भी मैं उन दोनों को पार्टी में देखती, मुझे एक हृदयग्राही घटना याद आ जाती।

घटना बहुत पुरानी है। उस दिन की, जिस दिन डॉक्टर साहब की शादी हो रही थी। डॉक्टर साहब की बहनें मेरी सहेलियाँ थीं। मैं शादी में गई थी। डॉक्टर साहब दुल्हन लेकर आए थे और द्वार पर दूल्हा-दुल्हन की अगवानी की जा रही थी। बहने कहीं नजर नहीं आ रही थीं। खोजती हुई मैं घर के भीतर चली गई। बहनें भीतर के कमरे में धर-धर आँसू बहाती रो रही थीं। रो-रोकर कहने लगीं...शुभ्रा, भैया हम लोगों के कारण बलि चढ़ गए रे। हम लोगों की शादी के लिए बाबू जी को पैसे की जरूरत थी। पैसा लेकर एक धनी परिवार की एकदम काली कलूटी, बदसूरत लड़की से हमारे इतने सुंदर भैया की शादी कर दिये।

उसके बाद क्या हुआ, मुझे ठीक से नहीं मालूम। बहनें शादी होकर अपने-अपने ससुराल चली गईं। मैं भी। ये डॉक्टर भैया अपनी पत्नी के साथ अपनी नौकरी पर चले गए। उनके तबादले होते रहे। उनका परिवार बढ़ता रहा। बेटे-बेटी पढ़-लिखकर उम्दा नौकरियों में आ गए। उनकी शादियाँ भी हो गईं। वे दिल्ली बंबई आदि शहरों में बस गए। कभी जब मैं अपने ससुराल से मायके आई होती और पता चले कि डॉक्टर साहब की कोई बहन भी मायके आई हुई है तो उनसे मिलने उनके घर चली जाती। उस घर में डॉक्टर साहब के माता-पिता तो नहीं रहे थे, वहाँ अब उनके दूसरे भाईयों का परिवार आबाद हो गया था। बातचीत के दौरान एक बहन एक बार बोलीं थीं... सुना है डॉक्टर भैया का किसी से अफेयर चल रहा है।

मगर उस काली कलूटी लड़की ने डॉक्टर साहब को साध कर रखा। बेटे-बेटियों को अच्छी तालीम दी। पति के खान-पान, रख रखाव का इतना सख्ती से निभाव करवाया कि वे हमेशा चुस्त-दुरुस्त और ताजादम नजर आते बल्कि प्रभावशाली। सिविल सर्जन के पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद वे इसी शहर में आ गए। पिता के घर में भाईयों का बसेरा था, सो किराये का मकान लेकर रहने लगे। संयोगवश उन्हीं दिनों शहर के प्रसिद्ध 'भगवती मंदिर' ने एक बढ़िया अस्पताल का निर्माण करवाया जिसके लिये उन्हें एक अच्छे दमदार डॉक्टर की जरूरत थी। इन डॉक्टर साहब ने अपनी सेवाएँ दीं। इन डॉक्टर साहब के आने से अस्पताल चमक गया। अस्पताल में भीड़ रहने लगी। प्रतीक्षारत मरीजों के लिए बेहतर इंतजाम हो गए। अस्पताल कोई मामूली धर्मार्थ चिकित्सालय नहीं, बल्कि आधुनिक सुविधाओं से युक्त नामी अस्पताल बन गया। समय बीतते-बीतते इसमें और भी विभाग खुल गए...नेत्र रोग विभाग, दंत रोग विभाग, अस्थि रोग विभाग, हृदय रोग विभाग। फिजियो थैरेपी विभाग आदि। विभिन्न रोगों के ख्यातिप्राप्त विशेषज्ञ डॉक्टर आकर अपनी सेवाएँ देने लगे। समय-समय पर होने वाले मोतियाबिंद आदि के सामूहिक ऑपरेशनों के समय डॉक्टर साहब कड़ी नजर रखते। कहीं कोई चूक न हो जाये। अस्पताल की प्रतिष्ठा चारों ओर फैल गई। साथ ही मुख्य चिकित्सा अधिकारी की भी।

इन्हीं दिनों मैं भी मायके आकर रहने लगी थी। हारी-बीमारी में इन्हीं डॉक्टर साहब के पास जाने लगी थी। उम्र की गहराती साँझ में डॉक्टर साहब का यह कल्याणकारी रूप, मुझे बड़ा भला लगता। आँखें नम हो आतीं। डॉक्टर साहब कभी अपने कक्ष में खाली हों तो हम खूब बतियाते।

डॉक्टर साहब भले ही चुस्त-दुरुस्त, प्रभावशाली नजर आते, मगर उम्र तो बढ़ ही रही थी। रक्तचाप, मधुमेह, लकवे का भी असर। तिस पर इतना काम का बोझ। लाख दवाईयाँ, लाख परहेज करें, मगर तबियत बीच-बीच में बिगड़ ही जाती। उनके बेटे नहीं चाहते कि वे किराये का मकान लेकर रहें और धर्मार्थ चिकित्सालय में घंटों खपें। सीधे से उनके साथ रहें और शांति पूर्वक अपना बुढ़ापा गुजारें मगर डॉक्टर साहब का मन नहीं मानता। बातचीत में उन्होंने मुझसे अपने दिल की बात कही थी...'शुभ्रा, यहाँ मेरे पिता रहे। दादा रहे। परदादा भी। यह मेरी जन्मभूमि है। मगर मैं यहाँ कभी ठीक से रह नहीं पाया। मिडिल के बाद मैं बाहर भेज दिया गया क्योंकि तब यहाँ हाई स्कूल था ही नहीं। हाई स्कूल के बाद सीधे नागपुर मेडिकल कॉलेज। फिर नौकरी में शहर-शहर रहना हुआ। अवकाश प्राप्ति के बाद मैंने तय किया कि अब मैं अपनी जन्मभूमि को अपनी सेवायें दूँगा। आर्थिक कष्टों में उतने बड़े परिवार की जिम्मेदारियाँ निभाते मेरे पिता, दादा वृहत्तर समाज के लिये सोच नहीं पायें। मैं वह सब कर्ज चुकाऊँगा।' सच में वह जिस लगन, जिस समर्पण से सेवायें दे रहे थे, लगता जैसे दिल पर पड़ा कोई भारी बोझ उतारते हुये परम संतुष्टि महसूस कर रहे हों। कई बार जब तबियत काफी बिगड़ जाती तो बेटे आकर माँ बाप को अपने साथ ले जाते। मगर फिर यहाँ मरीज व्याकुल हो जाते। फोन पर फोन...'डॉक्टर साहब आप कब आ रहे हैं।' बेटे आने नहीं देते। मगर डॉक्टर साहब को मरीजों के बगैर चैन कहाँ। उन्हें एक एक मरीज की पूरी मेडिकल रपट जबानी याद रहती। वे फोन पर ही मरीजों को सलाहें देते, हिदायतें देते। लौटकर दुगने उत्साह से मरीजों में रम जाते। उन्होंने मुझसे कहा था....'मेरे लिए तो मेरे मरीज ही मेरी असली दवाईयाँ हैं। 'जीवन दायिनी औषधियाँ हैं।' ऐड्रेनालाईन हैं...

इतने लंबे अरसे में यह गाँवनुमा कस्बा भी अच्छा खासा शहर हो चुका था। कई नामी डॉक्टर आधुनिक सुविधाओं से युक्त अस्पताल चलाने लगे थे। मगर शहर के अधिकतर लोग इन्हें ही पसंद करते। आस पास के गाँवों के लोग तो करते ही, दूर दराज के गाँवों के भी खिंचे चले आते, जहाँ चिकित्सा तो निशुल्क थी ही। सेवाएँ भी उत्तम और डॉक्टर तो मानो भगवान। और इन्हीं भगवान पर मानो कालिख का पहाड़ टूट पड़ा। एक लड़की ने डॉक्टर के खिलाफ थाने में रपट लिखवा दी, छेड़खानी की।

दूसरे दिन सभी अखबारों में खबर, डॉक्टर साहब की फोटो के साथ...'धर्मार्थ चिकित्सालय के तिरासी वर्षीय डॉक्टर...ने उन्नीस वर्षीय युवती से जाँच के दौरान छेड़छाड़ की। आगे विस्तार से वर्णन कि किस तरह बूढ़े डॉक्टर ने युवती की इज्जत पर हाथ डाला। युवती ने भागकर थाने में रपट लिखाई। थाने में रपट होते ही डॉक्टर फरार हो गया है। गैर जमानती वारंट निकल चुका है। पुलिस तलाश कर रही है।'

सोशल मीडिया में वायरल खबर जंगल में आग की तरह फैलने लगी। फोन बजने लगे। लोग अकबकाये से एक-दूसरे से पूछ रहे हैं। बतिया रहे हैं।

खबर देखते ही मुझे अपनी आँखें पर विश्वास नहीं आया। किसी और डॉक्टर की खबर होगी। बार-बार पढ़ा। नाम उन्हीं का। फोटो उन्हीं की। अस्पताल वही। मैं सन्न। यह क्या हो गया। चेतना आई तो प्रतिमा को फोन किया। उसने बताया, कल शाम की घटना है। खबर मिलते ही मैं डॉक्टर साहब के घर गई थी। उनकी पड़ोसन ने बताया कि पति-पत्नी दोनों चुपचाप कहीं चले गए हैं। फोन लगाओ तो उनका फोन बंद बताता है।

मैं बेचैन। मुझसे ज्यादा प्रतिमा। शाम को उसने फिर बताया....मैंने डॉक्टर साहब की नौकरानी से संपर्क किया। पूछा...क्या हुआ बता। उसने बताया कि कुछ नहीं। हमेशा की तरह कल दोपहर डॉक्टर साहब अस्पताल से आए। कपड़े बदले। दोनों पति-पत्नी ने खाना खाया। सोने चले गए। मैं चौका समेट रही थी कि कोई आदमी डॉक्टर साहब को आवाज देते हुए आया और घर के भीतर घुस गया। सीधे बैड रूम में। पता नहीं क्या-क्या बात हुई कि डॉक्टर साहब और मेम साहब दोनों बदहवास से बाहर निकले। बिना कपड़े बदले। बिना कुछ बोले। कार में बैठे और चल दिए। कार वही आदमी चला रहा था। आखिर मैंने घर में ताला लगाया।

मैंने मंदिर ट्रस्ट समिति के अध्यक्ष को फोन किया...विश्वमोहन जी, ये मैं क्या खबर सुन रही हूँ।

बोले... खबर सच है मैडम।

मैं धड़ाधड़ बोल गई...इतने अच्छे डॉक्टर। इतने समर्पित। आपके अस्पताल का तो नाम चमका दिया दुनिया में.....

बोले... आप जो कह रही हैं, सब सच है। मगर आदत तो उनकी खराब रही है दीदी। हमारे पास रपटें आती रहती थीं।

मैंने समिति के और भी कई जिम्मेदार लोगों से बात की। सबका यही बयान... डॉक्टर सच में बहुत अच्छे हैं मगर आदत खराब रही है।

मन बिल्कुल नहीं मानता। अपने मित्रों से, परिचितों से बात करती। सभी उनके मरीज थे। कहते...जरूर डॉक्टर साहब को फँसाया गया है। आजकल प्रतिष्ठित लोगों को फँसाने का धंधा ही चल

गया हैं। ये डॉक्टर साहब थे भी तो दुनिया से बाहर आदमी। अस्पताल, मरीज, घर, किताबें। न दोस्त, न यार, न कोई गुट। न चमचे। न चमचागिरी की आदत। मंदिर ट्रस्ट समिति के लोगों की कई बातों को साफ इनकार कर देते, ट्रस्ट के कई सदस्य इनसे खार खाये हुये थे। उपर से हर बात में बड़प्पन का, श्रेष्ठता का आभास देता उनका ढंग। शहर के महाप्रभु किस्म के लोगों को जरा न सुहाता। ऐसे घमंडी का घमंड चूर करना था। मिल गई एक चालू लड़की फँसाने को।

कोई लड़की ऐसे ही थाने पुलिस नहीं करती जी....विपरीत प्रतिक्रिया वाले भी भारी मुखर हो उठे थे.... जरूर इस बुड्ढे ने करतूत की है। जब सरकारी अस्पताल में था तब नर्स दीपाली के साथ इसका चक्कर चलता था...क्या सजधज के बालों में फूल लगाये दौरों में फिरती थी दीपाली इसके साथ...

अंबिकापुर में था तब डॉक्टर रमोला के साथ...

डॉक्टर होते ही हैं जी ऐसे...डॉक्टर आफताब का चक्कर नहीं सुना....

शहर में बातों का बाजार गर्म। कभी डॉक्टर के अफेयर के किस्से हावी तो कभी चालू लड़की के चरित्तर के। तो कभी कानूनी पेंचों के, कि उनके बेटे ने तो उच्चन्यायालय से उनकी जमानत ले ली है। यहाँ आकर वकील भी कर गया मगर गुस्सा देखो, किसी से मिला तक नहीं। बाप से तो नाराज रहता ही था कि किराये का मकान लेकर रहते हैं और धर्मार्थ चिकित्सालय में खटकर स्वास्थ्य बर्बाद कर रहे हैं। इस शहर से भी नाराज था कि सेवा के लिये ही समर्पित उसके बूढ़े बीमार पिता को कलंकित किया।

चर्चा करते करते लोग थक गए। चर्चाएँ मद्धम पड़ने लगीं। एक दिन सुना, वह लड़की तो किसी के साथ भाग गई। कहाँ गई कुछ पता नहीं। फिर वह चर्चा ही कहीं बिला गई।

मगर मेरे जेहन से डॉक्टर साहब की छवि नहीं गई। मेरे ही नहीं, बाकी लोगों के भी। छवि, जब वे व्याकुल मरीजों की भीड़ से घिरे बैठे उनके कष्टों का निवारण किया करते थे। लापरवाही के लिए दादाजी की तरह डाँटते, निर्धन मरीजों की दवाईयों से, पैसों से तक मदद किया करते। जब तक अंतिम मरीज को नहीं देख लेते, कुर्सी नहीं छोड़ते थे। कहीं गए हों, इन्हीं मरीजों के लिए भाग कर लौट आते। मुझसे बोले थे, मेरे मरीज मेरे लिए 'जीवन दायी औषधियाँ' हैं...।

मगर इसबार गये तो लौटकर नहीं आये। सुना, बेटे के पास हैं। बहुत बीमार रहते हैं।

आदमी चला जाता है, उसके कर्म रह जाते हैं। सत्कर्म। यही सत्कर्म लोगों की चेतना को कुरेदते रहते हैं। धीरे से किसी किसी कोने से आवाज उठने लगी...डॉक्टर साहब ने इस शहर को अमूल्य सेवायें दी हैं जी। वे तो अब आयेंगे नहीं। हम लोगों को उनके शहर, उनके घर जाकर उनका सम्मान करना चाहिए। कृतज्ञता ज्ञापित करनी चाहिए। हम अकृतज्ञ लोग नहीं हैं जी...।

सम्पर्क : *डोंगरगढ़ (छ.ग.)*
मो. 8269594598

डॉ. नलिनी श्रीवास्तव

कृष्ण भक्ति काव्य और आधुनिकता की अवधारणा

साहित्य भावनाओं की रागात्मक अभिव्यक्ति का ही नाम है। वस्तुतः साहित्य मनुष्य जीवन के सत्य को सुन्दरता में समाहित कर मानव की सत्ता को शिव से परिपूर्ण कर देता है। साहित्य का लक्ष्य है, ब्रम्ह-सहोदर आनंद की प्राप्ति।

ऋग्वेद की अनेक कथाओं में रचनाओं से लेकर वर्तमान साहित्यकारों ने भी अपनी सौंदर्य-वेदना को जीवंत साकार करने के लिए प्रकृति की ही शरण ली है। शस्य श्यामला धरती में सरसों का स्वर्णिम सौंदर्य कोकिल के मधुर गुंजन से झूमती गगन अमराईयों में, गुनगुनाते भौरों या थिरकते सूर्य की रश्मियाँ, कामदेव के 'ऋतुराज बसंत' का सजीव रूप कवियों की उदात्त कल्पना से मुखरित हो उठता है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य का जन्म संवत 1535 में हुआ था। उनके उपदेशों ने हिन्दी साहित्य में अमृत वर्षा की और वैष्णव साहित्य का उद्भव हुआ। वैष्णव साहित्य खूब लोकप्रिय हुआ क्योंकि वह सरस और सरल था। वैष्णव कवियों में पिता, माता, स्वामी, सखा आदि पारिवारिक स्नेह में ही लीलामय का लीला विकास देखा। जितने वैष्णव कवि हुए वे सभी पार्थिव प्रलोभनों से दूर रहकर भगवत भक्ति में मस्त रहते थे। सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई आदि कवियों की गणना वैष्णव कवियों में की जाती है। इनकी कवित्व कल्पना सत्य की ज्योतिपूर्ण रूप से आप्लावित रहती है।

कृष्ण भक्ति काव्य मानव जीवन एक वीणा के समान है, इसे हमेशा बजाते रहना और प्रतिदिन मधुर नए सुरों से इसकी स्वर-लहरी से आनंदित होना ही जीवन की सार्थकता है। काल की गति का प्रवाह हर मानव पर पड़ता है। वाणी में जब माधुर्य की सुषमा एवं पलाश वनों के दहकते लाल अंगारों की भाँति चमक हो तभी आनंद की अनुभूति भाव विमुग्धकर जाती है।

हिन्दी में कृष्ण काव्य की रचना वल्लभाचार्य की प्रेरणा से हुई। कृष्ण काव्य परंपरा के कवियों की आधार भूमि उसी के द्वारा प्रवर्तित पृष्टि मार्ग है। वल्लभाचार्य के अनुसार गोपिकाएँ पृष्टि मार्ग की आदि गुरु हैं। और उन्हें कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त था। गोपियों की प्रेम साधना का ही अनुकरण पुष्टि मार्ग का साध्य है। इस काव्य परंपरा में सर्वप्रथम कवि सूरदास हैं, जो हिन्दी के ही नहीं भारतवर्ष के श्रेष्ठ कवियों में अग्रगण्य हैं। बाल कृष्ण और किशोर कृष्ण ही उनके आराध्य हैं। राजनीतिज्ञ कृष्ण से उनका कोई सरोकार नहीं है। सूरदास विट्ठलदास द्वारा स्थापित अष्टछाप कवियों के नायक हैं। अष्टछाप में सूरदास, नंददास, कृष्णदास, परमानंद दास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास तथा छीत स्वामी, गोविंद स्वामी।

कृष्ण काव्य परंपरा में मीरा बाई का नाम अमर है। उनकी काव्य रचना में नैसर्गिक प्रतिभा स्पष्ट परिलक्षित होती है। दर्द दीवानी मीरा की प्रेमानुभूतियों का अलंकृत तन्मय कवित अन्यंत्र दुर्लभ है।

ऐरी मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद ना जाने कोय ...

अब तो बेलि फैल गई, आणद फल होय।

प्रसिद्ध कृष्ण भक्त कवि रसखान मुसलमान थे। भावनाओं की तीव्रता एवं मादकता और सहज अभिव्यंजना शैली उनके काव्य के गुण हैं। प्रेम वाटिका, सुजान रसखान नाम के दो छोटे-छोटे ग्रंथ प्रकाशित हैं।

काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सो ले गये माखन रोटी।

सूरसागर में मिलने वाले अभूतपूर्व कौशल की प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में पृष्ठ-185 में लिखा है - 'पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक रचना होने पर भी ये इतने परिष्कृत और परिमार्जित है। यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यांग पूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जुठी सी जान पड़ती है। सूरसागर गीति काव्य कला की अलौलिक छवि को इतने सुन्दर जीवंत रूप में प्रस्तुत किये है, गेय है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने आचार्य शुक्ल के इस संकेत की गरिमा को भली-भाँति समझा और हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य नायक शोध प्रबंध प्रस्तुत किया। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है। सूरदास और उनके समकालीन भक्तों ने बहुत ही परिमार्जित और ब्रजभाषा का एकाएक आविष्कार नहीं किया है। ब्रजभाषा में लिखने की परंपरा बहुत पुराने काल से चली आ रही है। केवल काव्य भाषा के रूप में वह पुरानी परंपरा का बाध्य नहीं रही होगी। उसमें छंद, अलंकार और रस विषयक ग्रंथ भी बन चुके हैं। उद्धव का संदेश क्या था? प्रेम के प्रति मानो ज्ञान का उपदेश था और गोपियों का उत्तर क्या था, मानो ज्ञान पर प्रेम की विजय थी।

कहाँ लौ कीजै बहुत बड़ाई।
अति अगाधमन सुगम अगोचर मन सौ, तहाँ न जाई।
जा के रूप न रेख वरन वयु नाहिन सखा सहाई।
ता निर्गुण सो मेह निरंतर कौ ति बहै री आई।
जल बिन तरंग, भीति बिन लेखन बिन चेतहिं चतुराई।
या व्रज में कछु नहीं चाह है ऊधौ आनि सुनाई।
मन चुभि रह्यो माधुरी मूरित अंग-अंग उरझाई।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन सूरदास सुखदाई।

उद्धव के ज्ञानोपदेश को सुनकर गोपियों ने यही कहा -

प्रेम प्रेम तें होय प्रेम, ते यह है जीये।
प्रेम बंधी संसार, प्रेम परमारथ लहिये।
एकै निश्चय प्रेम को, जीवन मुक्ति रसाल।
साँचो निश्चय प्रेम को, जिहि रे मिलै गोपाल।
ऊधो कहि सतभाय, न्याय तुम्हरे मुख साँचे।

योग प्रेम रस कथा, कहो कंचन की काँचे।
जा के पर है हूजिए, गहिए सोई नेम।
मधुप हमारी सों कहो, योग भलो या प्रेम।

जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष धारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी। अवकाश पाते ही लोक भाषा की सरसता में परिणत हो या मिथिला की अमराईयों में वे विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुईं और आगे चलकर ब्रज की करील कुंजों के बीच फैले मुरझाए पलों को सींचने लगीं। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ कवि श्री कृष्ण की प्रेम लीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अंधे कवि सूरदास की वाणी की थी।

सूरदास मानव हृदय के संवेदनशील पारखी हैं। सूरदास जी ने जिस भाव को लिया है उसकी ऐसी अभिव्यक्ति की है कि पाठक उसमें तन्मय और आत्मविस्मृत हो जाता है। सूर का सूरसागर रस का उमड़ता हुआ समुद्र है, जिसमें कहीं भक्ति की लहरें कहीं श्रृंगार की और कहीं वात्सल्य की लहरे हिलोरें ले रही हैं।

सूर की कल्पना शक्ति अत्यंत प्रखर है। सूरदास की बाललीला में अनेक ऐसे प्रसंग है, जो हम अन्य कवियों में नहीं पाते हैं। इस नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा के द्वारा सूर ने नये-नये प्रसंगों की मनोरम झाँकी सजीव रूप में प्रस्तुत की है। सूर के वात्सल्य रस से सराबोर आत्माभिव्यंजना, भावप्रवणता, मधुरता, संगीतात्मकता, धारावाहिकता, उत्कृष्ट रीतिकाव्य की ये सभी विशेषताएँ अपने उत्कर्ष पर पहुँची हुई हैं। संगीत कला का ऐसा सुंदर सुयोग है जो पाठक को तन्मय और रसमग्न कर देता है। प्रवाहपूर्ण ब्रजभाषा के नैसर्गिक माधुर्य ने सूर के गीतों में अधिक उत्कर्ष ला दिया है। विशुद्ध काव्यात्मकता की दृष्टि से सूर का वात्सल्य वर्णन हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है।

डॉ. श्रीनिवास शर्मा के शोध प्रबंध हिन्दी साहित्य में वात्सल्य संबंधी पदों की संख्या 580 के बीच है। सांसारिक माया मोह में आप्लावित करने के लिए संतान का मोहक सशक्त आकर्षण जिससे विलंब होना असंभव है। वार्ता के अनुसार सूर को दीक्षा समय महाप्रभु श्रीकृष्ण की बाललीला के प्रति ही उनका ध्यान आकृष्ट किया गया है। यही कारण है बालरूप का अत्यंत विशद विस्तृत और स्वाभाविक चित्रण सूरसागर में मिलता है। सूरदास के द्वारा यशोदा एवं नंद के वात्सल्य भाव की सरस तथा मधुर अभिव्यक्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है।

बालदशा के न जाने कितने विभिन्न रूप सूरदास ने अपनी बंद आँखों से दिखलाए है, जो अपने आप में अलौकिक अप्रतिम व सौन्दर्यशालिनी है।

मैया कबहुँ बढ़ैगी चोटी/ किती बेर मोहि दूध पियतल भई/ यह अजहुँ है छोटी।

श्रीकृष्ण के बाल सुलभ चपलता व वात्सल्य का वर्णन सूरदास ने अत्यंत सरस जीवंत रूप से प्रस्तुत किया है। मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो, भोर भयो गैयन के पाछे मधुवन मोहि पठायौ...

यशोदा चोटी बढ़ने और अधिक सुंदर होने का लालच देकर दूध पीने के लिए प्रेरित करती है। कजरी को पय पियहु लाल तेरी चारो बैठ ...

बालकृष्ण दूध तो पी लेते हैं। जब अधिक समय हो जाता है तो बाल सुलभ सुंदर रूप कितना सुहावना है -

मैया कबहि बढ़ेगी चोटी किति बार मोहि दूध पियत भई
यह अजहू है छोटी।...

श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं में आंतरिक बुद्धि चातुर्य भी कम नहीं है -

स्याम कहा चाहत से डोलते।...

सूरदास की यह श्रेष्ठता है कि वात्सल्य के भाव को पूर्णतया अभिव्यक्त करने में सफल हुए। सुर के वात्सल्य वर्णन के सम्मुख प्राचीन व नवीन कोई भी कवि टिक नहीं पाते हैं। तुलसीदास ने रामचरित मानस गीतावली व कवितावली में वात्सल्य वर्ग किया है, लेकिन मर्यादा के आग्रह ने उसमें स्वच्छंदता नहीं आने दी है।

अत: वात्सल्य वर्णन में तुलसी, सूरदस से पिछड़ गये हैं। आधुनिक कवियों में अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, ठाकुर गोपालशरण सिंह, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान का परिचय आदि विशेष लोकप्रिय है। सूरदास के वात्सल्य भावों से परिपूर्ण पदों में भी अक्षय प्रेरणा की विद्वता में व्यवधान नहीं डाल सकता। सूरदास और उनकी कृतियाँ इसी सतत् अमरत्व की श्रेणी में आते हैं।

अपनों के साथ सहृदय मानवता की स्मृति में चिरकाल तक बने रहेंगे। सूरदास वास्तव में सूर्य के समान अप्रतिम कवि हैं जिन्होंने श्रीकृष्ण की बाल लीला का अभूतपूर्व, पल-पल में परिवर्तित छवि का सुंदर-सलौना वर्णन किया है जो हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। उनकी कुछ बानगी दर्शनीय है।

काल की गति निरंतर परिवर्तित होती रहती है। आज का वतज़्मान युग पूर्णत: कम्प्यूटर युग हो गया है, सम्पूर्ण विश्व का भूमण्डलीकरण हो गया है। पलक झपकते ही हमें सब कुछ पता चल जाता है। फिर भी कुछ बात है, जो कभी परिवर्तित नहीं होती है। बख्शी जी ने कहा है - युग बदलता है, नीति बदलती है, आदर्श बदलते है, पर मानवता नहीं बदलती। सभी स्थितियों में मनुष्य ही बना रहता है। न उसकी कामनाओं का अंत होता है और ना उसके प्रयासों का। इसी से जीवन आनंदमय बना रहता है क्योंकि उसकी सीमा नहीं, उसकी कोई मर्यादा नहीं।

सूरदास की कविताओं यहीं आनंद का भाव आज भी परिलक्षित होता था आज भी है और आगे आने वाली पीढ़ी में भी यहीं भाव लोगों को भावविमुग्ध करती रहेगी। यही तो आधुनिकता की अवधारणा है। सत्य कभी भी नहीं परिवर्तित होता है।

इस संबंध में मुझे अज्ञेय जी की आधुनिकता बोध था जिक्र किये बिना नहीं रह सकती।

अज्ञेय का आधुनिकताबोध एक ओर तो प्राचीन परंपरा से टकराता है दूसरी ओर वह आधुनिक विज्ञान और आधुनिक विचारधाराओं से टकराता है। एक भारतीय लेखक होने के नाते भारतीय सन्दर्भ में और फिर पूरे विश्व के संदर्भ में वे इस आधुनिकताबोध को समझना चाहते हैं। वे न परंपरा के सम्मुख समर्पण करते है और न पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान के सम्मुख। उनके लिए आधुनिकताबोध के केन्द्र व्यक्ति है, पूरा विश्व मानव है। आधुनिकताबोध उनके लिए समाज की एक ऐसी संरचना है, जहाँ मानव चेतना मुक्त और स्वतंत्र होकर विकास के नए द्वारा खोल सके।

सम्पर्क : *भलाई (म.प्र.)*
मो. 9752606036

ओम प्रकाश खुराना

वैदिक दर्शन : लोकतन्त्र और जीवनमंत्र का मार्गदर्शक

''चारों वेद शास्त्र हैं। संस्कृत के अतिरिक्त अब हिन्दी, अंग्रेजी अनुवाद में भी वेदों के भाष्य उपलब्ध हैं। आनन्दपूर्ण लक्ष्य प्राप्ति के लिए मनुष्य को वेदों का अध्ययन करना ही चाहिए।''

–पूज्य गुरुदेव

वेद शास्त्र, उपनिषद, गीता, रामायण आदि प्राचीन ग्रंथों को क्यों पढ़ा जाए? हमें तो इंजीनियर, डॉक्टर, राजनेता या अधिवक्ता बनना है, फिर इन्हें पढ़ने में अपना समय क्यों नष्ट किया जाए? इस शंका का समाधन देते हुए गुरुदेव ने बताया – आधुनिक शिक्षा पद्यति हमें चतुर, चालाक, तर्कशीलता एवं बुद्धिवाद में कुशाग्र बनाती है। वह हमारे अन्दर स्वार्थ तथा भौतिक सम्पदाएँ बढ़ाने की इच्छाएँ ही विकसित करती है? जबकि आर्ष ग्रंथों का पठन हमें एक अच्छा मानव बनने की प्रेरणा देते हैं ताकि हम जगत के कल्याणकारी कार्यों में भाग लेकर भगवान के प्रिय तथा उपयोगी औज़ार बन सकें। हम सभी इस सृष्टि–महायन्त्र के पुर्जे हैं और हर पुर्जे का अपना–अपना महत्त्व होता ही है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इसे बुद्धियोगी, कर्मयोगी एवं सांख्य योगी होना कहा गया है।

सनातन संस्कृति महान है जो सृष्टि के प्रत्येक प्राणी को जीने तथा विकसित होने के अवसर प्रदान करती है। यही लोकतन्त्र का मूल आधार है। मनुस्मृति के अनुसार मनुष्य चराचर संसार का सर्वश्रेष्ठ–विवेकवान राजकुमार है। कोई भी मानव श्रेष्ठ तब माना जाएगा, जब वह यम, नियम, अनुशासन से जीवन जीने की कला जानता हो, अन्यथा वह नरपशु ही कहा जाएगा। श्रेष्ठ जीवनचर्या बताने वाले विषयों को आभास था कि मानव भौतिक सुखों के चक्रव्यूह में फँसते हुए माया के वशीभूत होंगे, तत्पश्चात् वे दुर्व्यसनों में डूबकर शारीरिक व मानसिक सन्ताप से दुखी भी होंगे। मनुष्यों को सावधन करते हुए विषयों ने कहा – एक सद्गुण अपने कर्ता के लिए पाँच से अधिक सहयोगी धाराएँ जोड़ता है तथा एक दुर्व्यसन उस व्यक्ति के विपरीत पाँच से अधिक समस्यायें निर्मित करता है। विवेकवानों को सतर्क करते हुए सन्तों ने भी लिखा है –

दुख सुख इस संसार में, सब काहु को होए।
ज्ञानी काटे ज्ञान से, मूरख काटे रोए।।

दार्शनिकों के अनुसार सृष्टि के कण–कण और क्षण–क्षण का नियमन परमपिता परमात्मा की इच्छा

से ही होता है। इस बह्माण्ड की हर वस्तु बह्ममय है- चाहे वह प्राणी अथवा प्रकृति हो। यहाँ तक कि धूल का अंश अणु एटम भी अपने आप में पूर्ण है। सज्जनों का यही विश्वास उन्हें सन्तुष्टि, शान्ति देकर, उन्हें कर्मशील रहने की शक्ति भी देता है। वेद इसी महत्त्वपूर्ण ज्ञान द्वारा उत्थान मार्ग के पथिकों का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

वैदिक संस्कृति में सभी उपासना स्थलों, तीर्थों, शक्तिपीठों एवं गुरुजनों का आदर करना नैष्ठिक कर्तव्य माना जाता है। 'जियो और जीने दो' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' सनातन संस्कृति के मूल सिद्धान्तों में हैं। इन्हीं से इतना विशाल भारत एकजुट है। हमारे देश में इतने सारे धर्म-सम्प्रदाय, समूह, जातियाँ, भाषाएँ होते हुए भी अधिसंख्य हृदयों में सहिष्णुता की भावना है और हम प्रत्येक प्राणी से निश्छल प्रेम करते हैं। जलचर, थलचर, नभचर जीवों के प्रति समता भाव बनाए रखने हेतु हमारे देवों ने इन्हें ही अपना वाहन बनाया है, जैसे शिव का वाहन नन्दी, विष्णु के गरुड़, गणेश के मूषक, दुर्गा के शेर तथा कार्तिकेय के वाहन मयूर आदि हैं। साँप को दूध पिलाना, चींटियों को शक्कर खिलाना, पक्षियों को चुग्गा डालना, कुत्ते व गाय को रोटी खिलाना। पीपल, बरगद, आँवला, कदली, तुलसी आदि वृक्षों को पूजना हमारी परम्पराएँ रही हैं। इन्हीं नियमों से प्रभावित होकर विश्व समुदाय ने गंगा नदी और सिन्धु नदी के निकट बसे लोगों को हिन्दू नाम से संबोधित किया। अतीत में इन्हें आर्य भी कहते थे। आज जिसे हम हिन्दुत्व कहते हैं, यह शब्द वैदिक जीवन शैली का पर्याय बन चुका है। हमारे अनेक देवी-देवता, अनेक विचार, परतीतियाँ और अनुभूतियाँ हैं। आदि शंकराचार्य, कौटिल्य, भर्तृहरि, समर्थ गुरु रामदास, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, योगानन्द, विनोबा, गाँधी और आचार्य श्रीराम शर्मा आदि के लेखों व मुखरित वचनों से वैदिक संस्कृति की झंकार सुनाई देती है।

इक्कीसवीं सदी में 98 प्रतिशत हिन्दू घरों से वेद लुप्तप्राय हैं जबकि वेदों में महान शिक्षण है। संस्कार हैं, इनमें ज्ञान-विज्ञान, तन्त्र-मन्त्र की शिक्षा दीक्षा है। मार्गदर्शक नीति शास्त्र, आत्मबल का विकास, चरित्र निर्माण, दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन, परिवार निर्माण, जीवन जीने की कला है। वेदों में पर्यावरण सन्तुलन सुरक्षा के ढंग, युद्ध-विधान और स्वास्थ्य विज्ञान है। वास्तुकला, ज्योतिष, परा-अपरा शक्तियों पर नियन्त्रण, राजा एवं प्रजा के कर्तव्य, नृत्य-संगीत व अध्यात्म की गहरी समझ, प्रशासन तन्त्र की नीतियों का गहन विश्लेषण है। इतना ही नहीं हमारी संस्कृति तो आत्मसुरक्षा तथा अनीति का उन्मूलन करने हेतु भी प्रतिबद्ध है। इसलिए तो हमारी सभी देवियाँ और देवता भी अस्त्र-शस्त्र धारण किए हुए रहते हैं। वेदशास्त्र इतने महत्त्वपूर्ण होने पर भी सर्वसाधारण द्वारा अरुचि होने का एक बड़ा षड्यन्त्र स्पष्ट दिखाई पड़ता है। सन् 1835 से अंग्रेजों की शिक्षा प्रणाली एवं आजादी के बाद स्वार्थी नेताओं ने अपने वोट-बैंक बनाने के लिए स्वयं को सेक्युलर अथवा धर्म निरपेक्ष घोषित करना शुरू किया, दूसरे विधर्मी विदेशी तथा वाममार्गी लेखकों द्वारा वेदों की ऋचाओं को तोड़-मरोड़कर मनमाने अर्थ निकालकर वेदों के प्रति घृणास्पद भावनाएँ भर दीं। इन कारणों से यह शास्त्र आम लोगों के लिए त्याज्य वस्तु हो गए।

याद रहे वैदिक संस्कृति प्राकृतिक नियमों को मानते हुए ही जीवित है, प्राकृतिक नियमों से च्युत व्यक्ति सेक्युलर क्या वह तो स्वछन्द और मनमौजी हो जाता है। सत्य तो यही है कि हिन्दुत्व तो स्वयं में पंथनिरपेक्ष एवं कर्म पर श्रद्धावान और लोकतन्त्री है, चूँकि इंद्रासन का चयन भी लोकतान्त्रिक प्रक्रियानुसार

होता है। प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षक दिवस के प्रणेता डॉ. सर्वपल्ली राधकृष्णन व महात्मा गाँधी ने भी बताया – वैदिक संस्कृति युगयुगीन तथा संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है जिसे भारत ही सँभाले हुए है।

वेद प्राकृतिक नियमों के ज्ञायक तथा सत्य के विश्लेषक हैं। मानव मात्र की हर समस्या का समाधन इनमें मिलता है। वेद किसी भी भाषा में लिखे जाएँ, सनातन सत्य हैं। यह सर्वकालिक, सार्वदेशिक व सर्वजनीन हैं। प्रत्येक भारतीय को अपने घर में रामचरित मानस, श्रीमद्भगवद्गीता की तरह वेदशास्त्र भी रखने ही चाहिए, भले आप किसी आयु वर्ग में हों, पुस्तकालयों में कम से कम एक सैट चार वेदों का अवश्य होना ही चाहिए। यह खोजी पाठकों तथा शोधार्थी छात्रों को जीवन मन्त्र तथा सांस्कृतिक विकास का मार्ग सुझाते रहेंगे। ऋग्वेद, यजुर्वेद अथर्ववेद एवं सामवेद चारों वेदों के संस्कृत हिन्दी भाष्य आर्य समाज केन्द्रों में उपलब्ध हैं। श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने भी वेद–उपनिषदों का सरल भाष्य किया है। अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा द्वारा प्रकाशित चार सौ पृष्ठों की पुस्तक 'वेदों का दिव्य संदेश' सरल सुबोध् हिन्दी देवनागरी, गुजराती एवं अंग्रेजी भाषा में भी अति न्यूनतम मूल्य पर उपलब्ध है। यह प्रतियाँ मित्रों, परिजनों में वितरित कर पुण्य के भागीदार बन सकते हैं। वेद जीवन पर्यन्त हमें श्रेष्ठ मानव, तनावमुक्ति और आनन्दमय होने का मार्गदर्शन देते रहते हैं। ऊँ तत्सत्।

सम्पर्क : *33/33, हरियाणा भवन*
न्यू मार्केज्ट, टी.टी. नगर, भोपाल
मो. 8989717058

शोभा शर्मा

'म्हारो मालवो म्हारी पेचाण' अन सांस्कृतिक धरोहर

'मानव के प्रथम शब्द को सहेजें ये बोलियाँ,
हर प्रान्त में बनती रहीं हैं इन्हीं की टोलियाँ।
हिन्दी से पहले ही लगीं ये भारत के भाल पर,
क्षरण से हम बचाएँगे तो चमकेंगी ये बिन्दियाँ।।'

हमारो मालवो हमारा मध्यप्रदेश रा भाल पे एक रतनों से सज्यो हुयो मुकुट हे। याँ री पुरातन विरासत मा या मालवा री धरती धर्मभूमि, कर्मभूमि पण री है।

याँ री अहाड़, एरण, अन नवदाटोली री खुदाई माँ जे सांस्कृतिक विरासत मिली है। उके लईने हमारा पुरखा चल्या अई रिया है। पन आज का नवता जुग माँ पोंचता-पोंचता धूल रा झाड़न जसा पुरानी परंपरा खे झाड़ता अई रिया है। ई की वजा से हमारी संस्कृति रा सितारा धुंधला पड़ता जई रिया हे।

हमारा ऋसी -मुनी लोगाँ ने जे बी कंई हमखे सिखायो, वा ज परंपरा चली अई री हे। वा ज हमारी संस्कृति केहलावे हे। संस्कृति हमारा समाज का वी सूक्ष्म संस्कार हे, जिका जरिया से लोग आपस मा मिलिने उनखे अपनावे हे।

संस्कृति हमारा के जीवन को अर्थ, अन जीवन जीने को तरीको सिखावे हे। मनुस संस्कृति को निर्माता हे, अन ई का साते-सात संस्कृति ज मानव के मानव बनावे हे। हजारों बरसां री संस्कृति धीरां -धीर बढ़िने पीढ़ियाँ का सात चलती जावे, लोगाँ की जरूरत का हिसाब से सुधार होतो जावे वा सभ्यता का रूप मा सामणे आवे। या ज हमारी आज री सभ्यता री गिनती मा आवे।

हमारा मालवा री पेचाण केई वजा से हे। जिनका बारा मा बिचार रखाँगा-

गीत -संगीत, रेहन-सेन, धरम, रीत रिवाज, खेती-बाड़ी, छोटा-छोटा उद्योग-धंदा अन वा हर छोटी से छोटी बात जो म्हारा मालवा खे घणो ई ऊँचो दरजो देवे हे। हमारा मध्यपरदेस रा मुकुट मा मालवा संस्कृति जसा नगीना जड़्या हे, ऊ को वरनन हे।

1. मालवा को लोक संगीत मन मा गहराई तक समा जावे हे। नरबदा, चंबल, शिप्रा-सी पवित्रता, कल-कल जल का जसो हे यो संगीत। मालवा का भोला-भाव भरया लोकगीत, गोबर से लिप्या-पुत्या घर-आँगन, रिश्तां, तीज-त्यौहारों अन सूरज-चंदा, नदी, हवा, आसमान जसा तत्वों का बखान करे है।

दुनिया कितरी ज आगे बढ़ी जावे, मालवा को लोक संगीत हमेसा मनुस खे पुरानी संस्कृति री मूल बातां की याद दिलातो रेवेगो ।

2. गाँव का छेत्र मा अखंड रामधुन अन अखंड रामायण पाठ को बी चलन हे। गाँव का सबी लोग मंदिर मा इकठ्ठा होईने कम से कम चौबीस घंटा को रामायण को पाठ अन अखंड रामधुन रो आयोजन करे हे। या परंपरा आज बी कायम हे।

म्हारा मालवा री सबसे बड़ी पिचाण तो वां रो 'गणगोर परव' 'संजा माई' हे ।

मैंने गणगोर का अरु संजा का घणा सारा गीत लिख्या हे। अख्खा मालवा का साते-सात पूरो देस इना उच्छव में गरबा खेले। रंग बिरंगा कपड़ा में सजी गोरनी घणो आकर्षण को लागे।

3. 'मालवी को लोक साहित्य घणो समृद्ध हे। लोक नाट्य माच, गीत, कथा वार्ताएँ, पहेलियाँ, कहावताँ सब मालवी री अपणी ताकत हेतु। इकी शब्द सम्पदा बी घणी समृद्ध हे। इकी उच्चारण पद्धति नाट्शास्त्र जुग से आज तक वसी ज बणी हे।

ई-समृद्ध मालवा की अपनी मीठी बोली मालवी हे। जे मालवा के आज अपणी पेचान बणई हुई हे। या पन्द्रा ज़िलाँ का करीब डेढ़ करोड़ लोगां री भासा हे।

4 . मालवा संस्कृति अपनी मृदभांडा री उत्कृष्टता का लेने जानी जाती री हे। आज बी सबसे ज्यादा मट्टी रा बण्या बरतन मूर्तयाँ अन उनका उप्पर जो चित्रकारी करी जावे वा तो पूरी दुनिया मा मालवा को नाम रोसन करी री हे। ई मालवा की पुराना बखत री कला हे।

मालवा री माँडणा कला सबसे खास हे। याँ का लोग इकी वजे से केई जगां पे घणा चोखा चित्र बणाइने अच्छो नाम अन दाम कमावे हे।

5. हमारा मालवा को सबसे पुरानो काम हातकरघा, अन हस्तशिल्प हे। वो आज का समय रो सबसे बड़ो रोजगार को साधन बण्यो हे। कपड़ा पे रंगई-छपई को काम 'बाग प्रिंट' कलमकारी, कसीदाकारी को काम आज सबसे ज्यादा पसंद करें हे। पूरा जगत भर मा मालवा रो 'बाग प्रिंट' मसहूर हुयो हे। हमारा परदेस री चंदेरी की साड़ियाँ महेस्वरी साड़ियाँ पे जद बाग प्रिंट अन पिथौरा चित्रकारी की किनारी अन पल्लू से बण्या कपड़ा साड़ी देखे ते मालवा संस्कृति रो बड़ो उदाहरन सामणे आवे।

6. गाँव मा चौपाल, अन ओटला हुन पे बेठिने जे कंई बी बातचीत-समाज, रीत - रिवाज, धरम-करम का बारा मा बिचार करता था, वा ज प्रथा आज भी सहर मा देखना के मिली री हे। ऊ बेठक रो नाम रख्यो हे - 'मालवी जाजम' हर महीना का आखरी रविवार का दिन इन्दौर का रवीन्द्रनाथ टैगोर मार्ग पे स्थित 'श्री मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति के सभागार' मा मालवी भासा का चाहना वाळा लोग मिल बठिने मालवी मा बतियावे हे। कविता, गीत, वार्ता, सुणे-सुणावे हे। ठीक बखत पे तीन बजे एक घंटा तक 'मालवी-जाजम' को कार्यक्रम चाले हे।

आज री नवती हवा मा कमजोर हुई री मालवी लोक संस्कृति के केई जगां पे सुरक्षा का लाने घणा उपाय करणा की जरूरत हे। इ सबका सारू मालवा साहित्य-संस्कृति का समर्पित मर्मज्ञ लोगों खे जोड़ना री जरूरत हे। ईका साते-सात राजनीतिक-प्रशासनिक समर्थन री खास जरूरत हे।

मालवा री सगली पुरानी परंपराओं खे बार-बार दोहराना रो काम हम सबखे करनो हे। ई का सारू

म्हारो यो पेलो परयास हे –

मालवा खे बणावन वाला मालव जाति का लोग कसा था, अन केई पीढ़ूयाँ लगिने मालवा के बनाइने हमारा हाथ में सौंपि ग्या –

ई बात के म्हूं इना गीत माँ लिखी री हूँ –
मालव का लोग?
मालवा रो गीत–

मालव जात का मन मजबूत
सिकंदर से हारिके नी बन्या बूत
दिखई उना लोगाँ ने असी करतूत
बनइ डालांगा अपणों देस मजबूत।

बरछी भाला तीर संभालिने
छोरा–छोरी ने गोद बिठाइने,
ढोर–जनावर संग मा राखिने
चल्या–चल्या चलता ज गईने।।

चंबल को तट बड़ो घणों थो
सेर–बाघ से भर्यो पड़्यो थो,
ठंड जाड़ो असो पड़ी रियो थो
जीनो भी कठन हुई रियो थो।।

थोड़ा दन ते काट्या जस–तस
पाछे सब लईने वी चल्या परबस,
गेरो–गेरो नरमदा को पाणी खास
ठेरी गया सब लई के घाट की आस।।

मुठ्ठी भर लोगाँ ने ढूँढ्यो कईं असो
जगत सारो उनी कला को मुरीद हुयो,
बस गयो म्हारो मलवो तिलक जसो
इना मध्यप्रदेश का माथा रो ताज जसो ।।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 8889881032

ऊषा सक्सेना

बुंदेली भाषा का उद्भव और विकास

भारत के मध्य क्षेत्र में स्थित बुंदेल खंड के विंध्य-क्षेत्र में बोली जाने वाली इस भाषा का नाम बुंदेली है। जो की अपने प्राचीन काल से बोली जा रही है। ठेठ बुंदेली के शब्द अनूठे और अपने रस में सराबोर करने वाले हैं। अन्य भाषाओं की तरह बुंदेली भाषा की जननी भी स्वयं संस्कृत है।

वैदिक काल से चली आरही संस्कृत जब अपने उच्चरण की कठिनता के कारण केवल देवभाषा ही बन कर रह गई तो जन-जन के बीच से उसके अपभ्रंश के रूप में ही प्राकृत भाषा का जन्म हुआ। समय के परिवर्तन के साथ प्राकृत भाषा अपभ्रंश होकर जब पाली भाषा में बदल गई तो इसमें देशज शब्दों की बहुलता हो जाने से ही यह क्षेत्रीय विशेष की भाषा बन गई। विंध्य क्षेत्र बुंदेलखंड का अपना एक इतिहास है? यह अपने जन्म से ही चंद्रवंशी राजा चंदेलों से जुड़ा रहा पहले इसका नाम चेदि दशार्ण एवं कारुष था। पर्वतीय शुष्क वन्य क्षेत्र होने से यहाँ के जंगलों में अनेक जन जातियों का निवास रहा। जिनमें कोल, किरात, निषाद नाग, पुलिंद एवं गौड़ जातियाँ प्रमुख थी। जिनके अपने कबीले थे और प्रकारांतर से सभी की अपनी ही अभिव्यक्ति की भाषायें थीं जो अलग-अलग थीं। भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में सर्वप्रथम बुंदेली भाषा के शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ। बुंदेली भाषा का जन्म उत्तर भारत की प्राकृत शौरसेनी और संस्कृत से माना जाता है। चंद्रवंशी मथुरा के राजा शूर सेन थे उस समय प्राकृत भाषा से ही इसका जन्म हुआ और संपूर्ण मध्यदेश की भाषा बन गई। बुंदेलखंड क्षेत्र में बोले जाने के कारण बुंदेली भाषा का अपना अलग ही वर्चस्व रहा।

बुंदेली भाषा की विशेषता में इसकी अपनी प्रकृति चाल वाक्य-विन्यास और शैली है। भवभूति के उत्तर रामचरितम् में ग्रामीण जनों की भाषा विंध्येली अर्थात बुंदेली ही थी। अपनी भौगोलिक और सांस्कृतिक विविधताओं के बावजूद भी बुंदेलखंड में जो समरसता और एकता है उसके कारण यह क्षेत्र आज भी अनूठा है। बुंदेलखंड का पहले नाम जैजाकभुक्ति था जिसे जुझौतिखंड के नाम से भी जाना जाता है।

बुंदेली का प्रारम्भिक काल 940 से 990 ई. तक चंदेल नरेश गंडदेव शासन में रहे उसके बाद उनके उत्तराधिकारी विद्याधर के समय यह अपने प्रारम्भिक काल से धीरे-धीरे विकसित होकर रासो काव्य धारा की भाषा बनी। राजकवि जगनिक का आल्हा खण्ड बुंदेली में ही लिखा गया। इसके अतिरिक्त चंदबरदाई ने भी उसी समय समकालीन होने से पृथ्वीराज चौहान की प्रशंसा में पृथ्वीराज रासो लिखा। आल्हा खण्ड तथा परिमाल रासो वीर रस की बुंदेली भाषा की परिपक्व प्रौढ़ता की रचनायें हैं। जो आज भी उस क्षेत्र में गाई जाती हैं। बुंदेली भाषा के कवियों में उस समय के बहुत से प्रसिद्ध कवि हुये। बुंदेली भाषा में अवधी और ब्रज भाषा के भी कुछ शब्द हैं। बुंदेली भाषा इस प्रकार से अति प्राचीन होते हुये भी उसके पिछड़ा क्षेत्र होने के कारण

साहित्य और इतिहास में वह स्थान प्राप्त नहीं कर सकी जो उसे प्राप्त होना चाहिये था ।

व्याकरण की दृष्टि से – बुंदेली भाषा का बुनियादी शब्द भण्डार और व्याकरण अपने समाज की भाषा संबंधी हर उन आवश्यताओं की पूर्ति करता है जो उनके विकास के लिये होना चाहिये। बुंदेली ध्वनि में 10 स्वर और 27 व्यंजन हैं। देवनागरी के 160 अक्षर इसमें नहीं हैं। इन 10 स्वरों का उच्चारण हिन्दी साहित्य से अलग है। 750 मूल शब्दों में से बमुश्किल 50 शब्द ही आज दोनों भाषाओं में समान होंगे। इसमें अधिकांशत: अधिक शब्दों को खींचकर समानतायें पाई जा सकती हैं। बुंदेली में क्रिया भी मूलरूप से भिन्न है। इसके संज्ञा सर्वनाम क्रिया आदि मूल रूप से संक्षिप्त शब्द हैं। बुंदेली भाषा एक जीवंत वैज्ञानिक भाषा है जिसका अपना शब्द कोश है। प्राचीन काल में बुंदेली भाषा में शासकीय पत्र व्यवहार, संदेश बीजक, राजपत्र और संधियों के अभिलेख प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। वह सब इस बात के साक्षी हैं कि बुंदेली भाषा का स्वयं अपना ही वर्चस्व रहा। आज भी यह भाषा अपने क्षेत्र में गर्व से गौरवान्वित करती हुई बोलचाल की भाषा बोली के रूप में जीवंत है। आवश्यकता है आज इसके विकास की जो इसे इसका गौरव पूर्ण स्थान दे सके।

बुंदेली साहित्य का विकास – बुंदेल खंड काव्य को हम अध्ययन की दृष्टि से सात भागों में बांट सकते हैं–

1. भाषाकाव्य –नौवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक रहा। इसमें वीर रस प्रधान रासो लिखे गये। आल्हा खंड के लेखक राजकवि जगनिक थे। इसी प्रकार से उस समय पृथ्वीराज रासो की रचना राजकवि चंदबरदाई ने की। बुदेलखंड में आल्हा आज भी गाया जाता है। यह मौखिक परम्परा का काव्य है जिसके विषय में कहा जाता है कि – भरी दुपहरी सरवन गाईये/ सोरठा गाईये आधी रात।/ आल्हा पवाड़ा वा दिन गाईये/ जा दिन झड़ी लगै दिन रात।।

भर बरसात के बीच आल्हा के गायन का प्रचलन आज भी बुंदेलखंड के गाँव–गाँव में है।

2. कथाकाव्य – 13वीं से 16वीं शती तक। इस काल में विष्णुदास हुये। जिन्होंने कथा के माध्यम से रामायण और महाभारत की कथा लिखी। इस कथा काव्य शैली में दोहा, चौपाई, सोरठा और छंदों का खुल कर प्रयोग किया। बहुत समय तक उनकी रचनायें अज्ञात रहीं। बाद में बुंदेली पीठ ने उनको प्रकाश में लाया। यही रचनायें बाद में राम और कृष्ण भक्ति की भावभूमि बनीं।

3. भक्तिकाल और रीति काल – 16वीं से 17वीं शती तक इसमें भक्ति काल में तुलसी दास जी ने रामचरित मानस लिखा। महाकवि बलभद्र मिश्र, ओरछा के महाराज मधुकर शाह और उनके गुरु हरिराम व्यास हुये। इसी समय केशव दास हुये जिनकी राम चंद्रिका है। वह भक्ति काल और रीति काल के संधिकाल के कवि थे। कवि प्रिया, रसिक प्रिया, वीरसिंह जू देव का चरित्र और विज्ञान गीता, रतनवादिनी उनके प्रमुख ग्रंथ हैं। इसी काल में अकबर के समय ओरछा में प्रवीनराय राजनर्तकी हुई जो अनुपम सुंदरी होने के साथ ही बहुत अच्छी कवि भी थी। वह राजा इंद्रजीत की प्रेमिका थी। जिसकी प्रशंसा सुनकर अकबर ने उसे अपने राजदरबार में बुलाया। वह इंद्रजीत से बहुत प्रेम करती थी। इसी लिये उसने अकबर के दरबार में अपनी विद्वता का प्रदर्शन करते हुये यह दोहा कहा– विनती राय प्रवीन की/ सुनिये साह सुजान।/ जूंठी पातर खात हैं/ बारी, बायस, श्वान।।

प्रवीन राय का यह दोहा सुनकर अकबर उसका मतलब समझ गये और उसे बहुत सा उपहार देकर ओरछा इंद्रजीत के पास भेज दिया।

4. रीतिकाल –17से 18वीं शती तकर इसमें बिहारी कवि आते हैं और उनके दोहों में नायिका का नखशिख वर्णन रसिकता के साथ मिलता है। इसी समय जायसी भी हुये। रसिकता केशवदास की रचनाओं से ही प्रारम्भ हो गई थी जो रीति काल के कवियों में स्पष्ट रूपसे झलकती है।

5. सांस्कृतिक उन्मेष और राजनैतिक जागरण का काल –17वीं से 18वीं शती तक इसमें अंग्रेजो का वर्चस्व देश पर हो गया था। बुंदेलखंड में इस समय छत्रपति महाराज छत्रसाल का राज था। उन्होंने मुगलों को बुंदेल खंड में प्रवेश करने से रोका। यह राजनैतिक जागरण का भी समय था। इस समय साहित्य के माध्यम से जन-जन में चेतना के जागरण का कार्य चल रहा था। इस समय के राजकवि भूषण और लालकवि थे। जिन्होंने छत्रसाल की प्रशंसा में काव्य रचना की। लाल कवि ने 'छत्र प्रकाश' लिखा। छत्रसाल के पिता जी चम्पतराय के युद्ध का वर्णन बख्तबली महाचार्य ने किया बाद में उनके दोनों पुत्र भानुभ कवि और गुलाब छत्रसाल के साथ रहे। हरिसेवक मिश्र ने 'काम कथा' के माध्यम से प्रेम का संदेश दिया। यह समय बुंदेलखंड का स्वर्णिम युग था जिसमें चतुर्दिक प्रतिभाओं का विकास हुआ।

6. स्वातंत्रता पूर्व का आधुनिक काल –18वीं शती के बाद से 19वीं शती तक।

यह रीति काल के साथ ही जन्मा श्रृंगार काल था। श्रृंगार रस की रचनाओं का श्रेष्ठ तम काल था यदि ब्रजभूमि में भक्ति रस की धारा बह रही थी तो बुंदेलखंड में पदमाकर, खुमान कवि, मधुकर शाह, दामोदर देव, गदाधर भट्ट गंगाधर व्यास और ईसुरी जैसे कवियों ने श्रृंगार रस की माधुरी प्रवाहित की।

7. स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक काल – 1950-2000ई. तक स्वतंत्रता के पश्चात् का यह समय आधुनिक काल में आता है। इस समय चार प्रकार के कवि थे- 1. जिन्होंने अतीत के चरित्रों को आधार बनाया, 2. आधुनिक चेतना के साथ ही स्वातंत्र्योन्मुख विचारधारा को ठेठ बुंदेली में प्रस्तुत किया, 3. स्फुट छंदों में काव्य रचनाओं का सृजन किया, 4. लोक काव्य शैली में ग्रामीण जीवन को आधार बनाया।

इस काल में मदन मोहन द्विवेदी ने लक्ष्मी बाई रासो लिखा, डॉ. भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी रचनाओं में लोकोक्तियों का खुलकर प्रयोग किया। ऐनानन्द ने 'सिद्धांतसार' नामक ग्रंथ लिखा रामचरण, हयारण, हरिप्रसाद 'हरि' गौरीशंकर द्विवेदी, संत ब्रजेश, भैयालाल व्यास, सुधाकर शुक्ल चतुर्भुज दीक्षित एवं रघुनाथ गुरु आदि कवियों ने बुंदेली का नाम बढ़ाया। वर्तमान आधुनिक काल में - मैथिली शरणगुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामकुमार वर्मा, अम्बिका प्रसाद दिव्य, और केदारनाथ अग्रवाल जैसे कवियों ने बुंदेली का मान बढ़ाया। बुंदेली माटी में जन्मी अनेक विभूतियों ने इसका मान बढ़ाया? भौगोलिक दृष्टि से इसकी सीमायें स्पष्ट हैं।

'इत चम्बल उत नर्मदा/ इत जमुना उत टौंस।/ छत्रसाल से लरन की/ रही ना काहूं हौंस।।'

उत्तर में जमुना, दक्षिण में इसके विंध्याचल की श्रेणियाँ, उत्तर एवं पश्चिम में चम्बल तथा दक्षिण पूर्व में पन्ना अजयगढ़ की पर्वत श्रेणियों ने इसे घेर रखा है। यह चारों ओर से घिरा हुआ क्षेत्र ही बुंदेलखंड है। इस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा को ही बुंदेली कहते हैं। शूर वीरता के लिये प्रसिद्ध बुंदेलखंड इतिहास के पन्नों में सदा ही विद्यमान रहा।

इस तरह हम देखते हैं कि बुंदेली साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है।

इसको अन्य भाषाओं के समान ही प्रोत्साहन की आवश्यकता है।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9993372655

शिवचरण चौहान

बैताल कहे ब्रिक्रम सुनो

(प्रासंगिक हैं कवि बैताल की कुंडलियाँ)

कवि बैताल चरखारी नरेश विक्रम शाह के दरबारी कवि थे।

अन्य कवियों की तरह कवि बैताल के बारे में बहुत जानकारी नहीं मिलती। उनका जन्म कहाँ और किस स्थान प्रदेश में हुआ था पता नहीं चलता किंतु बैताल की कुंडलिया आज भी प्रसिद्ध हैं। गिरिधर कविराय, गंग कवि की तरह बैताल कवि की कुंडलिया आज भी लोगों की जुबान पर जीवित हैं।

कहते हैं बैताल कवि का जन्म संव त 1839 से लेकर 1886 कि मध्य कभी हुआ था। शिव सिंह सेंगर ने अपनी पुस्तक शिव सिंह सरोज में बैताल कवि का जन्म तिथि संवत 1734 (सन् 1683) के आसपास मानी है। बैताल कवि भट्ट ब्राह्मण बंदी जन थे। राजाओं के गुण गाना उनका खानदानी पेशा था। उस समय महोबा के पास चरखारी राज्य के राजा विक्रम साहि थे। विक्रम स्वयं अच्छी कविताएँ लिखते थे और अच्छे कवि थे। उनकी लिखी विक्रम सत्सई प्रसिद्ध है। उन्हीं विक्रम के चरखारी दरबार के कवि थे बैताल। बैताल ने ज्ञान, नीति की कुंडलियाँ कही हैं। इनकी रचनाओं में उपमा उप मेय, उप मान, रूपक आदि का उल्लेख हुआ है किंतु सीधी सच्ची खरी बात कुंडलियों में कहने के कारण वह जन-जन में लोकप्रिय हो गए थे। आज भी बैताल कवि की कुंडलियां गाँव-गाँव में लोगों के बीच कई सुनी जाती हैं।

बैताल कवि की प्रमुख कुंडलियाँ-

मरे बैल गरियार मरे वो अडियल टट्टू।
मरे करकसा नारि मरे वह खसम निखट्टू।।
बहमन वह मरि जाय, हाथ ले मदिरा प्यावे।
पूत वही मरि जाय, जो कुल में दाग लगावे।।
बेनियाव राजा मरै तबै नींद भरि सोइए।
बैताल कहे, विक्रम सुनो इतने मरे न रोइए।।

पग बिन कटे न पंथ, बाहु बिन हटय न दूर्जन।
तप बिन मिले न राज्य-भाग्य बिन मिलें न सज्जन।।
गुरु बिन मिले न ज्ञान, द्रव्य द्रव्य बिन मिले न आदर।
बिना पुरुष श्रृंगार, मेघ बिनु, कैसे दादुर।।
बैताल कहै विक्रम सुनो बोल बोल बोली हटे।
धिक्क धीक्क ये पुरुष को मन मिल्लाय अंतर कटे।।

जीभि जोग अरू भोग,जीभि बहु रोग बढ़ावै ।
जीभि करे उद्योग, जीभि ले कैद करावै।।
जीभि स्वर्ग ले जाय, जीभि सब नरक दिखावे।।
जीभि मिलावे राम जीभि सब देह धरावे।।
निज जीभि एकत्र कर बाँट सहारे तौलिए।
बैताल कहै बिक्रम सुनो जीभि सम्हारे बोलिए।।

टका करे कुल हूल, टका मृदंग बजावे।
टका चढ़े सुखपाल, टका सिर छत्र धरावै॥
टका माय अरु बाप, टका भैयन को भैया।
टका सास अरू ससुर, ट्का सिर लाड लड़े या॥
अब एक टके बिनु-टकटका रहत रात दिन।
बैताल कहे विक्रम सुनो धिक जीवन इक टका बिन॥

राजा चंचल होय, मुलुकको सर करि लावै।
पण्डित चंचल होय सभा उत्तर दै आवै।।
हाथी चंचल होय समर में सूंड उठावै।
घोडा चंचल होय झपट मैदान दिखावै॥
ये चारो-चंचल भले,राजा-पंडित गज तुरी।
वैताल कहे विक्रम सुनो,तिरिया चंचल अति बुरी।।

बुधि बिन करे व्यापार दृष्टि बिन नांव चलावै।
सुर बिनु गावै गीत, अर्थ बिनुनाच नचावै॥
गुन बिनु जाय विदेश, अकल बिन
चतुर कहावे।।
बल बिनु बाधे युद्ध हौस बिनु हेत जमावे।।
अन इच्छा इच्छा करे, अन दीठी बातें करे।
बैताल कहै विक्रम सुनौ, यह मूरख की जात करे।।

सम्पर्क : *मनेथू, कानपुर (उ.प्र.)*
मो. 9369766563

कृष्ण बिहारी पाठक

रामचंद्र शुक्ल : प्रेम कसौटी

रामचंद्र शुक्ल का नाम हिंदी आलोचना में रसवादी आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित है। रसवादी आलोचक किसी कृति में रस की उत्पत्ति और उत्कर्ष की संभावनाओं और सीमाओं का मध्य नजर रखते हुए उस कृति का मूल्यांकन और श्रेणीकरण करते हैं।

रामचंद्र शुक्ल का महत्व इस बात को लेकर है कि उन्होंने परंपरा से चली आती हुई रस सिद्धांत की शास्त्रीय पद्धति को मानव मनोविज्ञान की अंत:प्रवृत्ति से जोड़कर और अधिक व्यावहारिक तथा अद्यतन रूप प्रदान किया। इस तरह रामचंद्र शुक्ल ने युगीन प्रवृतियों और मानव व्यवहार से रस के स्वरूप को जोड़ते हुए रसवाद की एक मौलिक सैद्धांतिकी विकसित की।

प्रत्येक युग में कुछ विलक्षण प्रतिभाएँ जन्म लेती हैं जो उपलब्ध परंपराओं, चिंतन शैली और संस्कारों के मूल स्वरूप का मान रखते हुए वर्तमान युग एवं जीवन के संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में अपनी मेधा के बल पर उन प्रतिमानों का परिशोधन, परिसंस्कार और नवीनीकरण करते हैं। रामचंद्र शुक्ल ऐसे ही प्रतिभासंपन्न मेधापुरुष थे।

रामचंद्र शुक्ल के रसवाद के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी रीतिकाल की संकुचित रसदृष्टि जिसमें रसों को भावना के स्तर से उतारकर केवल वासना और ऐहिकता पर लाकर छोड़ दिया गया। यह बात कितनी अचरज भरी है कि जिस रीतिकाल के केंद्र में केवल व केवल शृंगार रस रहा और जिस रीतिकाल में सर्वाधिक परिमाण और प्रतिष्ठा इसी एक रस की रही वह भी संकुचित हुए बिना रह न सका।

सुख-संयोग से दु:ख-वियोग के विस्तृत पसारे में फैला यह रति भाव जो भगवद विषयक, वात्सल्य विषयक और दांपत्य मूलक रति के रूप में प्रतिष्ठित होता आया है, रीतिकवियों ने उसे केवल दांपत्य के खूँटे से बाँध दिया। वे स्वकीया, परकीया से परे न देख सके। क्या रसराज का यही कार्य है कि वह नखशिख वर्णन करता फिरे? क्या राजा का कार्य केवल लोकरंजन है, लोकरक्षण की उसकी प्रवृत्ति क्या सब दिन के लिए मारी गई?

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस खूँटे को तोड़कर अपनी आलोचना के माध्यम से शृंगार के रसराजत्व को पुन: प्रतिष्ठित किया। शुक्ल जी की आलोचना में यह रस ईश्वर से मानव तक, प्रकृति से पुरुष तक, जीव से जगत तक, प्राणी से प्राणी तक और एक से अनेक तक प्रसारित होने वाले प्रेम के रूप

में पुनः नयी स्वाधीन चेतना पाता है। शुक्ल जी ने रसवाद में वासना से ऊपर उठकर भावना की प्रतिष्ठा की। लोकरंजन के साथ-साथ लोकरक्षण के महनीय उद्देश्यों से उन्होंने रसवाद को जोड़कर उसकी मंगल विभा को एक बार फिर जगत के सामने लाकर दिखाया।

सूर, तुलसी, जायसी की विस्तृत आलोचनाओं तथा हिंदी साहित्य में वर्णित विविध साहित्यकारों की आलोचना एवं कृतियों के मूल्य निर्धारण में शुक्ल जी ने प्रेम के इस विशद, उदात्त और व्यापक रूप को अपनी कसौटी बनाया। रति का यह आग्रह उनकी आलोचना में प्रकृति प्रेम, देश प्रेम, विश्व प्रेम और इतिहास प्रेम तक व्याप्त है। इस तरह रामचंद्र शुक्ल के आलोचनात्मक प्रतिमानों को यदि प्रेम कसौटी कह दिया जाए तो अतिशय न होगा।

अब यह देखना चाहिए कि यह प्रेम कसौटी रामचंद्र शुक्ल के आलोचना कर्म में किस रूप में रेखांकित की गई है। रचनाओं के श्रेणीकरण और मूल्य निर्धारण में इसका कितना योग है। कविता को परिभाषित करते हुए शुक्ल जी ने कविता का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य बताया है - 'शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंधों की रक्षा एवं उनका निर्वहन। यह रागात्मकता रति भाव का ही प्रकट रूप है।'

पद्मावत में नागमती का वियोग वर्णन, सूर के भ्रमरगीत में विरह दग्ध गोपबालाएँ, तुलसी के मानस में वनवासी राम और वाटिका में बंदिनी सीता का वियोग.. तीनों स्थानों पर प्रेम, विप्रलंभ हमारे सामने आता है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि शुक्ल जी दांपत्य अथवा माधुर्य विषयक रतिभाव और उसमें भी तीनों स्थानों पर विप्रलंभ की समानता होने पर भी प्रेम की व्यापक भूमिकाओं का दिग्दर्शन अपनी प्रेम कसौटी पर दिखाया है।

नागमती का प्रेम उस उदात्त भूमि पर है जहाँ प्राणी संकीर्ण बंधनों से मुक्त हृदय हो जाता है। संपूर्ण चराचर जगत में वह अपनी ही विभूति का विस्तार पाता है। आचार्य शुक्ल ने हृदय की इस अवस्था को मुग्ध होकर पुण्य दशा कहा है -

'इस दशा में पशु, पक्षी, पेड़, पल्लव जो कुछ सामने आता है उसे वह अपना दुखड़ा सुनाती है। वह पुण्य दशा धन्य है जिसमें ये सब अपने सगे लगने लगते हैं और यह जान पड़ने लगता है कि इन्हें दुख सुनाने से भी जी हलका होगा।... हृदय की इस उदार और व्यापक दशा का कवियों ने केवल प्रेम दशा के भीतर ही वर्णन किया है, यह बात ध्यान देने योग्य है।' (शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, गोस्वामी तुलसीदास, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, 1935 ई., पृ. 53)

कवियों द्वारा प्रेमदशा के ऐसे वर्णन का महत्त्व अपनी जगह है, महत्त्वपूर्ण बात है शुक्ल जी का यह ध्यानाकर्षण प्रस्ताव जो प्रेम के महत्त्व को व्यापक रूप से रेखांकित करता है। इसी आलोचनात्मक भूमिका में आगे जाकर शुक्ल जी ने यह सिद्ध करके दिखाया है कि वे क्यों नागमती के विरह को साहित्य की अद्वितीय वस्तु कहते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि इस अद्वितीयता का कारण भी प्रेम है। नागमती के विरह से पशु पक्षियों का व्याकुल होना और संदेश पहुँचाने को तत्पर होना, साहित्य में यह पहली घटना है जब मानव के दुख में प्रकृति भी अपनी सहानुभूति मुखरित होकर व्यक्त करती है, प्रत्युत्तर देती है, अन्यथा इससे पहले भगवान राम-खग, मृग और मधुकरों को पुकारते ही रहते हैं पर कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता।

शुक्ल जी द्वारा विवेचित इस विप्रलंभ में प्रेम का स्वरूप वासनात्मक नहीं है शुद्ध भावनात्मक है जो चर-अचर, जड़-चेतन सबको एक सूत्र में बाँधता है। एक राजा के समान यह शृंगार सबका है, सब तक है, सब से है।

शुक्ल जी ने भ्रमरगीत सार की भूमिकाओं में गोपियों के विप्रलंभ में उदात्तता की दूसरी झलकी दिखाई है। तुष्टि न होने पर भी प्रेम का सौंदर्य यहाँ अपने चरमोत्कर्ष पर है। कृष्ण के आगमन की चाहना में कभी वे अतिकृशगात गौवंश का हवाला देती हैं, कभी श्यामहीन मधुवन की हरीतिमा को कोसती हैं, कभी अपनी ही मान्यता से कृष्ण को कुब्जा प्रेम से अभय प्रदान करती हैं और अंततः कृष्णागमन की सभी संभावनाओं के चुकने पर कृष्ण से नहीं ईश्वर से माँगती हैं, कृष्ण की कुशल -

'जहँ-जहँ रहो राज करो तहँ तहँ, लेहु कोटि सिर भार।

यह असीस हम देति सूर सुनु, न्हात खसे जनि बार।। (सूर) (शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, भ्रमरगीत सार, साहित्य सेवा सदन, बनारस, 1934 ई., पृ. 66)

तुष्टि का विधान नहीं होने पर भी यहाँ प्रेम का स्वरूप पूर्ण है, विशुद्ध है, निर्मल है, त्रुटिहीन है। प्रेम की इस उदात्त मूर्ति की प्रतिष्ठा हृदय की उदार भूमि पर ही संभव है - 'इस उच्च भूमि पर पहुँचा हुआ प्रेमी प्रिय से कुछ भी नहीं चाहता है, केवल यही चाहता है - प्रिय से नहीं, ईश्वर से - कि हमारा प्रिय बना रहे और हमें ऐसा ही प्रिय रहे।' (शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, लोभ और प्रीति (चिंतामणि), इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, 1950 ई., पृ. 94)

आलोचना साहित्य में शृंगार को जैसा वैभव और विशद भूमि शुक्ल जी ने प्रदान की है वह आज भी आलोचकों के लिए ईर्ष्या और स्पर्धा का विषय बनी हुई है। अब इस अतृप्त, अपुष्ट एकपक्षीय प्रेम को ही लीजिए। गोपियों में यह प्रिय बना रहे, प्रेम बना रहे, इस मंगलाशा से पुष्ट होती है तो घनानंद में इस अपुष्ट लौकिक प्रेम का मार्गन्तीकरण अलौकिक प्रेम में होते हुए शुक्ल जी ने रेखांकित किया है। वासनात्मक रतिभाव कैसे भावनात्मक भगवद विषयक रति में परिणत हो उठता है। प्रेम की पीर, मौनमधि पुकार और जबांदानी का दावा ऐसी उक्तियाँ कितने स्पर्श के साथ निकलती हैं कि हृदय लिपटा सा चला जाता है।

एकपक्षीय प्रेम के देश प्रेम, त्याग और बलिदान में उदात्त मार्गन्तीकरण की इबारत जो शुक्ल जी ने गुलेरी जी के कथानायक लहना सिंह को लक्ष्य करके लिखी है, यहाँ उल्लेखनीय है - 'इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यंत निपुणता के साथ संपुटित है... उसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है - केवल झाँक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स विवृत्ति नहीं है। सुरुचि के सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नहीं पहुँचता।'(शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण-1942 ई. पृ. 504, 505)

शुक्ल जी ने बहुत स्पष्ट शब्दों में अतृप्त, अपुष्ट प्रेम के विध्वंसक और विसंवादी स्वरूप को सामने रखा है तब उसकी तुलना में प्रेम के उदात्त मार्गन्तीकरण की श्रेष्ठता सिद्ध की है और अपुष्ट प्रेम के इसी

विशद स्वरूप के वर्णन को साहित्य की सफलता और उच्चता से जोड़ा है। हृदय की मुक्तावस्था पर पहुँचा प्राणी ही इस क्षमता को प्राप्त कर पाता है कि सान्ध्यि या सम्पर्क की कामना के बिना भी अपने प्रेम भाव को अक्षुण्ण रख सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि हृदय की मुक्तावस्था तक पहुँचाने का कार्य कविता का है। इसके अभाव में प्रेम और प्रेमी प्रतिवर्तन की राह पकड़ लेते हैं – 'यदि उसमें यह क्षमता न होगी तो प्रतिवर्तन द्वारा घोर मानसिक विप्लव और पतन की आशंका रहेगी; ईर्ष्या आदि बुरे भावों के संचार के लिए रास्ता खुल जाएगा। यहाँ तक कि समय-समय पर क्रोध का दौरा होगा और प्रेम का स्थान वैर ले लेगा।' (शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, लोभ और प्रीति (चिंतामणि), इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, 1950 ई., पृ.95)

प्रेम की नानाविध रूपात्मकता के बीच यह बात बड़े काम की है कि वियोग जनित प्रेम चाहे वह एकपक्षीय हो अथवा उभयपक्षी, दोनों अवस्थाओं में उसमें कर्म में प्रवृत्त करने की अद्भुत शक्ति को शुक्ल जी ने अपनी आलोचना में गहरी स्याही में लिखा है।

रासो काव्यों तथा अन्यान्य वीर गाथाओं में रति भाव की प्रेरणा से प्राणोत्सर्ग को तत्पर वीरों की कर्म प्रवृत्ति का प्रेरक यह एकपक्षीय प्रेम ही है जो सौंदर्य के सब रूपों को अपने में समेटे हुए है। शुक्ल जी लिखते हैं – 'मनुष्य का प्रेम सौंदर्य-वस्तु सौंदर्य, कर्म सौंदर्य, वाक सौंदर्य, भाव सौंदर्य सब-देखना और दिखाना चाहता है। वीरता के पुराने जमाने में युवक योद्धा यह समझकर कि गढ़ी की ऊँची अट्टालिका के गवाक्षों से हमारी प्रेयसी झाँकती होगी, किस सौंदर्य भावनापूर्ण उमंग के साथ रणक्षेत्र में उतरता था।' (पूर्वोक्त, पृ. 89)

प्रेम के ऐसे सौंदर्यपूर्ण और समुज्वल रूप पर जिनका ध्यान नहीं जाता वे तमाशबीन हैं, विषयी हैं, भोगलिप्सु हैं। अपनी अतृप्ति और अप्राप्ति में भी प्रेम कर्म में प्रवृत्ति का मार्ग दिखाता है। इतना ही नहीं ऐसे वियोग में कर्मरत प्रेमी लोकसंग्रह का भाव लेकर जीवन सौंदर्य को निखारता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने वन में सीता के लिए राम के वियोग को इसी श्रेणी में रखते हुए कहा है – 'वन में सीता का वियोग चारपाई पर करवटें बदलने वाला प्रेम नहीं है.... यह राम को निर्जन वनों और पहाड़ों में घुमाने वाला, सेना एकत्र कराने वाला, पृथ्वी का भार उतारने वाला वियोग है।' (शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, गोस्वामी तुलसीदास, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, 1935 ई., पृ.102)

सूर की कविता में जहाँ संयोग, वियोग की संभावित संपूर्ण अंतर्दशाएँ तथा उनके वर्णन की श्रेष्ठतम रीतियों का पूर्ण परिपाक देख शुक्ल जी बेखटके सूरसागर को रससागर कह उठते हैं वहीं तुलसी की कविता में प्रेम की व्यापक परास को वे कवि की पूर्ण भावुकता से जोड़कर देखते हैं और इसे कवि की श्रेष्ठता या श्रेणी निर्धारण का उपयुक्त प्रतिमान मानते हैं – 'जो केवल दांपत्य रति ही में अपनी भावुकता प्रकट कर सकें या वीरोत्साह ही का अच्छा चित्रण कर सकें, वे पूर्ण भावुक नहीं कहे जा सकते.. हिंदी के कवियों में इस प्रकार की सर्वांगपूर्ण भावुकता हमारे गोस्वामी जी में ही है जिसके प्रभाव से रामचरितमानस उत्तरीय भारत की सारी जनता के गले का हार हो रहा है।' (पूर्वोक्त, पृ.93, 94)

यह बात ध्यान देने योग्य है कि उक्त उद्धरण के अनुमोदन में शुक्ल जी मानस में आने वाली विविधतापूर्ण रति को ही सामने रखा है। बालकांड में राम लक्ष्मण के प्रति वात्सल्य मूलक रति, फिर

आचार्य मूलक रति और जनकपुर में दांपत्य मूलक रति के चित्र हैं। आगे चलकर अयोध्या त्याग के करुण दृश्य में प्रेम का विशुद्ध रूप हमारे सामने आता है जिसकी व्यापकता, निर्मलता और पावनता देख शुक्ल जी ने मुग्ध होकर लिखा है – 'तदनंतर पथिक- वेशधारी राम-जानकी के साथ साथ चलकर पाठक ग्रामीण स्त्री-पुरुषों के उस विशुद्ध सात्विक प्रेम का अनुभव करते हैं जिसे हम दांपत्य, वात्सल्य आदि कोई विशेषण नहीं दे सकते, पर जो मनुष्य मात्र में स्वाभाविक है।' (पूर्वोक्त, पृ. 94)

उपर्युक्त प्रकरणों में अपूर्ण, अपुष्ट, अप्राप्त प्रेम को जैसे विरक्ति, निवृत्ति और वैर, ईर्ष्या, क्रोध ऐसी विसंवादी प्रवृतियों से कवियों ने बचाकर सामने रखा तो शुक्ल जी ने इसकी प्रतिष्ठा को रेखांकित करते हुए प्रेम के उस दिव्य स्वरूप का दिग्दर्शन कराया है जो चराचर जगत के जड़ चेतन जीवों को एक सूत्र में बाँधे रखता है, जो त्याग, बलिदान, उत्सर्ग, परोपकार सदृश उदात्त मूल्यों का प्रेरक है जो जीव, जगत, देश, विश्व और ईश्वर के प्रति अनुराग पैदा करता है, जो मानव को निरंतर कर्म सौंदर्य, वाक सौंदर्य, भाव सौंदर्य और जीवन सौंदर्य में प्रवृत्त रखता है।

इतने भावों और रसों के बीच से केवल श्रृंगार और उसके भी केवल वियोग पक्ष को कसौटी बनाकर शुक्ल जी साहित्य के मूल्यांकन की एक अभिनव और विलक्षण राह तैयार की है।

कवियों और लेखकों ने प्रेम के विशद स्वरूप का चित्रण अपनी कृतियों में किया है, किंतु यह चित्रण किस प्रकार किया है? कितनी रीतियों से किया है? मानव जीवन में इसकी व्याप्ति कहाँ तक है? इसके सौंदर्य का साक्षात्कार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपनी प्रेम कसौटी पर करके दिखाया है।

प्रेम की यह कसौटी वाकई धन्य हैं जहाँ लोभ ऐसे गर्हित भाव मातृभूमि के लोभ के रूप में देशप्रेम में बदलकर उदात्त और अनुकरणीय बन जाते हैं। जहाँ उत्साह ऐसे प्रगल्भ भाव रति के प्रेरक बन युवक योद्धाओं को मातृभूमि और अस्मिता की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग को तत्पर करते हैं। जहाँ क्रोध ऐसे विपरीत भावों को अन्याय, अधर्म के विपरीत उत्पन्न होते देख उस क्रोध के सौंदर्य के प्रति मन में प्रेम उमड़ पड़ता है।

प्रेम की ऐसी ही कसौटी को आचार्य प्रवर रामचंद्र शुक्ल ने अपने आलोचना कर्म के केंद्र में रखकर हिंदी के अमूल्य साहित्य का मूल्यांकन किया है। जब तक मानव की संवेदनाओं और संवेगों को जगाने के लिए इस संसार में कविता की आवश्यकता बनी रहेगी तब तक कविता के मूल्यांकन के लिए इस प्रेम कसौटी की उपयोगिता बनी रहेगी।

सम्पर्क : *करौली (राजस्थान)*
मो. 9887202097

डॉ. रवीन्द्र कुमार उपाध्याय

शिक्षकों को अब चाणक्य बनना होगा

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य, आतंकी शक्तियों के विस्तार, भारत के पड़ोसी राष्ट्रों के शत्रु राष्ट्रों में परिवर्तन और भारतीय समाज राजनीति में सत्ता प्राप्ति की तीव्र अनैतिक लालसा में धृष्टतापूर्वक राष्ट्र विरोधी शक्तियों से गठबंधन जैसी अराजक, घातक एवं विस्फोटक स्थितियों को देखते हुए भारत के भविष्य को सुरक्षित व स्वर्णिम बनाने के लिए अब आवश्यक हो गया है कि आज के शिक्षकों को एक राजकीय लोक सेवक शिक्षक के साथ-साथ गुरुत्तर दायित्वों को स्वैच्छिक रूप से ग्रहण करते हुए आचार्य चाणक्य की भूमिका का निर्वाह करना चाहिए और विश्वामित्र, वशिष्ठ, सांदीपन, समर्थ रामदास आदि बनकर राम, कृष्ण, चक्रवर्ती सम्राट चंद्रगुप्त, शिवाजी, आदि का निर्माण अपने-अपने विद्यालयों में करना चाहिए। 'घर -घर से अफ़ज़ल निकलेगा' जैसे राष्ट्र विरोधी व समाज को भयभीत करने वाले नारे लगाने वालों को चेतावनी देना होगी कि जिस घर से अफ़ज़ल निकलेगा, उस घर के सामने शिवाजी खड़ा मिलेगा।

एक ओर जहाँ कोविड संक्रमण रोकने के लिए विद्यालयों में विद्यार्थियों की आवाजाही प्रतिबंधित हुई, तो दूसरी ओर ऑनलाइन शिक्षण कार्य के चलते कुछ सामंती प्रवृत्ति के लाट साहब जैसे अधिकारी शिक्षकों को गैर शैक्षणिक कार्यों में नियोजित करने को अपनी शान, प्रशासन की कुशलता और भारी-भरकम सरकारी वेतन की उपयोगिता समझते हैं। ऐसी परिस्थितियों में शिक्षकों को स्वयं अपनी गरिमा बनानी होगी।

आज के भारतीय समाज का समग्र मूल्यांकन करने पर ज्ञात होता है कि अब राष्ट्र समाज में सत्ता व प्रभुत्व प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा के धृतराष्ट्रीय मोह में अनेक राजनैतिक दल और व्यक्ति अनैतिक व राष्ट्र विरोधी शक्तियों से गठबंधन करने में भी हिचक महसूस नहीं कर रहे हैं।

भारतीय समाज और राष्ट्र की परिस्थितियाँ इतनी विकट एवं भयावह हो गई है कि सत्ता प्राप्ति के लिए अभिव्यक्ति की आजादी व लोकतंत्र की दुहाई के नाम पर खुल्लम-खुल्ला राष्ट्र विरोधी तत्वों को संरक्षण ही नहीं दिया जा रहा है, बल्कि उनके सहयोग से समाज का धार्मिक, जातीय और वर्गीय ध्रुवीकरण कर सत्ता प्राप्ति के कुत्सित षड्यंत्र किए जा रहे हैं। भारत में आज राजनीतिक दलों को सत्ता प्राप्ति कराने के लिए चुनावी कंपनियाँ बाज़ार में आ गई हैं, जो पर्दे के पीछे राजनीतिक दलों से सत्ता की मलाई खाने और शासन की चासनी चाटने की गुप्त सौदेबाज़ी कर के उस राजनीतिक दल को आम चुनाव में जिता देते हैं।

आज भारत में एक ओर ऐसे समाज विरोधी और देशद्रोही वामपंथी विद्वान कालनेमि की तरह साधु का बाना पहन कर भारतीय समाज को धर्म निरपेक्षता, समाजवाद, मानवता, मानवाधिकारों आदि के नाम दिग्भ्रमित कर रहे हैं, तो दूसरी ओर भ्रष्ट राजनेता मारीच की तरह स्वर्ण मृग बनकर स्त्रियों के साथ-साथ युवाओं को रोजगार व सत्ता में भागीदारी का दिवास्वप्न दिखा रहे हैं। ऐसे सत्ता पिपासु राजनीतिज्ञों के लिए राष्ट्र समाज से पहले परिवार का विकास है, वोटबैंक का तुष्टीकरण है, जातिवाद है, क्षेत्रवाद है, भाषावाद है। आज संवैधानिक सभाओं, संस्थाओं, संसद एवं विधान सभाओं में विद्वानों के साथ-साथ राहु जैसे राक्षसी प्रवृत्ति के लोग भी जनप्रतिनिधि का छद्म वेश धारण कर सत्ता का अमृतपान करने के लिए पर्दे के पीछे बैठे हैं। शिक्षकों को यह सब षड्यंत्र अपने विद्यार्थियों को बताने होंगे, ताकि वे विद्यार्थी मुफ्त के लोकलुभावन चुनावी वादों के व्यामोह में दिग्भ्रमित होकर राष्ट्रीय सुरक्षा को ना भूल जाए।

शिक्षकों को भारतवर्ष की वर्तमान देशकाल परिस्थितियों पर विचार मंथन करते हुए अपने वैचारिक अमृत से आने वाले कल की युवा पीढ़ी और विद्यार्थियों को अमृत पान कराना चाहिए, ताकि आज का विद्यार्थी कल के भारत का अमृत पुत्र नागरिक बन कर भारत को विश्व गुरु के पद पर आसीन कर सके। आज शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों में 'वयं अमृतस्य पुत्रः' का भाव जागृत करना ही होगा।

आज भले ही विद्यार्थियों के अभाव में विद्यालय सूने पड़े हो, किंतु मल्टीमीडिया और ऑनलाइन तकनीकी के कारण आज का प्रत्येक विद्यार्थी अपने शिक्षक के संपर्क में है। आज भी विद्यार्थी अपने माता-पिता और अभिभावक के स्थान पर अपने शिक्षकों की सलाह को प्राथमिकता देता है। इसलिए शिक्षकों को चाहिए कि वह अपने शिक्षार्थियों में राष्ट्रीयता, नैतिकता, सामाजिकता और भाईचारे के ऐसे संस्कार विकसित करें कि वर्तमान भारत में जो वैचारिक असहिष्णुता, वर्गभेद, जातिगत भावनाएँ, धार्मिक कट्टरता, क्षेत्रवाद, भाषावाद, ऊँच-नीच की प्रवृतियाँ और राष्ट्र विरोधी नेतृत्व उभर रहा है, उसका प्रतिकार कर के विद्यार्थी भारत में सामाजिक समरसता की सुरसरि प्रवाहित कर सकें।

यह सत्य है कि कानून या डंडे और तलवार के बल पर आम आदमी और आने वाली पीढ़ी में कभी भी राष्ट्रीयता और देश प्रेम की भावना का विकास नहीं किया जा सकता है। इन सब के लिए एक शिक्षक और विद्यालय आवश्यक ही नहीं, बल्कि अपरिहार्य है।

जिस प्रकार आचार्य चाणक्य ने भोग विलास और अय्याशी में डूबे नंद वंश का समूल नाश करने के लिए समाज के पिछड़े व दलित वर्ग की दासी मोरी के पुत्र चंद्रगुप्त मौर्य को नैतिक, शारीरिक एवं बुद्धि बल से परिपक्व कर भारत का चक्रवर्ती सम्राट बना दिया, उसी प्रकार आज भारत की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक पतनकारी परिस्थितियों को देखते हुए और वर्तमान शिक्षकों को आचार्य चाणक्य बन कर उनके विद्यार्थियों में उग्र राष्ट्रीयता के साथ-साथ उच्च स्तर की नैतिकता, समन्वयता, सामाजिकता और दलितों के साथ भाई चारे जैसे संस्कार और विशेषताएँ विकसित करना होगी ताकि वे विद्यार्थी आने वाले कल को बड़े होने पर सुयोग्य एवं राष्ट्रवादी नागरिक बनकर राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भारत के पैरोकार बन सकें और भारत को विश्व गुरु बना सके।

आज शिक्षक को विश्वामित्र बन कर अपनी समस्त गुप्त शक्तियाँ, शक्तिशाली मंत्र, यंत्र और

शक्तियाँ आदि राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम रूपी योग्य एवं समन्वयकारी विद्यार्थियों में हस्तांतरित करनी होंगी, ताकि समाज में आतंक और भय का पर्याय बनी ताड़काओं का वध किया जा सके और संतों व सज्जनों को अकारण सताने वाले खर, दूषण जैसे राक्षसों के साथ-साथ अत्याचार-अनाचार के पर्याय बने रावण जैसे आततताइयों का विनाश किया जा सके।

आज आवश्यकता है कि भारतीय समाज में शिक्षकों द्वारा एक बार फिर अशफाक उल्ला खान, भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, सैनिक हमीद, एपीजे अब्दुल कलाम जैसे देशभक्त नागरिक और चंद्रगुप्त जैसे चक्रवर्ती सम्राट तैयार किए जाए। इन सब के लिए शिक्षकों को भागीरथ बन कर अपने-अपने विद्यालयों और कक्षा कक्षों में राष्ट्रीयता व समन्वय की सुरसरि प्रवाहित करनी होगी।

जिस तरह से देश के बाहर एक-एक करके हमारे पड़ोसी राष्ट्र शत्रु राष्ट्र में परिवर्तित होते जा रहे हैं और देश के भीतर हमारे गुप्त शत्रु लोगों की क्षेत्रीय, जातीय, धार्मिक, भाषायी और मजहबी भावनाएँ एक गुप्त षड्यंत्र के तहत उभार रहे हैं, वह भारत के स्वर्णिम भविष्य के लिए उचित एवं अनुकूल नहीं है, बल्कि देश को तोड़ने की आधारशिला के रूप में तैयार की जा रही है। विडम्बना है कि पूर्वोत्तर सहित कश्मीर, पंजाब, केरल आदि में छिपे आस्तीन के जहरीले साँपों को हम लोकतंत्र के नाम पर जानबूझकर शिव की भाँति गले में लटकाए बैठे हैं। अब समय आ गया है इन जहरीले नागों की समाप्ति के लिए जनमेजय की भाँति नागयज्ञ प्रारम्भ किया जाए, ताकि एक बार फ़िर हस्तिनापुर व उसके शासकों को तक्षक नागों से बचाया जा सके।

लोकतंत्र में मजहबी, जातीय, क्षेत्रीय और भाषायी आधार पर एकमुश्त वोट बैंक का ध्रुवीकरण कर संसद एवं विधान सभा में निर्वाचित होकर बैठे ऐसे राष्ट्रविरोधी तथाकथित नेताओं को जो माँ भारती को गाली देते हैं, भारत माँ को डायन कहते हैं और हमारे ही शत्रु राष्ट्रों से मिलकर देश के विरुद्ध षड्यंत्र करते हैं, इन सभी का कच्चा चिट्ठा शिक्षकों को अब अपने विद्यार्थियों के सामने खोलना होगा। हद तो तब हो जाती है, जब 'भारत तेरे टुकड़े होंगे' जैसे नारे लगाने वाले और लोकतंत्र में अभिव्यक्ति के नाम पर इन्हें बचाने वाले देशद्रोही व भ्रष्टाचारी राजनेता भी भारत की लचर न्याय व्यवस्था का फायदा उठाते हुए बाइज्जत बरी हो जाते हैं और उन्हें गिरफ्तार करने वाले ईमानदार पुलिसकर्मी अधिकारी जहर का घूँट पीकर रह जाते हैं।

आज के भारत की विडंबना है कि पाँच वर्ष की अस्थाई सत्ता के लालच में अपराधी व दंगा-फसाद करने वाले घुसपैठियों का ही हमारे राजनीतिक दल डंके की चोट पर समर्थन करते हैं और समाज विरोधी रोहिंग्या घुसपैठियों को पकड़ कर बाहर करने वाले सुरक्षा बलों और सैनिकों को चुनौती देते हैं। आम आदमी भी तब हताश और निराश हो जाता है, जब माननीय न्यायालय भी इन अर्बन नक्सलियों के कुतर्कों में उलझ कर आतंकियों, उपद्रवियों और घुसपैठियों को मानवाधिकार के नाम पर बाइज्जत बरी कर देता है।

हद तो तब हो जाती है जब मुफ़्त की बिजली, पानी, राशन आदि सामान्य सुविधाओं के लालच में देश की राजधानी के सबसे शिक्षित व संस्कारित लोग भी अर्बन नक्सलियों को वोट देकर भारत माँ की छाती को तार-तार कर देते हैं। आज भारतवर्ष में कोई मजहब के नाम पर तलवारें खींच रहा है, तो कोई

धार्मिक झंडे लगाने के नाम पर समाज का माहौल बिगाड़ रहा है, तो कोई वैचारिकता के नाम पर समाज में वर्ग संघर्ष पैदा कर रहा है और हमारी सरकारें चुपचाप आँखें बंद कर के ऐसे समाज विरोधी लोगों से अनजान बन बैठी है। भारत की ऐसी विकट एवं भयावह स्थिति में आशा की किरण एकमात्र भारतीय शिक्षक ही है।

बांग्लादेशी घुसपैठियों और बर्मा से भागकर आये हुए विदेशी रोहिंग्या मुसलमानों का खुलेआम समर्थन करने वाले तथाकथित राजनेता भूल जाते हैं कि हमारे देश में इन घुसपैठियों से भी बदतर जिंदगी हमारे दलित भाई बहन जी रहे हैं, जिनके लिए दो जून की रोटी भी बमुश्किल संभव होती है। दूसरी ओर अपनी भूख मिटाने के लिए और भारत में मुसलमानों को बदनाम करने के लिए यह बांग्लादेशी घुसपैठिए और रोहिंग्या चोरी, हत्या, दंगा फसाद आदि में बढ़ चढ़कर हिस्सा लेते हैं और भारतीय मुसलमानों को बदनाम करते हैं।

रोहिंग्याओं की राष्ट्र विरोधी व समाज विरोधी करतुतों के बावजूद कुछ राजनीतिक दल इन रोहिंग्याओं का खुलेआम समर्थन करते हैं और इन्हें भारत से बाहर निकालने के सरकारी प्रयासों का विरोध करते हैं। शिक्षकों को आज भारत की वास्तविक परिस्थितियों का आकलन करते हुए देवासुर संग्राम का स्मरण करना चाहिए और स्वयं को देवताओं के गुरु बृहस्पति की श्रेणी में रखना चाहिए। क्योंकि देवासुर संग्राम कभी न खत्म होने वाली ऐसी लड़ाई है, जो हर युग में प्रत्येक देश काल परिस्थितियों में हर जगह चलती रहती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के 70 साल बाद भी भारत की विडंबना है कि हमारे विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में आज भी मैकाले शिक्षा की तर्ज पर विद्यार्थियों में भारतीय संस्कृति और भारतीय सामाजिक परंपराओं के प्रति घृणा और हीन भावना पैदा करने वाले तथ्य पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाए जा रहे हैं। एनसीईआरटी की पुस्तकें इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। ऐसी स्थिति में शिक्षकों को चाहिए कि वे रामकृष्ण परमहंस बनकर अपने विद्यार्थियों शिष्यों को नरेंद्र से विवेकानंद बनाएँ जो विश्व में भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म की अलख जगाए।

भले ही हमारी उग्र राष्ट्रीयता को वैश्विक पटल पर समर्थन नहीं मिले, किंतु भारत की वर्तमान बाहरी और भीतरी स्थितियों को देखते हुए आज अपरिहार्य हो गया है कि भारत के शिक्षक सरकारी पाठ्यक्रम और निर्धारित सरकारी पाठ्य पुस्तकों से परे जा कर भारत के गौरवमयी पौराणिक व ऐतिहासिक महापुरुषों व घटनाओं का स्मरण विद्यार्थियों को कराते हुए उन्हें भविष्य के सशक्त, समर्थ व राष्ट्रवादी नागरिक के रूप में तैयार करें ताकि सशक्त एवं समर्थ विश्वगुरु भारत के द्वारा विश्व शांति की बुनियाद रखी जा सके।

सम्पर्क : *निम्बाहेड़ा, चित्तौड़गढ़ (राज.)*
मो. 9468661278, 8890196388

राजेश भण्डारी बाबू

संजा लोकपर्व आज भी उतना ही लोकप्रिय

संजा लोकपर्व विशेष कर मालवा, गुजरात, राजस्थान, निमाड़ आदि अंचल में श्राद्ध के पंद्रह या सोलह दिनों में मनाया जाता है और उतना ही लोकप्रिय है। ये बात अलग है कुछ लोग आधुनिकता और स्वच्छता के नाम पर गोबर को हाथ नहीं लगाते लेकिन जो लोग अपनी मिट्टी से जुड़े हुए है वे आज भी इस लोकपर्व को बड़े धूम धाम से मनाते है। पहले कच्ची दीवार होती थी जिस पर गोबर से लिपाई अच्छी होती थी, आजकल पक्के घर हो गए। पहले गोबर भी कीटाणुओं से रहित होता था क्योंकि जानवर अच्छी हरी घास खाते थे आजकल दुनिया भर के केमिकल और मल आदि खाने से गोबर भी वैसा नहीं मिल पाता है। पहले हर घर में जानवर होने से गोबर को रोजाना ही उठाना पड़ता था जिससे कोई समस्या नहीं होती थी। आज कल लोगों ने गाय-बैल रखना ही बंद कर दिया है। खेती भी मशीन से होने लगी है और बच्चे भी अब गोबर को हाथ लगाने में सकुचाते हैं। कुँवारी लड़कियाँ इस पर्व को मनाती है। संजा मनाने में बड़ी काकी-भाभी और माँ इन लड़कियों की मदद करती हैं। शहरों में तथाकथित सभ्य समाज को छोड़ दें तो मालवा में करीब-करीब सभी जगह ये त्यौहार बड़ी धूम धाम से मनाया जाता है। रोजाना लड़कियों द्वारा अपने हाथ से दीवार पर गोबर से संजा बनाई जाती है उस पर पत्ते और चमकीले कागज को चिपका कर सजावट की जाती है। लड़किया टोली में इकट्ठा होकर सभी के घर-घर जाकर संजा की आरती करती हैं और प्रसाद का वितरण होता है। जनसंख्या में लड़कियों की संख्या कम होने से भी कुछ कमी आई है। शादी होने के बाद बेटियों को इस पर्व का उद्यापन करने ससुराल से लाया जाता है। लड़के कई जगह बहनों की इस कार्य में मदद करते है जो फूल पत्ती, कागज़ आदि की व्यवस्था कर देते हैं और प्रसाद खाने में भी आगे रहते है। कहते कि संजा की आरती करते वक्त लड़किया संजा माता से अपनी मनोकामना कहतीं जो संजा माता अवश्य पूर्ण करती हैं। संजा पर्व आज कल शहरों में कुछ संस्थाओं द्वारा प्रतियोगिता के रूप में भी करवाया जाता है जो शहरों में संजा का प्रचलन बढ़ाने के लिए है। इसमें भी जमींन से जुड़े लोग ही भाग लेते हैं फिर भी अच्छा प्रयास है जो स्वागतयोग्य है। पूर्णिमा से अमावस्या तक चाँद, सूरज, तारे, कछुआ, संजा माता सहित विभिन्न आकृतियाँ बनाई जाती हैं। अंतिम दिन किला कोट बनाया जाता है। इसमें 16 दिन में बनाए सभी आकृतियों के चित्र बनाए जाते हैं। फिर सभी लोग किलाकोट को देखने घर-घर जाते हैं। संजा के अंतिम दिन बनाए जाने वाले किलाकोट में राजपूत

संस्कृति का पूरा प्रभाव है। मध्यकाल में किलाकोट के भीतर ही पूरा नगर बसा होता था, इसलिए जो किलाकोट बनाए जाते हैं। उनके पूर्ण प्रबंध का संकेत आकृतियों में होता है। किलाकोट में मीरा की गाड़ी बनाना आवश्यक समझा जाता है। माता पार्वती ने भगवान शिव को वर के रूप में प्राप्त करने के लिए खेल-खेल में इस व्रत को प्रतिष्ठापित किया था, तो कभी यह कि कुँवारी कन्याओं को सुयोग्य वर प्राप्त हो एवं तदुपरान्त उसका भविष्य मंगलमय व समृद्धिदायक हो इसलिए सांगानेर की आदर्श कन्या संजा की स्मृति में यह व्रत किया जाता है। संजा के गीतों में लड़कियाँ संजा बाई को छेड़ती भी जैसे संजा तो तू थारा घर जा के थारी माँ मारेगी.... और जैसे संजा बाई का लाडा जी लूगड़ो लाया जाड़ा जी.. एक अपनत्व है लड़कियों और संजा के बीच।

जैसे कोई अपनी बड़ी बहन से मजाक करता है उसी तरह के गीत के माध्यम से लड़कियाँ संजा से मजाक करती है। संजा में लड़कियाँ अपना व्यक्तित्व देखते हुवे गीत गाती जैसे वो खुद से कह रही हो कि 'छोटी सी गाड़ी गुड़कती जाय जिमे बैठा संजा बाई घागरो घमकाता जाए चुड़ैलों चमकाता जाय' इसमें उनकी खुद भी इस प्रकार से ससुराल जाने की इच्छा छुपी होती है। जैसे शर्मीली लड़कियाँ अपने दादाजी से कहती हैं नी हु तो कि जाव सासरे उसी प्रकार गीत में भी 'हु तो नि जाऊ सासरिये' और फिर दादाजी समझाते है कि 'हाथी हाथ बँधायउ, जा वो संजा सासरिये' और अंत में संजा बाई को भोग लगाते हैं और गाते हैं 'संजा तू जीम ले चुठ ले जिमाऊ सारी रात' गाकर संजा को भोजन करवाते हैं। और फिर संजा की आरती करते हैं। संजा इसलिए सौभाग्य का आदर्श प्रतीक ही नहीं, उनके लिए सजीव व्यक्तित्व सदृश्य है। संजा के गीतों का मूल स्वभाव (बालवृत्तियों से युक्त होकर भी) आदर्श के प्रति श्रद्धापूरित है। गीतों में मुखरित कल्याण कामना, माता-पिता, सास-श्वसुर, भाई-भावज, ननद, देवर-देवरानी और अंततः ससुराल में ठाट-बाट से गमन आदि सभी मंगलसूचक हैं।

सम्पर्क : *इंदौर (म.प्र.)*
मो. 9009502734

डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव/डॉ. मनमोहन प्रकाश

साहित्य, शिक्षा एवं शिक्षा नीति

संस्कृति, साहित्य और शिक्षा किसी भी राष्ट्र की आचरण-सभ्यता के निर्माता और नियंता होते हैं। ये राष्ट्रीय चिंतन और व्यवहार में ही आकार पाते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि भाषा, संस्कृति, साहित्य, शिक्षा और राष्ट्र का स्वरूप परस्पर आश्रित भाव से निर्मित और विकसित होता है।

शिक्षा राष्ट्र और शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास का माध्यम है। व्यक्ति के जीवन जीने की कला का महामंत्र है। यह मनुष्य के अंतर्बाह्य को प्रकाशित करती है तथा चिंतन और चरित्र को गढ़ती है। शिक्षा सीखने और सिखाने की कला मात्र नहीं है, अपितु ज्ञान और कौशल के माध्यम से व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाने का सर्वश्रेष्ठ साधन भी है। यह राष्ट्र, समाज और व्यक्ति के विकास की दशा और दिशा भी निर्धारित करती है।

शिक्षा एक जीवंत प्रक्रिया है, जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का परिष्कार करती हुई उसके कल्याण के विकास का आधार बनती है। शिक्षा के अंतर्गत कलात्मक और सृजनात्मक चिंतन की ऐसी समस्त क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं, जो मानव को उन्नत बनाती है, उसे पूर्णता की ओर अग्रसर करती है।

राष्ट्र की आवश्यकता, सामाजिक विश्वास, चिंतन, मनन, आस्था, मान्यताओं और व्यवहारों का समवेत स्वरूप शिक्षा नीति का आधार होता है। जिस राष्ट्र की शिक्षा नीति जितनी सशक्त और सुविचारित होती है, उस राष्ट्र की विकास गति उतनी ही तीव्र होती है। 2020 के पहले हम जिस शिक्षा नीति के माध्यम से देश और शिक्षार्थी के विकास का प्रयत्न कर रहे थे वह शिक्षा नीति 1986 में तत्कालीन सरकार द्वारा बनाई गई थी। एक लंबे अंतराल से इसमें परिशोधन न होने के कारण यह शिक्षा नीति अनेक प्रश्नों को जन्म दे रही थी, साथ ही यह महसूस किया जाने लगा था कि शिक्षा नीति राष्ट्र के विकास का सक्षम आधार खो चुकी है। हमारी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ नहीं है। दायित्ववान देशभक्त नागरिकों का निर्माण भी नहीं कर पा रही थी। यह कौशल युक्त आत्मनिर्भरता प्रदान करने में भी सफल नहीं थी। अत: देश के शिक्षार्थी उच्च अध्ययन हेतु विदेशों की ओर पलायन करने लगे थे। इतना ही नहीं राष्ट्र और समाज में निरंतर स्वार्थ, नैतिक पतन, भोग और भ्रष्टाचार तथा महत्वाकांक्षा प्रबलतम होती जा रही थी। असुरक्षा, बेरोजगारी, असहिष्णुता तथा राष्ट्र विरोधी स्वरों पर नियंत्रण भी कठिन हो गया था। कहने का आशय यह नहीं है कि उस शिक्षा नीति ने हमें कुछ दिया ही नहीं। हमने तकनीकी और

वैज्ञानिक क्षेत्र में जो प्रगति की है, वह इसी शिक्षा नीति की देन है; पर यह भी उतना ही सही है कि पिछले चार दशकों में देश को प्रगति और विकास के जिन लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहिए था, हम उससे दूर ही रहे। जबकि हमारे साथ स्वतंत्र हुए राष्ट्र हम से आगे निकलते जा रहे हैं। इसी कारण ऐसी विचारधारा प्रबल होती जा रही थी कि हमारी शिक्षा नीति अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो पा रही है, अपनी प्रासंगिकता खोती जा रही है।

यह सत्य है कि समय के साथ-साथ आवश्यकता और प्राथमिकताएँ बदल जाती हैं। लक्ष्य भी बदल जाते हैं। विकास का सिद्धांत भी समय अनुकूल परिवर्तन की माँग करता है। इन्हीं बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए हमारी वर्तमान केंद्र सरकार ने शिक्षा नीति 2020 को लागू किया है। इस शिक्षानीति में निम्न महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों को रेखांकित किया गया है :

- नौकरी चाहने वालों की अपेक्षा नौकरी सर्जकों को प्रोत्साहन।
- स्टे-इन-इंडिया और स्टडी इन इंडिया को प्रोत्साहित करना।
- विदेशों में भारतीय उपाधियों को मूल्यवान बनाना।
- विदेशी छात्रों को भारत में अध्ययन हेतु आकर्षित करना।
- भारत को वैश्विक ज्ञान की शक्ति बनाना।
- शोध, कौशल विकास और नवाचारों को प्रोत्साहन।
- शिक्षा में संस्कृति और संस्कारों का समावेश।
- भारतीय भाषाओं में सर्वश्रेष्ठ अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराना।

शिक्षा नीति 2020 में पहली बार साहित्य को विशेष महत्त्व दिया गया है। वैसे भी किसी भी राष्ट्र और मनुष्य के जीवन में साहित्य का अत्यधिक महत्त्व होता है।

साहित्य भावात्मक ऊर्जा, गहन चिंतन, मनन और आत्म साक्षात्कार का परिणाम होता है। वहाँ प्रदर्शन से परे अंतश्चेतना, प्रेम, समरसता और सत्य का साक्षात्कार होता है। इसीलिए साहित्य समरसता और सांस्कृतिक बोध का संवाहक होता है। उसमें हमारी परंपराएँ, सामाजिक विश्वास, जीवन मूल्य और अनुभव रूपायित होते हैं। भारतीय साहित्य हमेशा विश्व कल्याण की भावना पर आधारित रहा है और प्रकृति के सभी घटकों तथा समाज के सभी वर्गों के कल्याण की कामना करता है। साहित्य से मनुष्य का जीवन सहज, सरल और मजबूत होता है, विकार दूर होते हैं। प्राचीन और वर्तमान घटनाओं, समाधानों, उपदेशों आदि की जानकारी प्राप्त होती है। घर से लेकर समाज तक, व्यक्ति चरित्र से राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण तक, मनोरंजन से ज्ञान की उपलब्धि तक, संस्कार से संस्कृति तक की समस्याओं समाधान साहित्य में उपलब्ध हैं।

डॉ. राधाकृष्णन ने कहा था कि साहित्य का कर्तव्य केवल ज्ञान देना नहीं है अपितु एक वातावरण देना है। वस्तुत: भारत को आज एक ऐसे वातावरण की आवश्यकता है जो अपने-पराए, सहिष्णु-असहिष्णु, जाति, धर्म, भाषा, लिंग आदि के भेदभाव से ऊपर उठकर राष्ट्र को प्रगति पथ पर अग्रसर करे।

बहुत ही दुख की बात है कि विगत वर्षों में हमने अपनी संस्कृति, भाषा और साहित्य की घोर उपेक्षा की है; और इसी का परिणाम हम भोग रहे हैं-भावात्मक दूरी, अलगाव और विखंडन के रूप में।

पाश्चात्य सभ्यता के मोहजाल में फँसकर हम अपनी संस्कृति की शिवधारा से विच्छिन्न होते जा रहे हैं। वैयक्तिकता और व्यावसायिकता की निरंतर वृद्धि, रागात्मक संवेदनाओं का अवशोषण तथा आसुरी वृत्तियों का निरंतर विस्तार इसी के दुष्परिणाम हैं। आज हमारा प्रत्येक कार्य लाभ तक सीमित हो गया है। अविश्वास और संशय में जीते हुए हम प्रतिपल असुरक्षा और तनाव से जूझ रहे हैं। कहीं पंथ के झगड़े हैं, कहीं राजनीतिक स्वार्थ, तो कहीं आर्थिक लाभ और भोग का आकर्षण। इन सबके बीच हमारी संस्कृति, संस्कार और भाषा क्षीण होती जा रही है, हमारे जीवन मूल्य बिखर रहे हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्र को जिस बीज भाव और मानवता को भावात्मक स्तर पर शक्ति की आवश्यकता है, वह सब सुचिंतित रूप में हमारी शिक्षा नीति 2020 में सम्मिलित है। साहित्य और भाषा की शक्ति पर विशेष बल देते हुए शिक्षा नीति 2020 में महत्वपूर्ण नवीन प्रावधान किए गए हैं-

- बहुभाषिक अध्ययन अध्यापन पर बल।
- कहानी आधारित शिक्षण पद्धति को प्रत्येक विषय में एक मानक पद्धति के रूप में मान्यता।
- त्रिभाषा सूत्र के साथ- साथ, एक भाषा को साहित्य के स्तर पर अध्ययन के लिए प्रोत्साहन।
- पाली, फारसी, प्राकृत आदि के साहित्य को संरक्षित करने की व्यवस्था। इस प्रक्रिया के अंतर्गत राष्ट्रीय पाली संस्थान, फारसी और प्राकृत संस्थान तथा भारतीय अनुवाद संस्थान की स्थापना का प्रावधान किया गया है।
- साहित्य आधारित फिल्म, थिएटर, कथा वाचन, कथ्य, संगीत आदि को प्रोत्साहन तथा विभिन्न प्रासंगिक विषय एवं वास्तविक जीवन के अनुभव आदि को साथ-साथ सिखाए जाने की व्यवस्था सुनिश्चित करने के निर्देश हैं।
- नई शिक्षा नीति में साहित्य चोरी तथा कुत्सित साहित्य का बहिष्कार करने की योजना भी है। इससे न केवल अच्छा साहित्य पठन-पाठन के लिए उपलब्ध होगा अपितु वास्तविक लेखकों को प्रोत्साहन और सम्मान भी मिल सकेगा।
- वेब आधारित पोर्टल /प्लेटफार्म /विकिपडिया आदि विकसित करने की योजना है - जिससे भारतीय भाषाओं के साहित्य की विभिन्न विधाओं जैसे कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक, लोक गायन आदि की सामग्री सहज रूप से सभी के लिए उपलब्ध हो सकेगी।
- भारतीय भाषाओं में जीवंत कविताओं, उपन्यास, पाठ्य पुस्तक, कथेतर साहित्य आदि का उच्च स्तरीय निर्माण सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर उत्कृष्ट पद्य एवं गद्य में पुरस्कार स्थापित करने की योजना है।
- साहित्य की प्रगति हेतु उन सभी संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, जिनमें भाषा एवं साहित्य का शास्त्रीय पठन-पाठन किया जा रहा है, को अधिक विस्तारित करने का प्रावधान रखा गया है।
- शास्त्रीय, आदिवासी तथा लुप्तप्राय साहित्य के अभिलेखों के संग्रह, संरक्षण, अनुवाद एवं अध्ययन को प्रोत्साहित करने के विभिन्न प्रयास निर्देशित किए गए हैं।
- साहित्य के उत्थान एवं छात्रों की अभिरुचि को विकसित करने के लिए शिक्षा नीति 2020 में उत्कृष्ट शिक्षकों की नियुक्ति की स्पष्ट योजना है।

- नई शिक्षा नीति में सरल और सार्थक शब्द भंडार पर विशेष बल दिया गया है।
- 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' की संकल्पना के अंतर्गत भारत के 100 श्रेष्ठ पर्यटन स्थलों से संबंधित स्वदेशी साहित्य और ज्ञान आदि के अध्ययन के लिए छात्र-छत्राओं को विशेष प्रोत्साहन का प्रावधान है।
- शिक्षा नीति 2020 में इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ ट्रांसलेशन एंड इंटरप्रिटेशन (आई आई टी आई) की स्थापना का उल्लेख है। इस संस्थान के अंतर्गत भारतीय भाषाओं एवं अन्य महत्त्वपूर्ण भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाले लिखित एवं मौखिक साहित्य और सामग्री उपलब्ध कराने का प्रावधान है।
- संस्कृत के साहित्यिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक महत्त्व को समझते हुए इसके वृहद और महत्त्वपूर्ण योगदान तथा विभिन्न विधाओं से सभी को परिचित कराने की योजना है। इसे संस्कृत पाठ शालाओं, विश्वविद्यालयों तक सीमित न रखते हुए मुख्यधारा में लाने का प्रावधान रखा गया है। इसके अंतर्गत संपूर्ण देश में विश्वविद्यालयों और संस्थानों को अधिक विस्तार देने की योजना है।
- शिक्षा नीति 2020 के नीति निर्धारकों का मानना है कि भारतीय भाषाओं की पांडुलिपियों के संग्रह, संरक्षण तथा अनुवाद पर पूर्व शिक्षा नीति में आवश्यक ध्यान नहीं दिया गया था। इसी तथ्य को संज्ञान में लेते हुए उन्होंने न सिर्फ इस विषय पर ध्यान दिया अपितु इसे मजबूती से विस्तार देने के प्रयास पर भी बल दिया है।
- भारतीय भाषाओं, तुलनात्मक साहित्य, सृजनात्मक लेखन आदि से जुड़े विभागों और कार्यक्रमों को देशभर में न सिर्फ शुरू किया जाएगा अपितु और विकसित करने पर बल देने की योजना है।
- किसी भी भाषा और साहित्य की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि वे प्रासंगिक और जीवंत बने रहें। यह तभी संभव होता है जब भाषाओं में उच्च गुणवत्तापूर्ण अधिगम्य और प्रिंट सामग्री का सतत् प्रवाह बना रहे। उस विषय और भाषा की पाठ्य पुस्तकें, अभ्यास पुस्तकें, वीडियो, नाटक, कविताएँ, उपन्यास, पत्र पत्रिकाएँ आदि साहित्य की दृष्टि से उच्च कोटि की हो, साथ ही इन भाषाओं के शब्द भंडारों को अधिकारिक रूप में निरंतर अद्यतन किया जाता रहे। नई शिक्षा नीति में यह सारी व्यवस्थाएँ व्यापक रूप से उल्लिखित हैं।
- साहित्य केवल भाषा तक ही सीमित नहीं है। इसकी भूमिका वर्तमान में और भी महत्त्वपूर्ण हो गई है क्योंकि अब देश में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा और विधि जैसे विषयों को हिंदी या क्षेत्रीय भाषा में पढ़ाए जाने की योजना और प्रोत्साहन को शिक्षा नीति में शामिल किया गया है।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि शिक्षा नीति 2020 में साहित्य, भाषा और संस्कृति के उत्थान के लिए जो प्रयत्न किए गए हैं, उनसे निश्चित ही हमें एक नई प्रेरणा और शक्ति प्राप्त होगी और ऐसे जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा हो सकेगी जो राष्ट्रीय जीवन को अनुप्राणित करते हुए नई चेतना प्रस्फुटित करेंगे। हमें विश्वास है कि हमारी सरकार का नई शिक्षा नीति का यह सारस्वत प्रयास निश्चित ही भारतीय साहित्य, भाषा, शिक्षा और संस्कृति को नया संबल देते हुए राष्ट्र के पुनरुत्थान में सहायक होगा।

सम्पर्क : *इंदौर (म.प्र.)*

अंजली खेर

हिन्दी को पटरानी बनाएँगे

अभी हाल कुछ दिन पहले कहीं चंद पंक्तियाँ मैंने पढ़ीं। आशा ही नहीं, विश्वास है कि मेरी तरह ही ये पंक्तियाँ आपके भी हृदय को छू लेंगी- ''जिसमें हैं मैंने ख्वाब बुने, जिससे जुड़ी मेरी हर आशा है,/ जिससे है मुझे पहचान मिली, वो मेरी हिंदी भाषा है।''

नि:संदेह देश की माटी की खुशबू से लेकर पत्तों की सरसराहट तक, माँ की लोरियों से लेकर पापा की डाँट तक, सपनों की रंगीली दुनिया से लेकर यारों की टोलियों संग मस्ती तक कभी मूक अभिव्यक्ति तो कभी भावों के सशक्त संप्रेषण का एकमात्र सटीक माध्यम ''हिंदी भाषा'' ही है।

हम सभी जानते हैं कि हमारी मातृभाषा ''हिंदी'' में संबंधों के मिश्री घोलते संबोधन, सामाजिक संबंधों का लालित्य, प्रेमभाव और अपनापन है। हमारे भारतवर्ष को एकसूत्र में बाँधे रखने की जो विलक्षण सामर्थ्य है, वहीं हमारी प्राचीन संस्कृति, संस्कारों की द्योतक है। यह सच भी है- 'हमारी एकता, अखंडता ही/ हमारे देश की पहचान है/ हिंदुस्तानी हैं हम और/ हिंदी ही हमारी शान हैं।'

कोस-कोस पर पानी बदले, चार कोस पर वाणी, विडंबना का विषय है कि ऐसे भाषागत वैविध्यता वाले हमारे भारतदेश में देश के कोने-कोने को एकसूत्र में बाँधने वाली हमारी हिंदी भाषा को आज भी उसका अधिकार नहीं दिया गया, अंग्रेजी के बनिस्बत हिंदी भाषा को आज भी दोयम दर्जे का ही माना जाता है, वरना आज क्यों सामान्य बोलचाल से लेकर सोशल मीडिया पर चैट्स और अंग्रेजी मीड़ियम की पढ़ाई से लेकर नामचीनी कंपनियों में साक्षात्कार तक अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी बोलने वालों का ही बोलबाला रहता... इस संबंध में वाल्टर चेनिंग ने सटीक बात कही- 'किसी विदेशी भाषा का किसी स्वतंत्र राष्ट्र के कामकाज और शिक्षा की भाषा होना सांस्कृतिक गुलामी है।'

सोशल मीडिया पर अंग्रेजी में चैट करने वाले को हिंदी में उत्तर देने पर बच्चे जब नाराज़गी जताया करते तो मैं उन्हें हमेशा समझाती कि क्यो मेरे भेजे मैसेज पढ़ने वाले को हिंदी समझ नहीं आती... या कि उसको हिंदी का अक्षर ज्ञान नहीं... सामने वाला लाख अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करे, पर यदि हमें अपने भारत देश, हमारी मातृभूमि और अपनी मातृभाषा के प्रति ज़रा भी सम्मानभाव हैं तो हमें चाहिए कि हम बोलने, लिखने में हिंदी भाषा का ही प्रयोग करें। हमें अपनी मातृभाषा ''हिंदी'' में बात करने में गर्व महसूस होना चाहिए न कि हीन भावना। पर विडंबना का विषय हैं कि आज हमारे समाज में हिंदी का प्रयोग करने वाले को हेय दृष्टि से ही देखा जाता है।

नि:संदेह हमने अंग्रेजी साम्राज्य की गुलामी की बादशाहत को बाह्य रूप से नष्ट प्राय कर दिया पर मन-मस्तिष्क आज भी उनकी गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ है। हम भारतीयों की कूपमंडूक

मानसिकता को मैकाले ने बहुत पहले ही बखूबी समझ लिया था और भारत से अपना डेरा-डमका हटाने के बाद भी सदियों तक भारत पर राज को बरकरार रखने के लिए उसने एक षड्यंत्र बुना। दिनांक 03 जुलाई 1947 को ''द इंडियन इंडिपेंडेंस एक्ट'' जारी कर एक ''वेस्टर्न ऑर्बिट'' तैयार किया। भारत ने अंग्रेजों से सशर्त आज़ादी स्वीकार करते हुए ''ट्रांसफर ऑफ पॉवर एग्रीमेंट'' को सहर्ष स्वीकार किया और अंग्रेजों के बनाये हुए प्रशासनिक ढाँचे में किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन न करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से उनके ही इशारों पर चलते रहना सहर्ष स्वीकार कर लिया। यहाँ तक कि स्वतंत्र भारत का संविधान लागू होते समय संविधान सभा में 85 प्रतिशत से भी अधिक नेताओं का चयन अंग्रेजों ने ही किया। ये वे नेता थे, जिनका धर्म अंग्रेजों की चाटुकारिता एवं उनका ही अंधानुकरण करना था।

पूर्व मंत्रणा कर अंग्रेजों ने अपने टुकड़ों पर पलने वाले उन नेताओं को पहले ही यह संज्ञान दे दिया था कि आज़ादी उनकी शर्तों के तहत ही दी जाएगी, साथ ही भारत की शिक्षा व्यवस्था अंग्रेजी भाषा में सुनिश्चित की जाएगी, अन्य भारतीयों को दिलासा दिलाने के लिए एक तथ्य भी जारी किया गया कि आजादी के कुछ दशकों के पश्चात हिंदी को राष्ट्र भाषा का दर्जा देकर सम्मानित किया जाएगा किंतु यह कार्य तभी संभव होगा जब भारत के सभी राज्य हिंदी का समर्थन करेंगे।

अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति को यही विराम नहीं दिया, जहाँ एक ओर भारत को आजादी के साथ हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान करने का लालच दिखाया वहीं दूसरी ओर अपने समर्थक भारतीय नेताओं की मदद से दक्षिण भारत में हिंदी के प्रति इतना विष घोल दिया कि वहाँ से हिंदी को राष्ट्रंभाषा के लिए समर्थन मिलने की संभावना समाप्तषप्राय हो चली थी।

1853 में मैकाले ने अपने मंतव्यों को शाब्दिक रूप से व्यक्त करते हुए कहा कि ''भारत की हिंदी भाषा भारत की रीढ़ की हड्डी है। भारत को छिन्न-भिन्न करने के लिए भारत से हिंदी का नामोनिशां मिटाना होगा। फिर मैकाले ने भारत की संपूर्ण शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी अनिवार्य कर सैकड़ों दशकों के लिए भारत को अंग्रेजों की दासता स्वीकार करने को मजबूर कर दिया।

हालाँकि आज वर्तमान समय में अपनी मातृभाषा हिंदी के प्रति देश-समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं, विभिन्न सरकारी कार्यालयों में हिंदी में कार्य करने वालों के लिए विविध पुरस्कार योजनाएँ ही निर्धारित की गई हैं, कार्यालयीन पत्र व्यवहार और यहाँ तक कि उपयोग में लाये जाने वाले कंप्यू टरों में ही हिंदी में कार्य करने हेतु मंगल फांट का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया है। ''जब हिंदी दिलों को जोड़ने वाली हैं भाषा, फिर संवाद में क्यों प्रयोग हो विदेशी भाषा।''

अब आगे बात करें तो कई बार लोग ये मानते हैं कि बेशक हम सोच, विचार और मनन हिंदी में हैं तो अपने मनोभावों को हिंदी भाषा में व्यक्त करना हमारे लिए बहुत आसान होता है, पर क्या करें जब साइंस यानी विज्ञान विषय के साथ ही आज उच्चतम शिक्षा संबंधी पाठ्यपुस्तकें अंग्रेजी में ही उपलब्ध हैं क्योंकि हिंदी भाषा वैज्ञानिक भाषा नहीं... इस तथ्य को कुतर्क साबित कर रविशंकर शुक्ल जी लिखते हैं -''देवनागरी ध्वनिशास्त्रभ की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है।'' इसके साथ ही आज देश के कई युवा विज्ञान विषय संबंधी पुस्तकों को हिंदी में उपलब्ध कराने हेतु प्रयासरत हैं। वह दिन दूर नहीं, जब किसी भी विषय के अध्ययन के लिए अंग्रेजी भाषा पर हमारी निर्भरता समाप्तप्राय हो जाएगी।

तर्क यह नहीं कि हिंदी भाषा की अंग्रेजी भाषा से किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा है, बेशक व्यक्ति को जितनी ज्यादा भाषाओं का ज्ञान होता है वह उतना ही अधिक ज्ञानवान, रचनात्मक और क्रियात्मक होता है। सीखने, ज्ञानोपार्जन की क्षमताओं से लबरेज़ होता है, बात मात्र अंग्रेजी से तुलनात्मक रूप से हिंदी भाषी को कमतर आँकने की हमारी हीन मानसिकता की है।

विस्तृत विवेचन करें तो पाएँगे कि आज़ स्थितियाँ बदलती दृष्टिगत हो रही है। पहले भारत के दक्षिण क्षेत्र में हिंदी की अवमानना की जाती थी, किंतु आज के देश के कोने-कोने में हिंदी भाषियों की बहुलता देखते ही बनती हैं। साथ ही इसके आज विदेशों में भी टेलीविजन पर हिंदी धारावाहिकों सहित रेडियो पर रोज़ाना हिंदी कार्यक्रमों का न केवल प्रसारण होता है वरन् दर्शकों व श्रोताओं के द्वारा हिंदी कार्यक्रम बहुतायत से पसंद भी किये जा रहे हैं।

हिंदी भाषा को उनके हिस्से का सम्मान दिलाने और हिंदी शिक्षा के प्रति चैतन्यता का अलख जगाने के लिए कई योजनाएँ भी क्रियान्वित की जा रही हैं, मसलन विभिन्न सरकारी संस्थाओं में हिंदी अधिकारी की भर्ती सुनिश्चित की जाना, हिंदी में उच्च शिक्षा प्राप्त अभ्यार्थियों का दुभाषिये के रूप में नियुक्ति की जाना आदि।

आज हम सभी देख रहे हैं कि भारत के विदेशों से दोस्ताना संबंध बनने की गति में तीव्रता दृष्टिगत होती है तो निश्चित रूप से दोनों देशों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध निबाहने के लिए विचारों के आदान-प्रदान में दुभाषियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो चली है।

साथ ही गौरतलब है कि कोई भी भाषा ''लिंग्वाध फ्रांका'' की श्रेणी में तभी आती है जिस देश की सैन्य, वित्तीय और तकनीकि रूप सशक्त व सुदृढ़ हो। इस बाबत् ज्ञातव्य हो कि आज न केवल हमारा देश हर प्रकार से नित नये सफलता के आयामों को छू रहा है, वरन् विदेशों से सौहार्दपूर्ण संबंधों की आमद को हम सभी महसूस कर रहे हैं। साथ ही एक अन्य उपलब्धि यह भी रही है कि यदि हमारा देश कुछ विनियोजन करे तो संयुक्त राष्ट्रहिंदी को सम्मान का दर्जा देने का विचार कर रहा है। यदि यह संभव हुआ तो संयुक्त राष्ट्र में हिंदी भाषा में व्याख्यान, शोध एवं भाषण आदि का प्रावधान किया जायेगा। इससे न केवल हिंदी को एक विशिष्ट ओहदा प्राप्त होगा वरन् दुभाषिए के रूप में रोजगार की संभावनाएँ भी प्रबल होती चली जायेंगी और हमारी हिंदी भाषा ही राजरानी बन ''लिंग्वाग फ्रांका'' बन गर्व से इतरायेगी।

नि:संदेह आज ये बच्चे कल देश के भविष्य के निर्माता होंगे, उनकी बेहतरीन परवरिश होगी बहरहाल आज शोधों से ज्ञात हो चला है कि बच्चे के बोलचाल की भाषा में ही प्राथमिक शिक्षा हो, तो उसका मानसिक विकास तीव्रतम गति से होता है। इसी के चलते नई जारी शिक्षा नीति के तहत यह निर्णय लिया गया है कि प्रायमरी की कक्षा 5 तक की शिक्षा हमारी मातृभाषा हिंदी में ही तय कर दी गई है। आगे की कक्षाओं में उसके संपूर्ण विकास के लिए अन्य भाषाओं को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाएगा।

इस प्रकार यह बात तो तय है कि वह दिन दूर नहीं जब हमारी मातृभाषा हिंदी हिंदुस्तान ही नहीं वरन् संपूर्ण धरा पर अपनी विलग पहचान बना, पटरानी बन अपना साम्राज्य स्थापित करने में कामयाब होगी।

जय हिंद, जय हिंदुस्तापन जय मातृभाषा हिंदी

सम्पर्क : *भोपाल (म प्र)*
मो. 9425810540

डॉ. रामकिशोर उपाध्याय

भारतीय संस्कृति का वैश्विक रूप : संसार को जोड़ने में सक्षम

स्वराज की भाँति स्वसंस्कृति का भी बड़ा महत्त्व और गौरव होता है। स्वसंस्कृति के बिना स्वराज टिकता नहीं है। इस वर्ष हम स्वाधीनता का पचहत्तरवाँ वर्ष अमृत महोत्सव के रूप में मना रहे हैं। स्वाधीनता में 'स्व' अत्यंत महत्त्वपूर्ण शब्द है। अपना राज, अपना तंत्र, अपना देश सब कुछ अपना। देश स्वयं के अधीन तो आ गया किन्तु एक बात जिसकी अनदेखी हो रही है वह है स्वसंस्कृति। प्रत्येक देश की पहचान उसकी अपनी संस्कृति से होती है। जब हम अंग्रेज़ी संस्कृति की बात करते हैं तो हमारे मन में इंग्लैंड देश के रहन-सहन, भाषा-व्यवहार, नैतिक और सामाजिक मूल्य आदि सब की झाँकी उभर आती है। ठीक ऐसे ही जापान,चीन आदि देशों की अपनी-अपनी सांस्कृतिक पहचान है। अन्य प्राचीन देशों की भाँति भारत की भी अपनी एक संस्कृति है। वह विशिष्ट, प्राचीन, महान एवं सर्वसमावेशी है; इतना ही नहीं एक समय में वह सम्पूर्ण विश्व में अत्यंत सम्मान के साथ स्वीकारी गई है। सदियों तक संसार के विभिन्न देशों का मार्ग प्रशस्त करने वाली हमारी भारतीय संस्कृति को आज अपने ही देश में उतना सम्मान नहीं मिल पा रहा जितना कि स्वाधीनता के बाद अपेक्षित था। भारतीय संस्कृति को हिन्दू संस्कृति के नाम से भी जाना जाता है किन्तु जब कुछ लोगों ने हिन्दू संस्कृति को गैर इस्लामिक धर्म से जोड़कर उसके सामानांतर मुस्लिम संस्कृति शब्द गढ़ना आरंभ कर दिया तब से प्राय: हिन्दू संस्कृति के स्थान पर इसे भारतीय संस्कृति ही कहा जाने लगा। जैसे भारत देश है और निवासियों की जाति भारतीय, ठीक वैसे ही हिन्दुस्थान के निवासियों की जाति हिन्दू हुई।

निस्संदेह भारत की पहचान और प्राण तो भारतीय संस्कृति ही है किन्तु कुछ लोग मत-मजहब और विचारधारा से प्रेरित होकर भारतीय संस्कृति को दूषित करने का प्रयास करने लगते हैं। किसी भी देश की संस्कृति अनेक वर्ष से प्रवाहित सतत धारा होती है। किसी मत, पंथ, मजहब के आधार पर उसे संकरित (मिलावट द्वारा नया रूप देना) नहीं किया जाना चाहिए। जो तत्व संस्कृति से मेल खाते हैं वे सहज रूप में ही उसके द्वरा स्वीकार कर लिए जाते हैं। जैसे बड़ी नदी में अनेक छोटी-छोटी नदियाँ मिल जाती हैं किन्तु मूल प्रवाह और पहचान बड़ी नदी की ही रहती है। इसी प्रकार एक ही संस्कृति के आँचल में अनेक विचारधाराएँ और मत-मजहब (भले ही वे आपस में विरोधी से जान पड़ते हों) बड़े आराम से निभ सकते हैं। एक ही संस्कृति के लोग मत-पंथ की भिन्नता के बाद भी एक राष्ट्र के रूप में रह सकते हैं किन्तु एक

ही धर्म के मानने वाले भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक पहचान वालों का एकसाथ रहना बड़ा कठिन है। उनके विखंडित होने की संभावना सदैव ही बनी रहती है। कुछ ईसाई और इस्लामिक देशों में ऐसा हुआ भी है। अत: किसी भी राष्ट्र की एकता अखंडता के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात उसकी संस्कृति है। यह राष्ट्र की पहचान के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता के लिए भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

संस्कृति का मूल आधार मत-पंथ-मजहब नहीं होते, उसमें सामाजिक मूल्य और पूर्वजों की परम्पराओं का भी बड़ा योगदान होता है। आचार्य किशोरी दास बाजपेयी जी का कथन है- 'भारत के बौद्धों की भारतीय संस्कृति है; जापान के बौद्धों की जापानी संस्कृति। चीन के बौद्ध चीनी संस्कृति के हैं।' इस वाक्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि संसार के विभिन्न देशों में रहने वाले बौद्धों के इष्ट एक हैं, धर्म एक है, प्रेरक उपदेश और ग्रन्थ भी समान ही हैं किन्तु सबकी संस्कृति भिन्न-भिन्न है। हम जानते हैं कि चीन में रहने वाले मुसलमानों की संस्कृति अरब के मुसलमानों से भिन्न है। चीन के मुसलमानों के नाम भी अरबी भाषा में न होकर चीनी भाषा में ही होते हैं। अत: अरब, ईरान के मुसलमानों की संस्कृति अलग है और चीन की अलग। एक इस्लामिक संस्कृति जैसी कोई चीज नहीं है। हम जिसे इस्लामिक संस्कृति कहना चाहते हैं वह वास्तव में अरब-ईरान की संस्कृति है न कि संसार के भिन्न-भिन्न देशों में रहने वाले इस्लाम के अनुयायी मुसलमानों की।

यह तो हुई संस्कृति के सम्बन्ध वह जानकारी जिससे कि भारतीय जन मानस यह समझ सके कि धर्म और संस्कृति दो भिन्न-भिन्न बातें हैं। चूँकि हमारा वर्ण्य विषय भारतीय संस्कृति का वैश्विक स्वरूप है अत: हम विभिन्न विद्वानों द्वारा किये गए शोध और संकलित सूचनाओं के सहारे यह जानने का प्रयास करेगें कि हमारी संस्कृति का विस्तार कहाँ-कहाँ तक तक था।

डॉ. शांति देवबाला ने अपने एक आलेख 'बाली द्वीप जो आज भी हिन्दू है' में इंडोनेशिया के बाली द्वीप में भारतीय संस्कृति के संचरण का सप्रमाण वर्णन किया है। इस आलेख में बताया गया है कि बाली द्वीप के दूरदर्शन पर कार्यक्रमों का आरंभ प्राय: गायत्री मन्त्र से होता है। इण्डोनेशियाई भाषा में अनूदित वेद और उपनिषद वहाँ बहुत ही श्रद्धा के साथ पढ़े जाते हैं। बाली द्वीप में हिन्दू बहुसंख्यक हैं और उनके धार्मिक अनुष्ठान की भाषा संस्कृत है। वहाँ 615 ईस्वी में राजा उग्रसेन का शासन था। इस आलेख में एक विशेष बात उद्धृत की गई है वह यह कि बाली में आज जो धार्मिक स्वरूप है जिसमें कि शैव, बौद्ध और इंडोनेशिया के कबीलों की मान्यताओं का संगम देखने को मिलता है उसका आधार हिन्दू संस्कृति है। 'वहाँ शिव बुद्ध हो गए हैं और बुद्ध शिव। कहीं-कहीं दोनों साथ-साथ प्रतिष्ठित हैं तो कहीं आधी मूर्ती शिव की और आधी बुद्ध की है।'

भिक्षु चमन लाल जी द्वारा लिखित पुस्तक 'इण्डिया : द मदर ऑफ़ आल अस' में इस बात के प्रमाण दिए गए हैं कि अमेरिकी महाद्वीपों में भी कई सदियों तक भारतीय संस्कृति विद्यमान रही है। मेक्सिको के एक मंदिर में कमल के चिह्न के प्रति श्रद्धा का उल्लेख किया गया है। कमल के प्रति भारतीय संस्कृति में सम्मान का भाव तो सब जानते ही हैं। मेक्सिको ग्वाटेमाला, पेरू व अन्य स्थानों पर शिव, विष्णु, गणेश, कूर्मावतार आदि देवी देवताओं के मंदिरों की उपस्थिति भारतीय संस्कृति के विश्व रूप का ही प्रमाण है । ग्वाटेमाला के म्यूजियम में अभी भी हिन्दू देवताओं की मूर्तियाँ रखी हुई हैं; इनमें हनुमान जी की मूर्ति भी है। कुछ विद्वानों का मत है कि कोलंबस के अमेरिका पहुँचने से कई सदियों पूर्व 'मय' सभ्यता के भारतीय वहाँ जाकर बस गए थे इसीलिये जब कोलंबस अमेरिका पहुँचा तो वहाँ के

मनुष्यों और संस्कृति को देख कर पहले कई दिनों तक वह यही सोचता रहा कि वह भारत में है। भारतीय पुराणों और महाकाव्यों में 'मय' जाति के लोगों को दानव वंश का बताया गया है। सुग्रीव के भाई बालि के हाथों मारे गए दुन्दुभि और मायावी दोनों ही मय दानव के वंशज थे। रावण की पत्नी मंदोदरी भी मय वंश की पुत्री मानी जाती है। इस प्रकार मय जाति भारतीय थी और यहीं से अमेरिका पहुँची अत: भारत की संस्कृति कितने प्राचीन काल से विश्व में संचरित हो रही है इस बात का अनुमान इन बातों से लगाया जा सकता है। रामायण काल से लेकर महाभारत काल तक भारत में मय जाति के लोगों का वर्णन मिलता है। हमारे पुराणों में वर्णित घटनाओं को ऐतिहासिक महत्त्व न देकर उनकी अवहेलना करने का यह दुष्परिणाम है कि आज संसार की सबसे प्राचीन और विश्वव्यापी संस्कृति की महानता और मानव विकास में योगदान की उतनी चर्चा नहीं हो पा रही जितनी कि अभीष्ट थी।

सन 1926 में लाओस के दक्षिणी प्रान्त सवन्नाखते में एक मंदिर के निकट हुई खुदाई में काँसे का घंटा मिला था। इससे यह सिद्ध होता है कि तीन हजार वर्ष पूर्व वहाँ हिन्दू पूजा पद्धति से आराधना होती थी। ये चिन्ह तीन हजार वर्ष पूर्व तक भातीय संस्कृति की उपस्थिति दर्शाते हैं किन्तु यह कब से वहाँ वर्तमान थी यह प्रश्न तो अनुत्तरित ही है न। अनेक देशों में खनन के समय भारतीय संस्कृति के चिह्न मिलते रहते हैं ये सभी चिह्न वहाँ कब स्थापित हुए? संभव है भविष्य में कुछ नए प्रमाणों और किसी नई तकनीक के अविष्कार से इन प्रश्नों के उत्तर हमें मिल सकें।

कुछ संकलन कर्ताओं ने इस बात की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है कि दक्षिण अफ्रीका में माली और सुमाली नामक नगर रावण के भाई माली और सुमाली के द्वारा ही बसाए गए थे। लंका पर भगवान राम की विजय के पश्चात् वहाँ राम के आदर्शों का अनुसरण किया जाने लगा। अफ्रीका के लोग अभी भी अपने को कुशायत अर्थात् कुश (राम के पुत्र) का अनुसरण करने वाले मानते हैं।

इसमें तो कोई संदेह नहीं कि रावण का साम्राज्य बहुत ही विस्तृत भूभाग पर था। अत: रावण वध के पश्चत उस पूरे क्षेत्र पर जहाँ रक्ष संस्कृति अस्तित्व में थी वहाँ आर्य संस्कृति ही प्रतिष्ठित हुई होगी।

आस्ट्रेलिया के माओरी जनजाति के लोग जो वर्तमान ईसाईयों के पहले से वहाँ रहते आए हैं, के बारे में कहा जाता है कि इनके रीति-रिवाज तमिलों से मिलते जुलते हैं। ऐसा अनुमान लगया जाता है कि हजारों वर्ष पूर्व नौका व्यापार के समय ये लोग वहाँ पहुँचे होंगे। अंग्रेज़ों ने आस्ट्रेलिया पर बलात् कब्ज़ा करके वहाँ के धर्म, संस्कृति और भाषा को नष्ट कर दिया।

काउंट जॉनस्टर्न ने अपने शोध परक लेखों में इस बात का उल्लेख किया है कि बेबीलोन के लोग मूलत: मूर्तिपूजक थे। विश्वव्यापी हिंदू संस्कृति नामक पुस्तक में पृष्ठ क्र.183 पर इतिहासकार कर्नल टॉड के इस कथन को उद्धृत किया गया है 'चीन तथा तार्तारी वंशावली के मूल पुरुष का नाम 'अवर' दिया गया है जो कि पुरुरवा का पुत्र था। चीन की संस्कृति भी आर्योद्भूत है ....चीन के उत्तरी भित्ति के दरवाजे पर संस्कृत भाषा में 'यक्षों से ईश्वर हमारी रक्षा करें' ऐसा तराशा हुआ लिखित उत्कीर्ण है।

जापान के बारे में भिक्षु चमनलाल द्वारा तीन अत्यंत महत्त्वपूर्ण बातें बताई गई हैं। एक तो यह कि समुराई योद्धाओं की हारार्कि में तथा राजपूतों की जौहर विधि में समान मनोवृत्ति झलकती है। दूसरा टोकियो में बुद्ध पूर्व काल से स्थित मंदिर में इंद्र की मूर्ति पाई जाती है। मत्स्य तथा वराह अवतारों की चित्रावलियों से

वहाँ की दीवारें सुशोभित हैं और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि जापान की पुरानी राजधानी नारा के प्राचीन बुद्ध मंदिर के प्रवेश द्वार पर बेणु बजाने वाले कन्हैया की मूर्ति उत्कीर्ण की गई है। (वही पृष्ठ 184)

पुराणों में जिन राजवंशों का वर्णन है और जिन्हें अंग्रेज़ी और कम्युनिस्ट इतिहासकारों ने कोरी कल्पना बता कर अनैतिहासिक कहा था अब उनकी ऐतिहासिकता प्रमाणित हो रही है। अनेक पुरातात्विक खदानों के द्वारा ऐसी मुद्राएँ शिलालेख मिले हैं जिनसे यह सिद्ध हुआ है कि भारत के इक्ष्वाकु वंश सहित अन्य वंशों के राजाओं ने संसार के बहुत बड़े भूभाग पर शासन किया है। मोहन जोदड़ो में सगर के शासन काल के दस सिक्के मिले हैं और इजिप्ट में सगर ने कई वर्षों तक शासन किया यह भी प्रमाणित हो गया है। आजकल भारतीय विद्वान भी बड़े मजे से पूछ लेते हैं कि जब अलेक्जेंडर भूमार्ग से चलकर पंजाब तक आ सकता है तो क्या भारत के राजा सगर और उनके साठ हजार पुत्र जो कि बहुत ही कुशल नाविक थे, जल मार्ग द्वारा पूरे भू मंडल की यात्रा नहीं कर सकते? अब भारत के विद्वान भी इस प्रकार के व्यंग्य करने लगे हैं किन्तु यह तभी संभव है जब हमारे पास विश्वसनीय पुरातात्विक और एतिहासिक प्रमाण हों।

मोहन जोदड़ो के अवशेषों की जानकारी सर जॉन मार्शल ने प्रकट की है उन्होंने स्पष्ट बताया है कि सगर और इक्ष्वाकु वंश की मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं। इन मुद्राओं की लिपि का अर्थ लगाने का कार्य प्रोफ़ेसर बेंडल ने बड़े श्रम पूर्वक किया है वे लिखते हैं कि इन शोधों से हिंदुओं के हृदय हर्ष विभोर हो जाएँगे ... अनेक लेखों की लिपियों की समानता से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि मिस्र की चित्र लिपि सुमेर की लिपि से निकली हुई है। इजिप्ट के लेख सुमेरी लिपि के आधार पर निर्मित हैं। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इजिप्ट के प्राचीन राजाओं की वंशावली गार्डियन तथा मेसोपोटामिया में हुए प्राचीन राजवंशावलियों की समानता भारत के पौराणिक राजवंशावलियों के साथ स्पष्ट है... आर्य संस्कृति का साम्राज्य पंजाब सिंध से लेकर इजिप्ट पर्यंत विस्तृत था। (वही पृष्ठ क्र.191,92)

इतिहास के सामान्य विद्यार्थी के लिए भी यह बड़े कौतूहल का विषय है कि भारत के राजा अंशुमान, राजा दिलीप, राजा भगीरथ और सगर के नाम इजिप्ट की वंशावलियों में कैसे पहुँच गए। प्रोफेसर वेंडल की शोध परक जानकारी से यह सिद्ध हो गया है कि पुराणों में जिन राजवंशों का वर्णन है, उनकी कथा में समय के अनुसार भले ही थोड़ा बहुत हेर-फेर हो गया हो किंतु वे राजा वास्तव में पूरी पृथ्वी के विजेता थे और उन्होंने आर्य संस्कृति को पूरे संसार में स्थापित किया था। अनेक विद्वानों ने अपने ग्रंथों में इस बात का उल्लेख किया है कि प्राचीन काल में मिस्र के लोग एपिस नामक नन्दी/सांड की पूजा करते थे।

इतिहासकार पुरुषोत्तम नागेश ओक ने अपनी पुस्तक 'भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें' में अरब में इस्लाम के उदय से पूर्व वहाँ हिन्दू संस्कृति और वेदों के प्रति जनमानस की आस्था को प्रदर्शित करने संबंधी अनेक प्रमाण दिए हैं। ओक जी का मानना है कि मोहम्मद साहब (इस्लाम के प्रवर्तक) के चाचा उमर-बिन-ए-हश्शाम कवि शिव उपासक और भारत के प्रशंसक थे। इस पुस्तक के पृष्ठ 293 पर उमर-बिन-ए-हश्शाम की उस कविता को भी उद्धृत किया है जिसमें उन्होंने शिव और भारत के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है।

आचार्य चतुरसेन 'वयं रक्षाम:' (पृष्ठ 161) में लिखते हैं 'मक्के के काबे में जो लिंग (अर्थात् शिव लिंग) है, उसका भविष्यपुराणकार मक्केश्वर नाम से उल्लेख करता है। यह एक काले पत्थर का लिंग है, जिसे मुसलमान संगे-असवद कहते हैं। पहले इसराइली और यहूदी इसकी पूजा करते थे। मुहम्मद के

जीवनकाल में इसकी पूजा पंडों के चार कुल करते थे। फ्रांस में भी प्राचीन काल में लिंग पूजा का प्रचलन था ....प्राचीन देशों में लिंगाची एक संप्रदाय ही था। भारत में भी दक्षिण में लिंगायत संप्रदाय है।'

हमारे इतिहास के दो महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं; एक वैदिक साहित्य है और दूसरा है पुराण। विडंबना इस बात की है कि यूरोप के लोग ईसामसीह के पहले भी कोई सभ्य समाज, उन्नत संस्कृति रही होगी इस बात को हजम नहीं कर पाते। अत: वे हर चीज को ईसा पूर्व और ईशा बाद की काल गणना के हिसाब से नापने का प्रयास करते हैं। जिस प्रकार हम भारत के लोग इस बात पर सहज विश्वास करते हैं कि हमारी संस्कृति हजारों वर्ष पूर्व बहुत उन्नत अवस्था में थी ठीक ऐसे ही यूरोपीय विद्वान कुछ समय पूर्व तक यह मानते थे कि बाइबल से पहले दुनिया अविकसित ही थी।

भारत पर अंग्रेज़ों का आक्रमण केवल राजनीतिक आक्रमण ही नहीं था अपितु वह धार्मिक एवं सांस्कृतिक भी था। उन्होंने आर्यों को विदेशी घोषित करने के लिए जी भरकर झूठे ग्रन्थ लिखे। भारतवासियों को उन्होंने असभ्य और आदिम बनाने और बनाए रखने के लिए वर्षों तक अत्याचार किए। अरब अफगान लुटेरों ने भारत के ज्ञान भंडारों को जला कर नष्ट किया तो अंग्रेजों ने उनमें से ज्ञान को चुराकर अपने नाम पेटेंट करा करा लिया। अब पूरी दुनिया के सामने यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि वायुयान बनाने की तकनीक मूल रूप से भारत में बापू तलपडे ने विकसित की थी जिसे छल पूर्वक अंग्रेज़ों ने हड़प लिया। सैकड़ों वर्ष के संघर्ष के पश्चात भारत जब स्वाधीन हुआ तब भी उसकी संस्कृतिक चमक फीकी नहीं पड़ी। यहाँ के निवासियों में आज भी वैसी ही जिजीविषा है जैसी कि हजारों वर्ष पूर्व हमारे पुरखों में हुआ करती थी। आज भारतीय योग पूरी दुनिया ने स्वीकार कर लिया है। सांस्कृतिक द्रष्टि से यह भारत की बहुत बड़ी उपलब्धि है। योग-आयुर्वेद आधारित भारतीय जीवन पद्धति ने आधुनिक विज्ञान को मानने वाले संसार के सामने आशा की एक नई किरण जगाई है।

भारतीय संस्कृति की उदारता, संचरणशीलता और सबको आत्मसात करते हुए सभी को सम्मान के साथ जीने का सामान अधिकार देने की मूल भावना के कारण ही यह विश्व में सर्व स्वीकार हुई थी। कट्टर पंथी धार्मिक विचारों ने इस पर सतत अघात किये किन्तु फिर भी वे इसे मिटा न सके। पिछले दो हजार वर्षों में जिन नई-नई संस्कृतियों और धर्मों ने जन्म लिया, वे संसार को आत्म शांति और बराबरी का अधिकार देने में सफल नहीं हो पा रहे। लगभग सत्तर देशों को छल-बल से जीतकर बन्दूक की नोक पर और कभी सेवा की आड़ में धर्मान्तरण कराने वाले अंग्रेज़ों को अब समझ आ रहा है कि वे अभी भी अध्यात्मिक रूप से भारत से बहुत पीछे हैं। अरब, यूरोप में सभी धर्मों के मानने वालों को समाज में समान अधिकार नहीं दिए जाते। अमेरिकी समाज ईसाइयों को ही वोट देना पसंद करता है तो अरब में गैर मुस्लिमों को कोई सामाजिक अधिकार ही नहीं हैं। भारतीय संस्कृति ही एकमात्र ऐसी संस्कृति है जिसने हजारों वर्ष तक विश्व समुदाय को शांति से जीने की राह दिखाई है। विश्व समुदाय की चिंता करने वाले मनीषी यदि दुनिया में शांति स्थापति करना चाहते हैं तो भारतीय संस्कृति के वसुधैव कुटुम्बकम, सर्वे भवन्तु सुखिन: और ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां-जगत्यां जैसे तत्वों को आत्मार्पित करना ही पड़ेगा।

सम्पर्क : *ग्वालियर (म.प्र.)*
मो. 9445456639

हार्दिक दवे

मीडिया में हिन्दी का प्रभाव और हिन्दी का योगदान

विषय के पहले पक्ष यानी प्रभाव पर बात करने से पहले ज़रूरत है हिन्दी के योगदान पर चर्चा करने की, हिन्दी की विकास यात्रा को समझने की, ताकि ये समझा जा सके कि हिन्दी भाषा कैसे भारत के जनमानस की भाषा बनी, कैसे हिन्दी भारत के लोगों की पहचान बनी और कैसे हिन्दी ने वैश्विक गौरव दिलाने वाली भाषा से लेकर अब तकनीकी भाषा तक का सफर तय कर लिया है। यानी वो भाषा जो अब कंप्यूटर के लिए भी उतनी ही सरल और सहज है, जितनी आपके और हमारे लिए।

चूँकि भाषा पर बात तो हर सत्र में होती है, लेकिन जो इस चर्चा को अलग बनाता है वो है आज के विषय का पहला शब्द यानी मीडिया, मीडिया, जिसकी एक लंबी संघर्ष यात्रा रही, सकारात्मक सोच के साथ ये यात्रा शुरू हुई आसान जीवन शैली की अपेक्षा को पूरा करने के लिए मीडिया ने महती भूमिका निभाई और सहज तरीके से दुनिया की हर छोटी-बड़ी गतिविधि को एक कागज़ के पन्ने के ज़रिए जानने जितनी आसान बना दिया। आज ये यात्रा 32 इंच के टेलीविजन बॉक्स से 4 बाय 4 की छोटी सी स्क्रीन तक आ चुकी है। हर जेब में हजारों खबरें हैं। हर घर तक इसकी पहुँच है। हर गाँव शहर तक समाचार पत्रों ने, न्यूज़ चैनल्स ने और रेडियो स्टेशन्स ने अपनी जगह बना ली है।

इतिहास पर गौर करें तो शोधात्मक और अन्वेषणात्मक बुद्धि कौशल के धनी लोगों ने इस देश में मीडिया इंडस्ट्री की शुरुआत की। बाल गंगाधर तिलक, वीर सावरकर, गणेश शंकर विद्यार्थी से लेकर माखनलाल चतुर्वेदी, राजेंद्र माथुर, प्रभाकर माचवे जैसे कई श्रद्धास्पद हस्तियों ने इस मीडिया इंडस्ट्री की नींव रखने में योगदान दिया।

ऐतिहासिक विरासत की माटी से गूँथक प्रामाणिकता की चाक पर चढ़ाकर इस पूरी इंडस्ट्री ने वो आकार लिया है, जो आज हमारे सामने है, और ये स्वरूप आज इतना विशाल और विराट है, इसका श्रेय निश्चित रूप से हमारी मातृभाषा हिन्दी को जाता है। जितनी भी बड़ी हस्तियों का जिक्र आया वो सभी इसी हिन्दी भाषा को माध्यम बनाकर अपनी बात जन-जन तक पहुँचा सके।

और लोग भी इस बात को स्वीकार ज़रूर करेंगे कि आज के समय पत्रकारों में जितने बड़े नाम और बड़ी पहचान आपको दिखती है, वे सभी अपनी उत्कृष्ट भाषा शैली और आसानी से समझाने वाले अंदाज़ से ही जाने जाते हैं। आज कल तो विद्यालयों में भी अंग्रेजी की अनिवार्यता है, तो शिक्षक

खुलकर अपनी मातृभाषा में बात तो नहीं कर पाते। कई स्कूलों में तो हिन्दी में बात करने पर फाइन भी लगता है, लेकिन आज से 10-20 साल पहले जो स्कूलों से पढ़कर निकले हैं, उन्होंने गौर किया होगा कि शिक्षक भी पढ़ाते थे, तो एक बार किताब में क्लिष्ट अंग्रेजी भाषा में किसी कथन को पढ़ते थे और फिर जैसे ही अपनी बात हिन्दी में कहते वो सीधे क्लास के हर बच्चे को समझ आ जाती। ये भाषा का अंतर है। समझाने के लिए, अपनी बात को आसानी से बताने के लिए, किसी से अपनी भावनाओं का इज़हार करने के लिए हम अक्सर उसी भाषा का इस्तेमाल करते हैं, जो हमारे भीतर से निकलती है, जिसके लिए हमें अत्यधिक मेहनत नहीं करनी होती, सोचना या मनन नहीं करना होता, हम बस दिल की बात, अपने मन की बात कर पाते हैं, और भारत में तो हिन्दी भाषा वही दर्जा रखती है।

वास्तव में भाषा हमारी अन्तर्चेतना और राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक होती है। इन दो पैमानों पर परखें तो हिन्दी हमें भाव भी प्रदान करती है और संस्कार भी...यानी हम भारतीयों के लिए स्वयं को समझने और दूसरों के सामने स्वयं को पेश कर पाने की अभिव्यक्ति जितनी सरलता, सहजता से हिन्दी में संभव है, उतनी किसी अन्य विदेशी भाषा में नहीं। क्योंकि किसी दूसरी भाषा में बात करते समय या उसे समझते समय, हम सोचते हिन्दी में हैं, फिर उसका अनुवाद करते हैं और फिर बोलते हैं। तो किसी भी अन्य भाषा को बोलने में आपको सोचना, अनुवाद करना और बोलना, ये तीन चरणों की प्रक्रिया के अनुसार चलना होगा जबकि अपनी मातृभाषा हिन्दी के लिए आपको अनुवाद की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। ये तो वो भाषा है जो हमने तब से सुनी है, जब हमारा जन्म हुआ था, जिस भाषा को सुनकर हमने बोलना सीखा, समझना सीखा। तो जब टीवी पर बैठा न्यूज़ एंकर, रिपोर्टर या रेडियो पर आर जे आपसे आपकी भाषा में बात करता है तो ये एक अलग ही संबंध स्थापित करता है। जिसे विश्वास का संबंध कहा जाता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण यही है कि हम जब भी ज़ी न्यूज़ की मीटिंग लेते हैं तो फोकस इसी बात पर होता है कि भाषा वो हो जो सभी को समझ आए, हिन्दी ऐसी हो जो सबके दिल में उतर जाए और मन में समा जाए। इसी का असर हमें देखने को मिला है कि जब देश के मीडिया चैनल्स पर एक शोध किया तो The Brand Trust Report, 2020 में ज़ी न्यूज़ को देश का सबसे भरोसेमंद चैनल होने का सम्मान हासिल हो पाया। इसका श्रेय जाता है जी न्यूज़ के व्यूअर्स को, हमारे साथ काम करने वाले स्वच्छ छवि वाले पत्रकारों को और चैनल पर उपयोग होने वाली भाषा को यानी उस आसान हिन्दी को, जिसने दर्शकों के बीच विश्वास जीतने में चैनल को सहयोग किया और ये दर्शाता है कि क्या है मीडिया में हिन्दी का योगदान और हिन्दी का मीडिया पर प्रभाव। हालाँकि मीडिया में किसी भी भाषा के उपयोग का विषय तकनीकी से ज़्यादा जन सामान्य की भावना से जुड़ा होता है। इसलिए हम हिन्दी पर आज ज़्यादा ज़ोर दे रहे हैं। हिन्दी के योगदान की बात कर रहे हैं। हिन्दी के योगदन को महसूस कर पा रहे हैं। ऐसे तो भारत में कई अंग्रेजी चैनल्स हैं, जो बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। कई प्रादेशिक भाषाओं के अखबार और चैनल हैं। सभी अपनी भाषाओं में बेहतरीन काम कर रहे हैं लेकिन जो भाषा और मीडिया का जो क्षेत्र एक आम ऑटो चालक से लेकर बड़े बंगलों में बैठे लोगों के बीच समान रूप से चर्चा में रहता है वो हिन्दी मीडिया ही है। आँकड़े बताते हैं कि हिन्दी देश की रगों में रची बसी भाषा है।

2011 के जनगणना के अनुसार, हिन्दी बोलने वाले भारतीयों की संख्या 69 करोड़ 13 लाख 47 हज़ार 193 है...यानी देश की आबादी का 57.09प्रतिशत। वहीं अंग्रेज़ी बोलने वालों की संख्या 12 करोड़ 92 लाख 59 हजार 678 यानी करीब 10.67 प्रतिशत...ये अंतर बताने के लिए काफी है कि ये देश कौनसी भाषा बोलता है, कौनसी समझता है और कौनसी भाषा को ये पूरा भारत देश महसूस करता है। ।

WAN-IFRA's World Press Trends 2016 से लेकर 2019 तक की रिपोर्ट देखें तो, विश्व के Top 10 अख़बारों की सूची में 3 अखबार हिन्दी भाषी हैं, जबकि दो अंग्रेज़ी में निकलते हैं। इन दो में भी एक तो भारत की ही देन है। इसके अलावा एक अखबार चाइनीज़ भाषा का है। जबकि बाकी 4 अन्य भाषाओं के हैं। ऐसे में ये वैश्विक गौरव का विषय है कि मीडिया इंडस्ट्री ने ऐसे स्तंभ खड़े किए कि देश ही नहीं बल्कि सर्कुलेशन के मामले में हमारी भाषा, हमारी हिन्दी भाषा का मान बढ़ाने के लिए 3 अखबार पूरी दुनिया के टॉप 10 अखबारों में आते हैं।

जिस अंग्रेज़ी को सम्मान के प्रतीक के तौर पर देखते हैं, उस अंग्रेज़ी भाषा में 26 हज़ार शब्द हैं, जिनमें से सिर्फ 3 हजार शब्द ही भारत में आम बोलचाल में इस्तेमाल होते हैं लेकिन हिन्दी के 32 लाख शब्द हैं, जिनमें से 20 लाख से ज़्यादा हम आम बोलचाल में इस्तेमाल करते हैं। मोक्षा और कर्मा जैसे शब्दों को भी अंग्रेज़ी डिक्शनरी में लेने के लिए उन्हें हमारी भाषा हिन्दी की जरूरत पड़ती है क्योंकि ये कर्म और मोक्ष जैसे संस्कार, ये सिद्धांत केवल हमारी संस्कृति और हमारी भाषा में ही उपलब्ध हैं।

जैसा कि मैंने पहले भी बताया कि हिन्दी हमें भाव और संस्कार देती है तो हिन्दी से हमें भाव कैसे मिलता है ये तो समझ लिया लेकिन संस्कार कैसे मिलता है। उदाहरण के तौर पर जब कोई मेहमान अचानक आता है तो हम कहते हैं कि आपकी बड़ी लंबी उम्र है...जबकि अंग्रेज़ी में यही बात कहने के लिए कहावत है कि think of the devil & devil is here.,

ऐसे ही जब एक कार्य से दो उद्देश्यों की पूर्ति हो तो कहते हैं एक पंथ दो काज। इसी बात के लिए अंग्रेज़ी में कहते हैं to kill two birds with one stone.

हिन्दी इतनी सहज भाषा है कि यहाँ आपको कोई टोकेगा नहीं कि इस शब्द को ऐसे नहीं ऐसे कहिए। इसका प्रननसिएशन ग़लत है या जितना मज़ाक आपका अंग्रेज़ी में ग़लती करने पर बनता है, वैसा मज़ाक हिन्दी में ग़लती करने पर नहीं बनेगा, बल्कि युवाओं के बीच तो आजकल हिन्दी का कमज़ोर होना, एक स्टैटस सिंबल की तरह इस्तेमाल होने लगा है। तो हिन्दी बोलने में किसी भूल चूक को बड़ी ही आसानी से माफ कर दिया जाता है, आप कह सकते हैं कि हिन्दी के साथ ईगो इशूज़ नहीं है। हिन्दी के सम्मान को ठेस पहुँचाना इतना भी आसान नहीं होता। ये भाषा बिल्कुल हमारी माँ के समान है, जिससे हम कभी-कभी गुस्सा भी कर लेते हैं, कभी प्यार भी, कभी नाराज़ भी हो जाते हैं, लेकिन हमारी सारी ग़लतियाँ जैसे माँ माफ कर देती है वैसी ही हमारी हिन्दी भाषा है।

इसका कारण ये है कि भारत में इतनी बोलियाँ, इतने अलग-अलग क्षेत्र हैं कि सभी का हिंदी बोलने का अंदाज़ एक-दूसरे से हटकर है। कृष्ण को महाराष्ट्र में कोई KRUSHNA बोलेगा, गुजरात

में KRISHNA बोलेगा और बंगाल में KROSHNA बोलेगा... लेकिन हिन्दी हर अंचल और हर क्षेत्र के तौर तरीके के साथ सहज है। हिन्दी को आप किसी भी एक्सेंट में बोलिए, भोजपुरी हो या उर्दू, कोई भी भाषा हो, हिन्दी सभी भाषाओं को मिश्री की तरह अपने अंदर घोल लेती है। कोई दक्षिण भारतीय भी अपने अंदाज़ में जब स्पष्ट हिंदी बोलता है तो वो उतनी ही मीठी लगती है, जितनी किसी मध्य प्रदेश या उत्तर प्रदेश के रहने वाले व्यक्ति की शुद्ध हिन्दी।

बस एक चिंता जो सताती है कि हिन्दी में चाहे भारतीय बोलियों का मिश्रण हो तो वो समझ आता है लेकिन 32 लाख से ज़्यादा शब्द जिस हिन्दी भाषा में हों, उसे 26 हज़ार शब्दों वाली अंग्रेज़ी का सहारा लेना पड़े, ये थोड़ा हज़म नहीं होता। हमारी भाषा जितनी समृद्ध है, उसके लिए हमें हिंग्लिश बोलना पड़े, अखबारों में भी आज कल हेडलाइन्स हिंग्लिश में इस्तेमाल होती है। भाषा जितनी मिलनसार है, उतनी ही गरिमामयी भी, तो सहज होने के लिए कहीं हम भाषा की गरिमा से छेड़छाड़ न करें इसका ख्याल हमेशा रहना चाहिए।

सम्पर्क : *नोएडा (उ.प्र.)*
मो. 9893120439

डॉ. अखिलेशचन्द्र शर्मा

स्वामी दयानंद सरस्वती : हिन्दी भाषा

देव भूमि भारत में समय-समय पर अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया तथा मानवता को सत्य-पथ का दर्शन कराकर धराधाम में व्याप्त अज्ञान के तिमिर को विदीर्ण कर ज्ञान का प्रकाश फैलाया है। इन्हीं महापुरुषों की श्रृंखला की कड़ी में मानवता का पुनः उद्धार करने और उनके समक्ष सत्य पथ प्रदर्शित करने हेतु 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में, काठियावाड़ के मोरवी राज्य में, टंकारा नामक स्थान में 2 सितम्बर 1824 को देव दयानन्द जी का जन्म किरसन जी त्रिवेदी के घर हुआ। दयानंद जी का जन्म का नाम मूलशंकर था। इनके पिता संस्कृत व्याकरण के पंडित एवं शैव मत के अनुयायी थे। आठ वर्ष की आयु में उनका यज्ञोपवीत संस्कार करके गायत्री मन्त्र, संध्या आदि की क्रिया सिखाई गयी। इसके पश्चात् उन्हें यजुर्वेद सहिंता, वेद ग्रंथों का एवं व्याकरण का अभ्यास करवाया गया। अठारह वर्ष तक निघण्टु, निरुक्त, पूर्व मीमांसा आदि शास्त्रों की शिक्षा दी गई।

मूलशंकर अपने माता पिता की ज्येष्ठ संतान थे। 14 वर्ष की उम्र में उन्हें शिवरात्रि का व्रत रखने एवं रात्रि में सबके सोने के बाद शिवलिंग पर चूहे के कूदने से उनके अंदर वास्तविक शिव की खोज के प्रति रुचि आरम्भ हुई। दुर्भाग्य से 16 वर्ष की आयु में छोटी बहन की मृत्यु व 19 वर्ष की आयु में उन पर अत्यधिक स्नेह रखने वाले चाचा की विषूचिका से मृत्यु हो जाने के कारण वैराग्य-वृत्ती और अधिक हो गयी। उनके सामने शाश्वत प्रश्न उपस्थित हो गया कि क्या सभी को मरना है। 21 वर्ष की युवा अवस्था में अमरत्व के पिपासु मूलशंकर ने सांसारिक बंधनों का मोह त्याग कर सच्चे शिव की खोज में भारत भ्रमण करते रहे तथा विभिन्न संतों महात्माओं से योग व ज्ञान प्राप्त किया पर कोई भी मुक्ति का मार्ग नहीं बता सका। अंत में स्वामी पूर्णानंद सरस्वती से संन्यास ग्रहण कर मथुरा के दण्डी स्वामी विरजानन्द जी के पास सन् 1860 में पहुँच गये।

प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी विरजानन्द जी ने दयानन्द की प्रतिभा को पहचाना और तीन वर्षों तक अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि व्याकरण ग्रंथों व अन्य आर्ष ग्रंथों का अध्ययन कराया। यही वह अवधि थी जब वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञान-अज्ञान का भेद, धर्म-अधर्म का रहस्य, समाज में व्याप्त रूढ़ियाँ, भ्रांत शास्त्रों एवं विकृत विचारों का उन्मूलन किया जा सका। विद्याध्ययन की पूर्णता पर दयानन्द अपने गुरु के पास उनका प्रिय पदार्थ, आधा सेर लौंग उन्हें अर्पित करने के लिए लाए। इस पर भाव विभोर गुरु

ने कहा –''सौम्य में तुमसे किसी भी प्रकार के धन की दक्षिणा नहीं चाहता, मैं तुमसे तुम्हारे जीवन की भेंट चाहता हूँ। तुम प्रतिज्ञा करो की तुम जितने दिन भी जीवित रहोगे, उतने दिन आर्यवर्त में आर्ष ग्रंथों की महिमा को स्थापित करोगे। अनार्ष ग्रंथों का खंडन करोगे और भारत में वैदिक धर्म की स्थापना में अपने प्राण तक अर्पित कर दोगे''। दयानन्द जी ने गुरु का आदेश स्वीकार किया।

स्वामी दयाननद जी द्वारा गुरु से सीखे व्याकरण के आलोक में सभी आर्ष ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। उन्होंने उत्तर भारत से आरम्भ कर सत्य सनातन वैदिक धर्म का प्रचार और भारत में व्याप्त पाखंड, अन्धविश्वास, अविद्या आदि का पूर्ण शक्ति के साथ खंडन किया। यवन मतों के साथ अन्य भारतीय मतों का भी तर्क व प्रमाण के साथ खंडन कर सत्य सनातन वैदिक धर्म की स्थापना की। भारतीय पुनर्जागरण हेतु स्वामी दयानन्द जी ने 1875 में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की तथा निम्न कार्यक्रम चलाये–

1– धार्मिक पुनर्जागरण
पाखंडों का खंडन
वैदिक धर्म का मण्डन
शुद्धि आंदोलन

2– सामाजिक पुनर्जागरण
जन्म आधारित जाति व्यवस्था का खंडन
अछूतोद्धार
स्त्रियों की दशा में सुधार
सती प्रथा का विरोध
वैदिक समाजवाद की स्थापना

3– राजनैतिक चेतना का पुनर्जागरण
वैदिक राजनैतिक संगठन की संकल्पना
राजनैतिक आदर्श की वैदिक अवधारणा
स्वराज्य का उद्घोष
स्वदेशी की प्रेरणा
पराधीनता से पूर्ण मुक्ति

4– शैक्षणिक पुनर्जागरण
गुरुकुल परम्परा का पुनरुद्धार
वैदिक पाठ्यक्रम का निर्माण
गुरु शिष्य आचार–संहिता का निर्माण
वैदिक पाठशाला का निर्माण
संस्कृत के उत्थान के प्रयास
राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की स्थापना

5- साहित्यिक पुनर्जागरण
वेदों का हिंदी में भाष्य
सत्यार्थ प्रकाश का हिंदी में निर्माण
राष्ट्र भाषा में रचित अन्य ग्रन्थ।

उक्त कार्यक्रमों की पूर्ति हेतु जहाँ उन्होंने भारत भर में व्याख्यान दिए, शास्त्रार्थ किये वहीं तत्संबंधी ग्रंथों का हिंदी भाषा में निर्माण भी किया। स्वामी दयानन्द जी द्वारा एक प्रमाण के अनुसार कुल 103 ग्रंथों का हिंदी भाषा में निर्माण किया जिनमें से कुछ निम्न ग्रंथों का नाम दिया जा रहा है :- 1. पाखंड खंडन, 2. काशी शास्त्रार्थ, 3. पंचमहायज्ञ विधि, 4. आर्याभिविनय, 5. संस्कार विधि, 6. आर्योद्देश्यरत्नमाला, 7. व्यवहारभानु, 8. गोकरुणानिधि, 9. वेदांग प्रकाश, 10. सत्यार्थ प्रकाश, 11. संध्या, 12. भागवत खंडन, 13. अद्वैत मत खंडन, 14. वेद विरुद्ध मत खंडन, 15. भ्रमोछेदन, 16. आर्य समाज के नियम, 17. स्वीकार पात्र, 18. ऋग्वेद का भाष्य।

यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि स्वामी दयानन्द जी गुजरात मूल के थे तथा उनकी मात्र भाषा भी गुजराती थी। फिर भी उन्होंने देश को एक सूत्र में पिरोने हेतु हिंदी भाषा को अपनाया। यह भी उल्लेखनीय है कि उस काल में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आम लोग अंग्रेजी भाषा को श्रेष्ठ समझते थे। लम्बे विदेशी शासनकाल के कारण उर्दू भाषा का भी प्रचार चरम पर था। ऐसी स्थति में स्वामी दयानन्द जी ने हिंदी को राष्ट्र भाषा और देव नागरी को राष्ट्रलिपि बनाने का प्रयास किया।

भारतीय विद्वानों ने उनके समय व उनके बाद में उनके हिंदी प्रेम की बहुत सराहना की। डॉ. हरबिलास शारदा ने उन्हें धार्मिक हिंदी का प्रवर्तक कहा। प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री अयोध्यानाथ शर्मा ने एक प्रसंग में उद्धृत किया है कि, समाज के एक हितेषी ने श्री महाराज से सत्यार्थ प्रकाश का किसी दूसरे भाषा में अनुवाद करने की आज्ञा चाही और कहा कि इससे आपके सिद्धांत का अधिक प्रचार होगा, तब स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यदि कोई व्यक्ति सत्यार्थ प्रकाश पढ़ना चाहता है और वास्तव में उसे पढ़ने के लिए उत्सुक है तो उसे हिंदी भाषा में ही पढ़े और यदि हिंदी न जानता हो तो सीख ले।

प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. रामचंद्र तिवारी ने आर्य समाज के माध्यम से हिंदी भाषा के प्रचार को देखते हुए कहा, ''प्रांतीयता, जाति-भेद और अन्य सीमाओं को लाँघकर जहाँ-जहाँ आर्य समाज कि स्थापना हुई वहाँ हिंदी प्रेम भी पहुँचा। इसका सबसे अच्छा उदाहरण पंजाब है। जैसे ही पंजाब आर्य समाज के प्रभाव में आया, अन्य जातियों के विरोध और सरकार कि उपेक्षा के बावजूद भी हिंदी का पौधा जड़ पकड़ने लगा और बढ़ते-बढ़ते उसने वृक्ष का रूप ले लिया।''

गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र एम.ए., शुकदेव बिहारी मिश्र बी.ए., मिश्र बन्धु विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन प्रथम भाग, खंडवा व प्रयाग हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मण्डली का प्रथम संस्करण 1970, एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शोध पूर्ण ग्रंथ है जिसमें तीन व्यक्तियों का शोध हुआ है। मिश्र बन्धुओं के अपने इतिहास में पृ.सं.-161 पर दयानन्द काल नाम से लिखा है कि, दयानन्द ने 'अपने समाज का यह एक मुख्य नियम कर दिया कि प्रत्येक सदस्य हिन्दी की सहायता करे।

स्वामी जी द्वारा इससे हिन्दी का भारी उपकार हुआ है।' तृतीय भाग पृ.सं.-1174 पर लिखते हैं- 'इन्होंने जितने भाषा ग्रन्थ लिखे, उनमें वर्तमान शुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया। आपकी भाषा बहुत ही सरल होती थी संस्कृत के बड़े भारी विद्वान् होने पर भी आपने विशेषतया हिन्दी को आदर दिया और अपने प्रायः सभी ग्रन्थ हिन्दी में लिखे।'

हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग '1868' से माना जाता है और यही काल दयानन्द के कार्यों का काल था तदुपरांत जितने भी हिंदी भाषा के विद्वान् हुए उनमे बहुत से तो आर्यसमाजी ही थे अथवा बाकी स्वामी दयानद जी से प्रभावित थे। इसका प्रमाण उनकी रचनाओं में स्वामी दयानन्द जी द्वारा पुनर्जागरण हेतु किये जा रहे प्रयासों को प्रोत्साहन मिलना पाया जाता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वामी दयानन्द के समकालीन थे। हिन्दी साहित्य में युगान्तरकारी परिवर्तन करने वाले भारतेन्दु ने दयानन्द के ही प्रभाव से अपने साहित्य लेखन में कई परिवर्तन किए। 'भारतेन्दु के वैचारिक परिवर्तन में स्वामी दयानन्द के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व तथा सिद्धान्तों ने परोक्ष भूमिका निभाई थी।' यहाँ तक कि स्वामी जी 'संस्कृत के अनुसार हिन्दी में लिंगों का प्रयोग करते थे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र व प्रतापनारायण मिश्र ने यही शैली स्वीकार की।' भारतेन्दु ने तत्कालीन स्थिति को भाँपकर पुष्टिमार्गीय आचार्य वल्लभ के मतानुयायी होने पर भी अपने लिखे ग्रन्थों को छोड़ नवजागरण से सम्बन्ध जोड़ा और साहित्यिक परिवर्तन लाने में अहम भूमिका निभाई, 'स्वयं भारतेन्दु की अनेक रचनाओं में धार्मिक पाखण्ड, सामाजिक कुप्रथाओं तथा अन्धविश्वासों के प्रति जो तीव्र कटाक्ष युक्त आलोचना का स्वर मुखर हुआ उसे स्वामी दयानन्द के विचारों का ही प्रभाव समझना चाहिए। 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेन्दु हिन्दू समाज में प्रचलित जाति भेद, जन्म पत्र के आधार पर विवाह स्थिर करना, बाल विवाह, कुलीनों के बहु-विवाह, विधवा-विवाह निषेध, विलायतगमन निषेध आदि कुप्रथाओं का तीव्र खण्डन करते हैं।

पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने 'हिन्दी साहित्य : उसका उद्भव और विकास' में लिखते हैं- 'आर्य समाज के आन्दोलनों ने हिन्दी भाषा, दयानन्द सरस्वती का स्त्री विमर्श तथा उसका आधुनिक हिन्दी साहित्य पर प्रभाव को बहुत बल दिया क्योंकि आर्य समाज भी भारतीयकरण का पक्षपाती था। पं. राधाचरण गोस्वामी वृंदावन के गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख व्यक्ति थे। कालान्तर में वे हिन्दी के प्रमुख लेखक तथा पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। पंडित राधाचरण गोस्वामी दयानन्द के परम् भक्त तथा प्रशंसक थे। उन्होंने वार्तालाप के एक प्रसंग में कहा था कि स्वामी दयानन्द के वाक्य मुझे वेद वाक्यवत् मान्य हैं और उनकी प्रत्येक बात मेरे लिए उदाहरण स्वरूप है। प्रतापनारायण मिश्र ने भी महर्षि दयानन्द के मार्ग को अपनाते हुए उनके बाल-विवाह निषेध तथा विधवाओं की पीड़ा को समझकर हिन्दी साहित्य में काफी योगदान दिया।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शर्मा 'शंकर' तथा राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' काव्य के चिर परिचित उपादानों को छोड़कर नये विषयों पर कविता लिखने लगे। महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा इस युग के लगभग सारे कवि एवं साहित्यकार पूर्णतः स्वामी दयानन्द के शिष्य तथा उनसे प्रभावित थे। नाथूराम शर्मा 'शंकर', द्विवेदी काल के प्रमुख कवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। नाथूराम शर्मा 'शंकर' महर्षि दयानन्द से बहुत अधिक प्रभावित थे इस कारण स्वामी जी के समाज सुधार आन्दोलन का

प्रभाव उनकी कविताओं में प्रत्यक्ष दिखाई देता है। शंकर जी पर आर्यसमाज तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों का भी गहरा प्रभाव पड़ा। देश-प्रेम, स्वदेशी-प्रयोग, समाज-सुधार, हिन्दी-अनुराग तथा विधवाओं और अछूतों का दारुण दु:ख इनकी कविता के प्रमुख विषय हैं।

श्री कृष्ण का जो चरित्र पुराणों तथा रीतिकालीन कवियों ने रसिक रूप में कलंकित कर रखा था उसे अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जी ने सच्चे महापुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है। जो चरित्र ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में तथा महाभारत एवं गीता में श्री कृष्ण का प्रस्तुत हुआ वही रूप हरिऔध ने प्रस्तुत किया है। कवि मैथिलीशरण गुप्त में नई सोच एवं दयानन्द के स्त्री उत्थान के नये विचार समाहित हैं जिनके माध्यम से वे स्त्री को पुन: पुरुष के समान समझ एवं स्वनिर्णयों की संवाहिका के रूप में प्रस्तुत करते हैं। अन्य कवियों में लाला भगवानदीन ने 'वीर क्षत्राणी' में स्त्री उत्थान की बात की तो सत्यनारायण 'कविरत्न' ने अपनी कविता में युग चेतना से प्रभावित हो दयानन्द का चिन्तन परिलक्षित किया है।

ऋषि दयानन्द पर लिखी जीवनियों का भी साहित्यकारों पर प्रभाव था। रामविलास सारदा का आर्य धर्मेन्दु जीवन; 1901, दयाराम का दयानन्द चरितामृत; 1904, चिम्मनलाल वैश्य का स्वामी दयानन्द; 1907 और अखिलानन्द शर्मा का दयानन्द दिग्विजय; 1910 शीर्षक कृतियों का प्रभाव सम्पूर्ण द्विवेदी युग में था। जिस कारण कोई भी साहित्यकार दयानन्द के प्रभाव को अपने साहित्य में आने से रोक न सके।

जयशंकर प्रसाद ने छायावाद को सौन्दर्य की शाश्वत विवृत्ति के रूप में मानते हुए विचारों के मूल में विशिष्ट दार्शनिक सिद्धांत एवं कल्पना प्रवणता के साथ प्राचीन समर्थ प्रतीकों का पुनर्जागरण एवं निर्माण किया है। उनका विशिष्ट दार्शनिक सिद्धांत वेद तथा दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश में मनु की सामाजिक व्यवस्था के नियम थे। निराला स्वामी दयानन्द से अत्यन्त प्रभावित थे। महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के शब्दों में हम इसे देख सकते हैं-'उन्नीसवीं सदी का प्रारंभ भारत के इतिहास का अपर स्वर्ण प्रभात है। कई पावन-चरित्र महापुरुष अलग-अलग उत्तरदायित्व लेकर, इस समय इस पुण्य भूमि में अवतीर्ण होते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती भी इन्हीं में एक महाप्रतिभा मण्डित महापुरुष हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती के स्त्री चिन्तन का प्रभाव छायावाद में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' भगवती चरण वर्मा आदि पर भी पड़ा है। रामनरेश त्रिपाठी, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी आदि ने जिस राष्ट्र प्रेम और सांस्कृतिक गौरव का चित्रण किया उसमें स्त्रियों के प्रति भी उच्च भावना प्रदर्शित हुई है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने ऐतिहासिक प्रसंगों पर मार्मिक कहानियाँ लिखीं। पाण्डेय बेचेन शर्मा 'उग्र' ने बलात्कार, 'दोज़ख की आग', निर्लज्जा में समाज के नग्न यथार्थ का चित्रण किया है। 'चिनगारियाँ' में उन्होंने अपनी विद्रोहपूर्ण राष्ट्रीय चेतना को वाणी दी है। उनकी कहानियों में सामाजिक शोषण अनाचार एवं कुप्रथाओं के प्रति आक्रोश है। दयानन्द का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर छर्रे वाली गोली की भाँति है। एक बार शब्द विचार रूपी गोली दयानन्द के मुँह से चली और वह सब जगह फैल गई। फर्क इतना है कि जिसके वह मस्तिष्क, हृदय आदि में लगी वह तो पूरे दयानन्द के प्रभाव में आ गया और जिसके हाथ-पैर आदि में लगी वह कुछ ही प्रभावित हुआ। लेकिन उस क्षेत्र में जितने भी थे सब उससे प्रभावित अवश्य हुए।

सम्पर्क : *इंदौर (म.प्र.)*
मो. 9826277081

डॉ. मधुर नज्मी

कविता में छन्द-लय-प्रयोग : कुछ प्रश्न-कुछ उत्तर

छन्द में कविता रचना, भाषा और शब्द का अनुशासन सिखाता है। छन्द-मुक्त कविता के लिए छन्द की कविता के मुकाबले कहीं अधिक भाषा और छन्द का 'अनुशासन' चाहिये। इस सम्यक 'अनुशासन' का प्रशिक्षण छन्द-कविता से शुरू होता है। छन्द की कविता भारतीय लोक मन से जुड़ी हुई हैं। सूर, तुलसी, कबीर से महादेवी वर्मा तक साहित्य का विद्यार्थी छन्द के ही माध्यम से कविता से परिचित होता है। छान्दसिक 'तात्विकता' के बगैर किसी भी विधा का साहित्य 'श्रेष्ठ' रचित हो सकेगा। इसमें सन्देह है। अस्ल में, छन्द कविता का कायदा है। छन्दबद्ध अच्छी कविता के शील के प्रति शक करने की गुंजाइश कम होती है, मुक्त कविता के प्रति शक करने की गुंजाइश अधिक होती है। मैं अपने 'भितरीले' का छन्द-कविता से अधिक जुड़ा हुआ महसूस करता हूँ। यहीं जुड़ाव जैसे था, है, रहेगा। 'गीत ज़िन्दा है' संज्ञक काव्य-कृति में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. जीवन प्रकाश जोशी का आत्मनेपद के अन्तर्गत विचार संदर्भित विषय की वैचारिक ज़मीन को भरपूर रसपूर करता हुआ, छन्द और लय की सत्ता, रसवत्ता नकारने वालों की 'सोच' को दिशा प्रदायित करता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव में, जो फैशनीतौर पर अनुकरण की सावातिक प्रवृत्ति आकारित-विस्तारित हुई, उससे कविता की कायिक कस्तूरी कुम्हला गयी। कैसी विडम्बना है कि छन्द की शाश्वत 'संजीवनी' को स्वीकारते तो सभी हैं किन्तु साहित्यिक अवसरों पर अपने-अपने 'गोवर्द्धनों' शिविरों की सुधि आते ही छान्दसिक कविता के प्रति खड्ग हस्त हो जाते हैं और छान्दसिक कविता के प्रति कातिलाना बयान देने लगते हैं। ऐसे वरिष्ठ समालोचकों नव समीक्षकों और 'अर्थ की लय' पर कुंठित महात्मकता थोपने वालों की 'ऑक्टोपसी दृष्टि' में छन्द में कविता करने वाला अछूत लगने लगता है। अनिवार्यता इस बात की है कि ऐसे पूर्वाग्रही समीक्षकों की आँख का मोतियाबिन्द कटे और कविता की छान्दसिक 'तात्विकता' का सदाशयी पथ सम्बलित हो जिसमें 'दृष्टि' अधिक और कोण कम हो। नैबन्धिक पैटर्न पर प्रस्तुत इस 'प्रश्नवार्ता' में मेरे प्रश्न और साहित्यकारों के उत्तर, पर्त-दर-पर्त, खुलते जायेंगे और मर्मी पाठकों को विषय की गहराई तक ले जायेंगे। ऐसा मुझे विश्वास है।

हिन्दी नवगीत के प्रमुख वरिष्ठ कवि डॉ. उमाशंकर तिवारी इस सवाल पर अपना अभिमत देते हुए कहते हैं : - ''लय से अलग कविता की स्थिति असंभव है। लय के बगैर कविता हो सकती है, यह कहना उसी तरह निरर्थक है, जैसे यह कहा जाये कि बिना रक्त के प्रवाह के शरीर की गति संभव है, कविता मानवीय कला है। उदाहरणार्थ कुम्हार के चाक पर चढ़ने से पहले जो चीज सिर्फ़ गीली मिट्टी है, वही उसके हाथों के 'लयात्मक संस्पर्श' से सुन्दर मूर्ति का रूपाकार ग्रहण करती है। मूर्ति बन जाने के बाद ही वह मिट्टी लोगों के सौन्दर्य-सुख से और उपयोग के नाते, 'शिवत्व' और तभी वह कला का दर्जा प्राप्त कर पाती है। मतलब यह कि गीली मिट्टी को सुन्दर मूर्ति के स्वरूप तक पहुँचाने में चाक की गति और कुम्हार के हाथों के

'लयात्मक संस्पर्श' का हाथ है। इस प्रकार काव्य रचना में भी माध्यम के कलात्मक उपयोग या 'रिप्रमिक सेटिंग' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मुझे तो यही लगता है कि 'रिपुमिक सेटिंग' करने के लिए कुम्हार का जादुई हाथ है, जिसके संतुलित तौर सचेतन संस्पर्श से 'कविता' सुन्दर, उपयोगी और सम्प्रेष्य बनती है। ऐसी स्थिति में, यदि बगैर चाक पर चढ़ाये ही यह कहा जाये कि मिट्टी के लौंदे को ही मूर्ति या 'कविता' समझो तो इस ज़बरदस्ती का कोई जवाब नहीं : जन्म से लेकर मृत्यु-काल तक 'आम आदमी' विभिन्न उत्सवों, त्यौहारों, रीतियों, संस्कारों में भी वह तुलसी, सूर, कबीर, मीरा की लययुक्त कविताओं का ही प्रयोग करता है। दिल्ली और भोपाल के कारखानों में ढली हुई पंक्तियाँ तो उसकी ज़बान पर चढ़ती ही नहीं : हजारों वर्षों का इतिहास 'लयात्मक कविता' ही को रेखांकित-परिभाषित करता है। भारतीय मनीषा के लिये समूची सृष्टि ही लयात्मक है। बगैर 'लय' के न कविता संभव हुई है, न होगी।''

प्रखर समीक्षक, कवि, कथाकार डॉ. वेद प्रकाश 'अमिताभ' विषय की पड़ताल में, अपना विचार प्रस्तुत करते हुए पत्र में लिखते हैं- ''छन्द, कविता के लिये अनिवार्य और अपरिहार्य ही है- यह बात पिछले चालीस वर्षों की कविता से प्रमाणित है। मुक्त छन्द में भी बहुत अच्छी कविताएँ लिखी गयी हैं और बहुत-सी छन्दोबद्ध रचनाएँ दोयम दर्जे की हैं। इसके ठीक विपरीत उदाहरण भी मिलते हैं। इतना निश्चित है कि 'छन्द' के अभाव ने, काव्य के पाठकों की संख्या को कम किया है लेकिन यह भी गौरतलब है कि पिछले कई दशकों में नवगीतों और ग़ज़लों के रूप में जो छन्दोबद्ध काव्य-रचना आयी है, क्या वह पाठकों की संख्या बढ़ाने में कामयाब हुई है? स्तरीय कविता के पाठक हमेशा कम रहे हैं यदि काव्य मंचों पर पढ़ी जा रही सतही, तुकाश्रित कविताओं की लोकप्रियता को 'छन्द' की महत्ता का सूचक मान लिया जाये तो यह उचित न होगा। वैसे छन्द की उपस्थिति में काव्य के कंठस्थ होने, शीघ्रता से प्रसारित होने की संभावना बढ़ जाती है। अर्थात् कहा जा सकता है कि छन्द कविता की संप्रेषण शक्ति को बढ़ा देता है। कभी छन्द की अनिवार्यता ने सहज अभिव्यक्ति के मार्ग में रोड़े अटकाए थे और बहुत से कवियों ने छन्द से मुक्ति में ही कविता की मुक्ति देखी थी। आज छन्द मुक्तता कविता की मुक्ति में बाधक हो रही है। छन्द ज्ञान अनिवार्य न होने से बहुत से कु-कवि हिन्दी-कविता की 'छीछालेदर' करते दिखाई पड़ रहे हैं। पंत, निराला, अज्ञेय आदि कवि छन्द के अनुशासन से गुजर कर मुक्त छन्द की कविता की ओर आये थे। उन्होंने मुक्त छन्द की 'असाध्य वीणा' को अन्ततः साध भी लिया था, लेकिन पिछले दो तीन दशकों में बहुत से कवियों ने मुक्त-छन्द के नाम पर गद्य परोसा है। ऐसी स्थिति में 'छन्द की वापसी' की बात बेमानी नहीं है कि किन्तु छन्द को अतिरिक्त महत्त्व देने की जरूरत भी नहीं है। मुख्य चीज़ है 'कविता में' रागतत्त्व और संवेदना की सुरक्षा। कविता में छन्द के प्रति सचेत रहना ज़रूरी है। इधर के गीतों और ग़ज़लों में, जिस तरह से अधपके विचारों को परोसा जा रहा है, वह चिन्त्य है। छन्द की वापसी तभी सार्थक है, जब कविता बुनियादी सरोकारों से जुड़ी रहे और उसका काव्यत्व सुरक्षित रहे।

'नवगीत' में लोक-संवेदना के हिमायती कविवर गुलाब सिंह ने विषय को भरपूर 'कथार्सिस' करते हुए अपना अभिमत इस प्रकार प्रस्तुत किया ''मुक्त छन्द की कविता और छन्द मुक्त कविता के बाद भी अगर यह प्रश्न प्रासंगिक लग रहा है तो शायद इस लिये कि सारे प्रवाह के बीच भी छंदासिक रचनाएँ अदृश्य नहीं हो सकी : जिन लोगों ने कविता को 'प्रास-रजत-पाश' से मुक्त होते और छन्दों की पायलें उतरते देखा था। हिन्दी के सहयात्रियों ने नयी कविता अन्त तक की घोषणाएँ सुनीं। इधर की तमाम रचनाओं ने प्रमाणित

करने की कोशिश की है कि 'छन्द' कविता का अनिवार्य तत्त्व नहीं है क्योंकि मुक्त छन्द में भी बहुत सी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखी गयी हैं लेकिन इसी के साथ दूसरा सच यह भी है कि छन्द कविता एक उपयोगी और आकर्षक तत्त्व है जिसे निरस्त करने अथवा मानने के सारे प्रयत्न निष्फल हो चुके हैं। यह बात दूसरी है कि छान्दसिक रचनाओं से जुड़े लोग जिस ईमानदारी के साथ अनेक महत्त्वपूर्ण छन्दहीन कविताओं को स्वीकृति देते हैं, वहीं ईमानदारी दूसरे पक्ष में पहुँचकर, गले की हड्डी बन जाती है और वे छन्दोबद्ध रचनाओं को भूलकर भी सफल, प्रभावशाली, या महत्त्वपूर्ण रचना देखने का कष्ट नहीं उठाते क्योंकि ऊँची तख्तियाँ लगाकर बैठे जिस समीक्षकों के पक्षधर हाथ उनकी पीठ पर हैं, उनके हट जाने का डर, उन्हें छन्द देखते ही नाक-भौं सिकोड़ने को प्रशिक्षित करता रहा है।

'छन्द मुक्त कविता' 'मुक्त-छन्द की कविता' 'छन्दहीन कविता' जैसे चाहे जितन शक-सग्र गढ़े जाएँ 'छन्द' और 'कविता' इन दोनों से मुक्त होने का प्रयास 'कवि' होने पर प्रश्न-चिह्न लगा देता है। गीत और नाटक, लोक मानस तक पहुँचने के लिये, अत्यन्त अजरिवत सक्षम साहित्य-विधाएँ हैं। गीतों का श्रुति संवाद अथवा भव्यता की 'तात्त्विकता' उन्हें लोक जीवी बनाती है। छन्द से सरोकार तोड़ने का अर्थ होगा, हिन्दी कविता की एक सुदीर्घ कालजयी परम्परा से कट जाना। 'छन्द' कविता का कुर्त्ता, धोती, साफा, पगड़ी है जिन्हें कोट, पतलून, हैट-टाई पसन्द हैं, उन पर कोई प्रतिबन्ध भी नहीं है।''

गीत, ग़ज़ल, समकालीन कविता की वरिष्ठ कवयित्री डॉ. मधुरिमा सिंह ने अपनी बात एक व्यंग्यात्मक टिप्पणी से कही, ''यह छन्द-कविता का प्रताप है कि एक भीख माँगने वाला भी सूर, तुलसी, कबीर, मीरा की कविता पढ़कर, शाम तक अपनी रोटी का जुगाड़ कर लेता है, छन्द विहीन कविता से उसे दो जून की रोटी भी नसीब नहीं होगी।''

साठोत्तरी कविता पीढ़ी के वरिष्ठ कवि, समीक्षक डॉ. ललित शुक्ल अपने संक्षिप्त उत्तर में काफी संयमित दिखे। उनका विचार एक समन्वयक सा विषय की गहराई ऊँचाई का संस्पर्श करता है। ''छन्द एक प्रकार का अनुशासन है या यूँ कहिये, कि 'छन्द' कविता का व्याकरण है जैसे पहले भाषा बनती है बाद में उसका व्याकरण बनता है। वैसे ही छन्द का नम्बर बाद में आता है। यदि बिना छन्द के कविता में 'अनुशासन' बना रहता है तो 'छन्द' की अनिवार्यता ठीक नहीं होती, जब छन्दन्ता कोप-भाजन बनी थी, लीक पर चलने वालों ने बहुत कुछ कहा था। यदि छन्द के कटघरे में कविता का दम घुटता है तो उसे बाहर लाने में ही कवि की खैर है। मैं तो मानता हूँ कि बगैर छन्द की जानकारी के छन्दहीन कविता नहीं लिखी जा सकती।

सवाल छन्द होने या न होने का नहीं है सवाल है कि कवि की बात संप्रेषित होने का, यदि कवि की बात बगैर छन्द के आसानी से श्रोता-पाठक तक पहुँच रही है तो छन्द का बन्धन उचित नहीं है। असल बात यह है कि यदि कविता स्तरीय होगी तो छन्द किसी न किसी रूप में होगा। मेरी एक कविता है ''राजा तुम हजार/दस हज़ार/दस लाख/दस करोड़/की ज़बान दे सकते हो/काश! तुम्हारे पास ज़बान होती' मैथिलीशरण गुप्त ने कवित्त को तोड़कर 'सिद्धराज' लिखा था। जब तक बारीकी से न देखिये, पता नहीं चलता कि 'सिद्धराज' का प्रयोग किया गया है। यदि कविता अन्तस को भेद कर आयी है तो अपना रास्ता खोज लेगी। छन्द एक रास्ता ही तो है और छन्द भी वही है। महत्त्वपूर्ण कविता है। छन्द नहीं पद्धतियाँ तो परिवर्तित होती रहती हैं।''

सम्पर्क : *मुहम्मदाबाद, मऊ (उ.प्र.)*
मो. 9389973494

सविता दास सवि

सृष्टि से प्रलय तक

वो पास बैठा हो
तो बारिश भी
ज़मीन पर
थिरकती नज़र
आती है...
पानी के उन
बुलबलों में
अपनी भी
कहानी नज़र
आती है
मिट्टी की
सौंधी महक
काया में समाहित
हो जाती है जब
धड़कन थोड़ी और
बढ़ सी जाती है
कितना अजीब है
ये विशाल नभ भी
प्रेम के बादलों को
सँजो कर नहीं रख
सकता
धरा पर बरस कर
निवेदन कर ही
देता है अपने
आसक्ती का
तुम पास बैठ कर
अब भी सोचते हो
प्रेम बरस गया तो
फिर क्या रह जायेगा
मैं फिर समझाऊँगी
कि प्रेम फिर मेरे मन में
वाष्प बन कर तुम्हारे
मन के नभ में छाएगा
सृष्टि से प्रलय तक
बस यही चलता
रह जाएगा...

फर्क

नींद की चौखट पर
सपने इंतज़ार कर रहे हैं
पर किसी के न सोने से
रात को फर्क पड़ता है क्या,
सपनों में रूठ कर तुमसे
खुद को मना लूँगी मैं
मेरे न मानने से भी
तुम्हे फर्क पड़ता है क्या,
शर्त तो नहीं थी रिश्ते में
रूठने मनाने की
पर कोई भी उसूल बनाने से
रिश्तों को फर्क पड़ता है क्या,
माना उसूल भी जरूरी नहीं

और तुम्हारा हाथ पकड़
रोकने की भी मेरी हिम्मत नहीं
पर किसी एक के चले जाने से
दूसरे को फर्क पड़ता है क्या,
चले जाएँगे एक दिन सभी यहाँ
जीने की वजह भी बदलती जाएगी
किसी दिन किसी लम्हे साँस थम जाएगी
ये जानकर भी...
ज़िंदगी को फर्क पड़ता है क्या

कठिन हो राह संघर्ष की

कुछ कोशिशें बेकार हों
जरूरी नहीं सब असरदार हों
कठिन हो राह संघर्ष की
और सफलता शानदार हो...

जीवन का लक्ष्य पाने को
क्यों खँगालें इतिहास को
बन सकता है आदर्श तू भी
बस खुद से वफादार हो

आवेग जब शस्त्र बन जाए
निराशा भी दिशा बन जाए
दम तोड़ देती है हर मुश्किल
जब हौसलों का पलटवार हो।

ना कोस अब हालातों को
देख क्या है निभाने को
कर्तव्य हो या रिश्ते हों
बस खुद ही जिम्मेदार हो
कठिन हो राह संघर्ष की
और सफलता शानदार हो...

वल्लरी

कोमलांगी वल्लरी
नहीं होती क्लान्त
अपने विस्तार से
सहारा कोई भी
मिल जाए तो
पनपती है निरन्तर
फल-पुष्प लिए,
उसकी संतुष्टि
उसका समर्पण,
परिस्फुट होने मात्र
में है, तनकर रहना
उसकी काया को
प्राप्त नहीं और ना
पाना चाहती है वह
ऊँचाइयों को छूने
का वरदान,
अपनी इसी अपूर्णता में
कितनी सम्पूर्ण है वल्लरी
अहं का अवसर भी
दे दिया उसने उदारता से
वटवृक्षों को...

सम्पर्क : *शोणितपुर (असम)*
मो. 9435631938

गिरेन्द्र सिंह भदौरिया 'प्राण'

भारत का कीर्ति नाद

ऋषि मुनियों का देश यहाँ पर मेघ सुधा बरसाते।
स्वर्ग त्याग देवता कुटी में बसने को ललचाते।।

कवियों की यह धरा जहाँ भावना उछल उठती है।
यहाँ सृजन के लिए स्वयं लेखनी मचल उठती है।।

अविनाशी वह ब्रह्म यहाँ कर-कर लीला मिटता है।
ले-ले कर अवतार खुशी से बार-बार पिटता है।।

नदियाँ गातीं गीत यहाँ हर झरना भजन सुनाता।
इसीलिए प्राणों से प्यारी लगती भारत माता।।1।।

जिसके बच्चे बचपन से ही रण रचना करते हैं।
जबड़े पकड़ बबर सिंहों के दाँत गिना करते हैं।।

कच्ची कली खेलती हँसती मर्दानी बन जाती।
अबला बाला रण में झाँसी की रानी बन जाती।।

मरे हुए पति को जीवित करने को अड़ जाती हैं।
यहाँ नारियाँ सत के बल पर यम से भिड़ जाती हैं।

यहाँ प्रकृति की हँसी देखकर मुकुलित मन इतराता।
इसीलिए प्राणों से प्यारी लगती भारत माता।।2।।

सपने में भी दिये वचन का जहाँ मान होता है।
शरणागत के लिए स्वयं का प्राण दान होता है।।

जहाँ वीरता सूरज को मुख में रख जी सकती है।
जहाँ तपस्या महासिन्धु को गट-गट पी सकती है।।

वर को कन्या दान पितर को पिण्डदान होता है।।
यहीं जगत हित कालकूट विष जान पान होता है।।

यहाँ ज्ञान विज्ञान अँधेरों में भी राह दिखाता।
इसीलिए प्राणों से प्यारी लगती भारत माता।।3।।

जब वन्दे मातरम् गीत को हम सब मिल दुहराते।
साँस-साँस में देशभक्ति के भाव उमड़ते आते।।

प्राण हथेली पर रखकर जब वीर चला करता है।
भाँप इरादे बैरी क्या ब्रह्माण्ड हिला करता है।।

सागर के सीने तक में अरमान यहाँ पलते हैं।
स्वाभिमान के दीप हमारी रग-रग में जलते हैं।।

यहाँ तिरंगा जन-गण-मन सुन लहर-लहर लहराता।
इसीलिए प्राणों से प्यारी लगती भारत माता।।4।।

हिन्दुस्थान

क्या नहीं हमारी धरती पर, बोलो किसको अभिमान नहीं।
हैं देश बहुत से दुनिया में, पर हिन्दुस्थान समान नहीं।।

जबड़े सिंहों के फाड़ दन्त, गिनने वाले गोपाल यहाँ।
लक्ष्मीबाई सी लली कई, राणा प्रताप से लाल यहाँ।।

हैं वीर शिवाजी से योद्धा, सांगा जैसी करवाल यहाँ।
सरदार भगत से बलिदानी, पन्ना जैसी प्रतिपाल यहाँ।।

सीता सावित्री अनुसुइया, पद्मिनी अवन्ती झलकारी।
इतिहास बताता है हमको, भारत की हर नारी न्यारी।।

हैं चार वेद छह शास्त्र यहाँ, अष्टादश विपुल पुराण तलक।
गीता रामायण उपनिषदें, पूजे जाते पाषाण तलक।।

है नहीं तिरंगे सा परचम, है राष्ट्र गान सा गान नहीं।
कश्मीर सरीखा स्वर्ग नहीं, मालवा सरीखा मान नहीं।।

सबकी अपनी पहचानें हैं, पर अपनी सी पहचान नहीं।
हैं देश बहुत से दुनिया में, पर हिन्दुस्थान समान नहीं।।1।।

नगराज हिमालय से पर्वत, श्रृंगों की शोभित हर कतार।
खिलते सुमनों की छटा और, रमणीक घाटियों की बहार।।

बलखाती लहराती चलती, गंगा सी नदियाँ सुधा धार।
झरते झरनों की कलल-कलल, उसमें भी अनुपम धुँआँधार।।

पसरी हरियाली खेत-खेत, रेतीली चमक मरुस्थल की।
वन बल्लरियों के मोह पाश, झीलों में खिले कमल दल की।।

पाषाण शिलाएँ तैरा दीं, जिसने सागर के सीने पर।
विश्वास लिए जो जीता है, अपने ही खून पसीने पर।।

हैं महाकाल से महीपाल, विकराल काल के काल यहाँ।
पाताल सरीखे भीम ताल, भोपाल ताल से ताल यहाँ।।

पाँवों में सागर तीन-तीन, ऋतुएँ छः एक समान नहीं।
हर ओर सुहाने मौसम हैं, अकुलाहट नाम निशान नहीं।।

सभ्यता संस्कृति में मिलता, अपनापन पर अपमान नहीं।
हैं देश बहुत से दुनिया में, पर हिन्दुस्थान समान नहीं।।2।।

धोती कुर्ता गमछा साफा पगड़ी धरती पर कहीं नहीं।
साड़ी सेंदुर चुनरी बिन्दी मेंहदी न महावर कहीं नहीं।।

करता है कोई जय जिनेन्द्र, कोई जुहार मुज़रा सलाम।
सतश्रीअकाल राधे-राधे, हरिओम राम जय सियाराम।

मीठी-मीठी भाषाओं में, सबके सम्बोधन अलग-अलग।
तन के पटशोभन अलग-अलग, मन के मनमोहन अलग-अलग।।

हर धर्म जाति हर वर्ग पन्थ, हर नगर गाँव डग अलग-अलग।
फिर भी हम बँधे एकता में, हम साथ-साथ भी अलग-अलग।।

करते हम दिल से मानपान, हमसे होता अपमान नहीं।
दुश्मन तक आकर कहते हैं, भारत जैसा सम्मान नहीं।।

संस्कृति के इतने विविध रूप, मिलते ऐसे परिधान नहीं।
हैं देश बहुत से दुनिया में, पर हिन्दुस्थान समान नहीं।।3।।

तुलसी कबीर रैदास सूर, मीरा रहीम रसखान यहाँ।
जगनिक वरदाई सरहपाद, खुसरो दलपति नरनाल्ह कहाँ।।

सुब्रह्मण्यम शंकराचार्य, विद्यापति शंकर दयाराम।
ग़ालिब फिराक सारलादास, पद्माकर भूषण तुकाराम।।

नीरज शिशु वल्लभ घनानंद, मतिराम बिहारी ज्ञानदेव।
छीतस्वामी तिरु वल्लूवर, सेनापति केशव गंग देव।।

रसलीन रवीन्द्र नाथ तिक्कन, नानक नरसी पोन्ना कंबन।
जयशंकर पन्त महादेवी, दुष्यन्त निराला सरल सुमन।।

दण्डी भारवि भवभूति भोज, जयदेव माघ कल्हण विल्हण।
कवि कालिदास नन्नाय बाण, दिनकर बच्चन मैथिली शरण।।

रत्नाकर प्राण प्रपन्न देश, उन्मुक्त किन्तु प्रच्छन्न देश।
आधारों पर आसन्न देश, परमाणु शक्ति सम्पन्न देश।।

जो मिला न हो इस धरती को, ऐसा कोई वरदान नहीं।
हैं देश बहुत से दुनिया में, पर हिन्दुस्थान समान नहीं।।4।।

सम्पर्क : *इन्दौर (म.प्र.)*
मो. 9424044284, 6265196070

दुष्यंत दीक्षित

चौपट नगरी

चौपट नगरी का स्वभाव,
बिकता है सब वोट भाव।।

नव अंधेर नगर की मित्रो,
कहता नयी कथायें।
राष्ट्र ध्येय पीछे छूटा है,
आमन्त्रित विपदाएँ।
बँधी पट्टियाँ नृपति नयन पर,
दूर देख क्या पायें?
लोकतंत्र में सत्ता की वे
केवल दौड़ लगायें।
बिकता है सब वोट भाव!

सजी स्वतंत्रता है बिकने को,
सजी जगत समतायें।
सत्ता का उद्देश्य भला क्या,
कौन उन्हें समझाए?
चौपट है बन्धुत्व देश का,
कहती विधि धाराएँ।
जाति अस्मिता है बिकने को,
मोल भला क्या पायें?
बिकता है सब वोट भाव!

गजभर की जिनकी छाती थी,
धमकी से घबराये।
वादे बड़े-बड़े करते थे,
पूरे क्या कर पाए?
जिनसे उम्मीदे थी मन भर,
उनसे धोखे खाये।
छब्बे बनने गए चौबे जी,
लौट दुबे हो आये।
बिकता है सब वोट भाव।

आदमी के पंख होते

भीड़ होती गगन में तब
वृक्ष में बहु नीड़ होते,
सिमिट जाती दूरियाँ भी
रोक पाती कब नदी पथ,
तुंग गिर भी विजित होते
आदमी के पंख होते ....!

राष्ट्र की सीमा न होती
मूल्य अपना धरा खोती,
सिंधु में होती न नावें
तब न होते अश्व गज रथ,
काव्य कितने अकथ होते
आदमी के पंख होते...!

धर्म होती बस उड़ानें
वणिज होता राम जाने,
सब प्रवासी मनुज होते
नापते फिरते धरा को,
युद्ध शायद यूँ न होते
आदमी के पंख होते ...!

माँगता कोई न भिक्षा,
बस उड़ानों की ही शिक्षा
देव वासी भू के होते
साम्य होता प्रकृतिगत ही,
न अनय का बोझ ढोते
आदमी के पंख होते...!

पक्षियों से चहचहाते
गीत स्वर मिल एक गाते,
धूल होते स्वर्ण मोती
आँधियों से भीत होती,
किंतु धीरज हम न खोते
आदमी के पंख होते... !

पंख नर के रूप होते
मूल्य अपना नर न खोते
मन सभी के शुद्ध होते
स्वच्छ होती वायु भी सब
वृक्ष ही सब भू पे बोते
आदमी के पंख होते ... !

स्वप्न फिर से नव सजाएँ
भावना के पंख लायें,
पाट कर माया की खाई
ले नई फिर से उड़ानें,
फिर लगायें गगन गोते
आदमी के पंख होते ... !

आ जाओ सत्य तुम्हारा स्वागत है

मैंने परिशीलन किया तुम्हारा युग-युग से,
शाश्वत अपराजित तुमको पाया है।
देदीप्यमान तुम रहे सदा दिनकर से,
आवृत कब कर सकी तुम्हें मेघ छाया है।

तुम चले निरंतर थके कहाँ हो अब तक,
पथ ने कितने भी कंटक भले बिछाए हों!
मोहित न कर सकी कोई विश्वमोहिनी भी,
माया ने कितने भी छल रूप सजाये हों।

जिसको न क्लान्त कर सका विगत,
क्यों उसके आलंबन से सकुचा आगत है?
मत कहीं ठिठक रुक जाना देख जगत,
आ जाओ सत्य तुम्हारा स्वागत है... ।

तुम वेद ऋचाओं में भी तो गूँजे थे,
उपनिषदों ने भी अर्थ तुम्हारा गाया था।
तुम क्रोंच पक्षी के वध से बने रामायण,
गीता में हरि ने फिर-फिर तुमको गाया था।

बन कर तुम आये गौतम महावीर,
बस हेतु तुम्हारा जन कल्याण रहा
तुम निरत रहे जग को सतपथ बतलाने में,
हर युग में उद्देश्य एक निर्वाण रहा।

हाँ कलियुग ने स्वर्ण मुकुट पाकर,
कोशिश तो की है तुम्हें थकाने की।
मिल गयी भले हो छुद्र सफलता भी,
माया का बल पा पथ भरमाने की।

तुम रहे अमर फिर शंकर कबीर वाणी में,
आहत होकर भी घटी न पर ताकत है।
कलि के कुरूप को देख नहीं रुक जाना,
आ जाओ सत्य तुम्हारा स्वागत है... ।

होंगे छल झूठ प्रपंचक पूजक वो,
हमने सच के हित बंधनवार सजाये हैं।
हम जिये जगत में लेकर के सत का व्रत,
सत्य के लिए मृत्यु की आहुति देते आये हैं।

हमने सत हित में सीखा जीना मरना,
परमार्थ पूण्य का एक हेतु माना है।
अंतर में बजते रहे नित्य रण बाजे,
छीजना न रुकना थकना जाना है।

जल रही अभी तक धर्म शिखा जग में,
मन का विवेक और शील अभी जाग्रत है।
तुमको बन नेह दीप जगत में है जलना,
आ जाओ सत्य तुम्हारा स्वागत है...।

यह नहीं प्रश्न तेरा मेरा या उनका है,
हर नर के अंतर की छिड़ी लड़ाई है।
हर युग को लगा अनोखा अपने युग में,
सबको लगती जैसे नव अँगड़ाई है।

लेकिन सबका हल एक उभयनिष्ठ,
सब खोज रहे इसको अंधे के हाथी सा!
सबने अपने-अपने हिस्से को ही सच माना,
प्यासे व्याकुल मरु के मृग आभासी सा!

लेकिन अंतिम परणित तो होगी पूर्ण सत्य,
निश्चय अविचल यह मेरा दृढ़ मत है।
इसलिए खड़ा हूँ मैं स्वागत आतुर,
आ जाओ सत्य तुम्हारा स्वागत है...।

सम्पर्क : *ग्वालियर (म.प्र.)*
मो. 9425115862

अंकित शर्मा 'इशुप्रिय'

देव वंदित भूमि

हे देव वंदित भूमि! भारत की तुम्हें क्षण-क्षण नमन।
हे बीजभूता विश्व की! गतिशीलता जग की नमन।।

श्रम-स्वेद से सिंचित,
शरीरों से सदा परिपूर्ण हो।
हो न्यूनता से रिक्त-कर,
तुम हर चरण संपूर्ण हो।

विष बेलियों का नर मनों से नित्य करती हो शमन।
हे देव वंदित भूमि! भारत की तुम्हें क्षण-क्षण नमन।

शीतोष्ण में समता समाये,
हैं सजग प्रहरी खड़े।
अस्तित्व अपना भूल तेरे,
मान-रक्षण में अड़े।

हैं सुत सदा तत्पर चरण में प्राण का करने हवन।
हे देव वंदित भूमि! भारत की तुम्हें क्षण-क्षण नमन।

है ज्ञान से स्तुत्य यश,
अनुपम कलाओं की छटा।
तव कीर्ति में नरमुण्ड-पुष्पों के
रखे हैं सिर कटा।

अनवरत गौरव तुम्हारे का रहा साक्षी पवन।
हे देव वंदित भूमि! भारत की तुम्हें क्षण-क्षण नमन।

सम्पर्क : *सबलगढ़, मुरैना(म.प्र.)*

डॉ. योगेंद्र नाथ शुक्ल

कालचक्र

सोचा था बनूँगा
एक श्रेष्ठ
ज्येष्ठ उपन्यास
नहीं बन पाया।
फिर सोचा बनूँगा
एक कालजई
जमीनी, कहानी
नहीं बन पाया।
फिर सोचा बनूँगा
एक अद्वितीय
अनुपम लघुकथा
नहीं बन पाया।
कालचक्र के भँवर में
फँसा ऐसा
कि बन कर रह गया
इनका पात्र, मात्र!

कितने नादान हैं लोग

तथाकथित लोग
जीते जी लिख रहे
इतिहास खुद का!
जीते जी बना रहे
मूर्ति खुद की!
कितने नादान हैं लोग
नहीं जानते!
जो नहीं बहता हवा में
जो खुद हवा बन करता
कोशिश हवा को बदलने की
वह होता दर्ज इतिहास में
जो सत्य के लिए
होता घायल लाठियों से
जो समाज के उत्कर्ष के लिए
जाता कारागृह
वह होता दर्ज इतिहास में
कितने नादान हैं लोग
नहीं जानते!
जो न्याय पथ पर
कर्मयोगी सा चलता
जो खुद को, खुद से
ऊँचा उठाता
वह होता दर्ज इतिहास में।

मेरे प्यारे मित्रों

मेरे प्यारे मित्रों!
जन्मदिवस पर मेरे
आ रही तुम्हारी बधाइयाँ
गुलदस्ते के साथ
आ रही तुम्हारी शुभकामना
सुंदर फूलों के साथ
किंतु पड़ा हूँ मैं
अस्पताल के बिस्तर पर
पिछले बीस दिनों से
एकदम अकेला
एक सेमी प्राइवेट वार्ड में
खिड़की से आ रही आवाजें
बता रहीं कि
बाहर चल रहा मेला
मेरे प्यारे मित्रों
तुम जैसे आत्मन
हो इससे अनजान!
कि संघर्ष के इस मुहाने पर
आभास हो रहा मुझे
कि निकलने वाला हूँ मैं
एक अनजान सफर पर!
छोड़कर सांसारिक
और तुम्हारी आभासी दुनिया को!
जानता हूँ मैं
कि फिर एक बार
करोगे तुम जमकर
शब्दों के कौतुक!
भेजोगे, रंग बिरंगे फूल
गुलदस्ते सुंदर
मेरे नहीं रहने के बाद!

सम्पर्क : *इंदौर (म.प्र.)*
मो. 9977547030

रुपाली सक्सेना

वर्दी

भोले बाबा की भस्मी सी है ये वर्दी
जो इसे धारण करे
उसे न लगे गर्मी न ही लगे कभी सर्दी

नापाक इरादों से छूकर तुम
न इसे कभी मलिन करना
गर जज्बा हो देश पर मर मिटने का
तो ही इसे धारण करना

क्यूँकि ये महज कपड़ा नहीं है
वीरों के तन की शान है
गर कर सको कुर्बान खुद को
इस देश की खातिर
तो ही इसे धारण करना

आँखों में आँसुओं का समुंदर छुपा कर
हृदय को वज्र सा कठोर बना कर
हो सको गर अपनों से दूर
तो ही इसे धारण करना

जिन्हें कमाने हों ढेरों रुपये
बेशक वो व्यवसाय करे
राजनीति करे या चाटुकारिता करे
पर जिसे देश हो जीवन से प्यारा
बस वो ही इसे धारण करना

बेशक़ जिसे फर्श से अर्श तक जाना है
वो सीढ़ियों की तलाश करें
पर जिसे खाकी से खाक में है मिलना
बस वो ही इसे धारण करना

माँ भारती की रक्षा की खातिर
गर खेल सको दुश्मनों के खूँ से होली
पहना सको दुश्मनों की मुंड माला
और ओढ़ा सको चुनरिया धानी
तो ही इसे धारण करना

गर बन सको सुभाष चंद्र बोस,
आजाद, खुदी राम बोस
या हरभजन सिंह जो माटी का कर्ज चुका गए
और मर के भी अपनी ड्यूटी निभा गये
तो ही इसे धारण करना

क्यूँकि मिटना तो एक दिन
हम सभी को है
पर खाक में मिट कर भी जो
तिरंगे में सिमट जाए
जिंदगी तो बस वही है
बाकी तो राख ही है
बाकी तो सब खाक ही है
जय हिंद।

जा रहा हूँ मैं

सुनो जा रहा हूँ मैं
माँ भारती की लाज बचाने

तिरंगे का परचम
इस जहाँ में लहराने

अपने होंठों की सुर्ख लाली
कभी कम ना करना

ये माथे की बिंदिया
ये आँखों में कजरा
सदा यू ही रखना

ये पाँव में पायल
ये बालों में गजरा
सदा यूँ ही रखना

मुझे याद करके
अपना दिल उदास ना करना

मैं एक वीर हूँ
सदा गर्व करना
मैं वापस आऊँ
या ना आऊँ
तुम यूँ ही सजना सँवरना

गर वापस ना आया
तो ये वादा तुम करना

गिरा के आँसू
मेरी शहादत को
कभी कम ना करना

माँ भारती की लाज बचाने
मेरे बाद मेरे बेटे को
तैयार रखना

मैं वापस आऊँ या ना आऊँ
तुम यूँ ही सजना सँवरना
जय हिंद जय माँ भारती ।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9826152007

देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

मेरी रचनाएँ...

क्या लिखूँ?..कैसे लिखूँ... किस पर लिखूँ
उन क्लिष्ट शब्दों को कहाँ से लाऊँ
सुना है बड़े पत्र-पत्रिका वाले
साधारण रचनाओं को प्रकाशित करने से
झट से कर देते हैं इंकार
मैं तो हूँ एक साधारण रचनाकार
नहीं कर सकता मैं संपादक से तकरार
बस! रचना को स्थान देने के लिए
कर सकता हूँ मनुहार
फिर कोई उपाय सुझाइए
कि मैं भी अपनी आम रचनाओं को
किसी प्रतिष्ठित पत्रिका में प्रकाशित कराऊँ
मैं भी एक प्रसिद्ध साहित्यकार हो जाऊँ...

सुना है कि साहित्य के भी कई जगह मठ हैं
उनके लब्ध प्रतिष्ठित होते मठाधीश
उनसे जब मिलता है आशीष
तभी प्रतिष्ठित साहित्यकार में शुमार हो पाऊँ...

मैं तो एक साधारण रचनाकार
मेरी रचनाओं में होते हैं गाँव के किसान
खेतों की जुताई, फसलों की मड़ाई
धान के बेहन की बैठवाई, गेहूँ की बुवाई
खेतों में पानी की चलवाई
मेरी कविताओं में होते हैं, खेत खलिहान
बच्चों की कैसे हो अच्छी पढ़ाई-लिखाई
जब न है कोई विशेष कमाई
कैसे हो बूढ़े अम्मा-बाबूजी की दवाई
कैसे पढ़े-लिखे बेरोजगार युवकों को मिले नौकरी
उनके अच्छे हों इम्तिहान
कैसे उनके चेहरे पर आए मुस्कान...

सुना है कि कितना भी बड़ा हो साहित्यकार
अपनी रचनाओं से करता हों चमत्कार
उनके साहित्य से भले ही मिले संस्कृति व संस्कार
पर ऐसे रचनाकार को कभी न मिलता
कोई बड़ा प्रतिष्ठित पुरस्कार
यदि नहीं है कोई बड़ा उसका पैरोकार...

सुना है कि जिन रचनाओं में कठिन शब्द न हों
जिन रचनाओं के एक-एक वाक्य का अर्थ
हाथ में बिना शब्द कोष लिए समझ में न आए
जिनकी प्रशंसा बड़े नामचीन द्वारा न की जाए
वो कैसी भी हो रचनाएँ
अच्छी पत्रिकाओं में जगह न पाएँ
पर ऐसे शब्दों को कहाँ से खोजा जाए...

मैं तो आम जन की पीड़ा, उनके दु:ख दर्द
अपनी रचनाओं में लिख कर
होता हूँ खूब प्रसन्न
जो आम पाठकों द्वारा पढ़ी जाती है
उन पर आम लोगों द्वारा प्रतिक्रियाएँ आती हैं
तो इसी में खुश है मेरा तन-मन
मेरी रचनाओं से यदि
समाज में होता है कुछ परिवर्तन
भले ही मेरी साधारण रचनाएँ
बड़ी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित न हो पाएँ
आम पाठकों का मेरी रचनाओं पर मिलता है प्यार
वही है मेरे लिए सबसे बड़ा प्रतिष्ठित पुरस्कार...

अम्मा की सफेद संदूक...

जब भी उस सफेद संदूक को देखता हूँ
हमें बचपन और अम्मा की याद आने लगती है
अम्मा को उस सफेद संदूक से बहुत लगाव था
उसके लिए माँ के हृदय में बहुत ही सुंदर भाव था
कहीं भी अम्मा बाहर कुछ दिनों के लिए जाती थी
उस में ताला लगा कर सुरक्षित मान कर छोड़ जाती थी
यद्यपि ताले की चाभी बाबू जी के पास रख जाती थी
वापस आने पर बच्चों से प्यार जताने के बाद
अपने उस संदूक को देख कर संतोष पाती थी
तब जाकर किसी से बतियाती थी

वास्तव में उस सफेद संदूक से
उन्हें सचमुच बहुत प्यार था
उस संदूक में भी उनका संसार था
अम्मा अपनी साड़ियाँ और अपने सामान
बाबू जी के, हम भाइयों और बहन के कपड़े
तह कर करीने से रखती थी
संदूक में मेहमानों नाते रिश्तेदारों के लिए
बिस्किट नमकीन और कुछ जरूरी
खाने-पीने के सामान रखे रहते थे
तब गाँवों में बमुश्किल दुकानें होती थीं
शहर तक आने-जाने के साधन उपलब्ध न रहते थे
बरसात के दिनों में तो दो माह घनघोर पानी बरसता था
जल्दी समान कहाँ मिलता था

इसीलिए अम्मा सँभाल कर सामानों को बचाकर
संदूक में सुरक्षित बहुत दिनों तक रखती थी
हम में से कोई उस संदूक को न खोलता था
कोई भी उस संदूक से कोई भी सामान न टटोलता था
कुछ वर्ष पहले अम्मा हम लोगों को छोड़ कर चली गई
बाबू जी का भी स्वर्गवास हो गया

आज कल जब भी उस सफेद संदूक को देखता हूँ
अम्मा की यादों को मन में टटोलता हूँ
न जाने कितनी यादें, न जाने कितनी बातें
बरबस सामने चलचित्र की तरह चलने लगती हैं

आँखों से आँसू अपने आप बहने लगते हैं
आज शहर के बड़े मकान में कई आलमारियाँ हैं
आज तक इन आलमारियों से उतना संबंध न हो सका
जितना उस अम्मा की सफेद संदूक से हमें लगाव है
उसी अम्मा के सफेद संदूक के भीतरी हिस्से से
अम्मा की अनगिनत यादों से कितना जुड़ाव है...

फिर भी हम सभ्य हैं...

आधुनिक दिखने की चारों तरफ मची है होड़
रिश्तों में भी स्वार्थसिद्धि का जोड़-तोड़
अपनी संस्कृति और संस्कार हम दे रहे छोड़
फिर भी कहते हैं, कि हम सभ्य हैं...
साँसों की भी खूब कालाबाजारी
चाहे जितनी थी आपदा और महामारी
प्राणों के साथ ही मानवीयता ने भी दम तोड़ दिया
आपदा में भी कमाने का अवसर खोज लिया
फिर भी कहते हैं, कि हम सभ्य हैं...

सत्ता की बनी रहे गँठजोड़
कैसे भी करो तोड़ मरोड़
जो आवाज़ उठाए, उसका माथा फोड़
खोटे सिक्के को भी लो जोड़
लोग करें मेरी जय जय कार
कैसे भी बने मेरी सरकार
फिर भी कहते हैं, कि हम सभ्य हैं...

योग्यता का कहीं नहीं सम्मान
भाई भतीजावाद है सर्वत्र शक्तिमान

चापलूसी के बदौलत होता गुणगान
अत्याचार अन्याय अराजकता विराजमान
क्या इसी के लिए बना था संविधान
फिर भी देश में लोकतंत्र महान
फिर भी कहते हैं, कि हम सभ्य हैं...

माँ और नई साड़ी...

मेरे पिता गाँव में रहने वाले
एक साधारण किसान थे
हमारे पास दो बैल और एक गाय भी थी
खेती किसानी से ही हमारा घर चलता था
हम लोगों की पढ़ाई-लिखाई, दवा का खर्चा
इसी खेती किसानी पर पलता था

पिता जी का सपना था
हम लोग पढ़-लिख कर कोई नौकरी पा जाएँ
घर की दशा और दिशा बदल जाए
मेरी माँ साधारण पढ़ी-लिखी गृहिणी थी
पिता जी को खर्च से परेशान देख
माँ अपने लिए कभी कुछ नहीं कहती थी
कभी साड़ी, क्रीम, पाउडर या अन्य मेकअप के सामानों की डिमांड
पिता जी से नहीं करती थी

छोटे मामा की इस बार जून माह में शादी थी
माँ को नई साड़ी खरीदने की इच्छा थी
पिता जी को बमुश्किल अपनी इच्छा बताई
पिता जी ने वादा किया कि
गेहूँ की फसल पक कर तैयार है
कटते ही गेहूँ बेचकर साड़ी लाऊँगा
इस बार पक्का इरादा है, कि वादा निभाऊँगा

गेहूँ कटते ही जिस दिन पिता जी गेहूँ बेचने वाले थे
और माँ के लिए नई साड़ी खरीदकर लाने वाले थे
उसी दिन गाय पड़ गई बीमार
गाय का बिन पैसे कैसे हो उपचार
गेहूँ बेचकर पैसा आया
माँ के लिए साड़ी लाएँ या गाय की दवा कराएँ
इतना पैसा नहीं था कि दोनों काम हो जाएँ

पिता जी बड़े असमंजस में थे
माँ ने पिता जी की चिंता को देख झट निर्णय लिया
गाय बेजुबान है, दवा न कराने पर बेजान हो जाएगी
साड़ी तो फिर कभी खरीद ली जाएगी
गाय की जान बच जाएगी
माँ ने पिता जी से कहा
वो छोटे मामा की शादी में
पुरानी साड़ी ही पहन कर चली जाएगी...

सम्पर्क : *भवानीपुर, बस्ती (उ. प्र.)*
मो. 7355309428

यामिनी नयन गुप्ता

रक्तबीज

अफगानिस्तान में
सत्ता हस्तांतरण
एक मानवीय संकट है
फिर भी दुनिया खामोश है
हथियार बेचने वाले खुश हैं
बाजार खुल चुका है,
बंदूकों के सामने बंद हो जाती है जुबानें
ध्वस्त हो जाते हैं प्रतिरोध के उपक्रम
शुतुरमुर्ग की तरह पेट में सिर छुपाकर बैठ जाने से
दरवाजे पर दस्तक देते ख़तरे कम नहीं हो जाते।

मूक दर्शन बने रहने से
मौन हो जाते हैं सब विमर्श
मानवाधिकार के नियम कानून हो जाते हैं थोथे
ये चुप्पी एक रोज दुनिया कर देगी तबाह
दर्शक होने से पीड़ित होने तक के सफर पर
बढ़ चले हैं हम
निरंकुशता के जश्न में
जनता का किरदार होता है शून्य
फकत् दृष्टा और भुक्तभोगी भर का।

पूरे के पूरे देश आग में झोंक दिये गए
हत्यारों की बिक्री
चुप्पी में छुपा स्वार्थ
वर्चस्व की लड़ाई
बलात् सत्ता परिवर्तन के परिणाम
सदा से स्त्रीजात पर ही पड़ते हैं भारी,
माल-असबाब समझे जाने की लाचारी
लील जाती है उनके जीवित रहने की प्रत्याशा
नर्क से बदतर जीवन जीने को अभिशप्त हैं।

गजब धर्म है
धर्म की स्थापना के लिए मार रहे हैं
अपने ही धर्म के लोगों को
भाग रहे हैं... बिलबिला रहे हैं
उन्हें तो स्वागत करना चाहिए तालिबानी कानूनों का,
पास के मुल्क में आग लगी हो तो
हाथ सेंकने की रवायत कर देगी सब कुछ खाक
आदिम सभ्यता को मेट देने की करतूतों का
खामियाजा भुगतेगा सारा विश्व।

मूक दर्शकों की जमात जो हर मुद्दे पर रहते थे मुखर
सबके मुँह सिले हैं जैसे मौन पसरा है
इतिहास खुद को दोहराता ही है
पर अफसोस!
हम कभी इतिहास से कोई सीख नहीं लेते
वैश्विक घटनाओं पर तटस्थता की
दुनिया ने बहुत बड़ी कीमत चुकाई है
व्यवस्था बदलती है तो आती है अराजकता
दुख देती मानवीय त्रासदी
किसकी जवाबदेही बनती है
हैवानियत की भाषा,
हैवानियत के हिमायती।

माँदों से निकलने को बेताब भूखे भेड़िए
काबुल की सड़कों पर बर्बरता का नंगा नाच
चप्पे-चप्पे पर चस्पा क्रूरता का इतिहास
क्या यही भविष्य की दुनिया है
राक्षसों से भी निकृष्ट संस्कृति,
ऐसी ताकतों के विरुद्ध एक होना होगा..
ये रक्तबीज हैं और आवश्यक है इनका संहार
अलख जगाते रहो,
धर्मो रक्षति रक्षतः।

स्मृति कोष

हमारे भीतर है
स्मृतियों का...
एक लहलहाता समुद्र
जिसे मन कहते हैं
अनिश्चल सा वो
पल-पल डोलता है।

स्मृतियाँ चलाती हैं जैसे
वैसे ही हम चलते हैं
कभी राग, कभी द्वेष
कभी क्रोध में जलते हैं
स्मृति कोशिश से ही पाते
हम चिंतन का आधार।

जब हम जन्मे थे
स्मृति थी कोरी स्लेट सी
दुनियादारी का ज्ञान नहीं था
सहज, सरल,
बाल-सुलभ थे हम
बड़प्पन का अभिमान नहीं था।

पाप-पुण्य का फेर ना था
अस्तित्व अहं का मान ना था
क्यों कर साथ हैं हम सबके
पर संग नहीं हैं ...
अब अहम् है पर....
हम नहीं हैं।

सम्पर्क : *रामपुर (उ.प्र.)*
मो. 9219698120

मधु प्रधान मधुर

वृद्धों का सम्मान

मीठी वाणी बोलकर
वृद्धों का सम्मान करो
नाज करो संस्कारों पे
मत इनका उपहास करो
एक दिन ऐसा आएगा
तुम भी बूढ़े हो जाओगे
लोग करेंगे ठठ्ठा
तुम पछताओगे
अहं ताक पर रख
करो सदा इनकी सेवा
आशीष सदा ही पाओगे
जीवन सफल कर जाओगे
मस्तक ऊँचा रख जी पाओगे
जिस भाई ने यह
कर दिखलाया
संतोष बहुत ही पाया है
ऐसा कुछ तुम भी कर जाओ
सुख शांति से जी पाओ।।

मेरा भारत

मेरा प्यारा सबसे न्यारा भारत देश
कल-कल करके नदिया बहती
झर-झर करके झरने बहते
आँखों में बसते दृश्य मनोहर।

नित्य नये त्यौहार मनाते
आलाप मधुर संगीत सुनाते
बच्चों के मन चहक-चहक हैं जाते
रसमयी गागर सब छलकाते।

सूर्य चन्द्र नक्षत्र और पशु-पक्षी भी
यहाँ हैं पूजे जाते।
पूर्ण तुष्ट हो अतिथि जाते
गुणगान यहाँ का वे सुनाते।

कभी नहीं है पर्वत घाटों की
गेंहू चना धान मक्का के
खेत खूब लहराते
फल-फूलों के बाग-बगीचे
इस धरती की हैं शान।

भरी हुई है प्रकृति संपदा
सहर्ष लुटाते सब पर
भारत में आपस में
मेल बढ़ाती सी है
अनेक भाषाएँ वेशभूषा
यह बात किसी
को पच नहीं पाती
इस देश की यही है थाती।

बारी-बारी मौसम हैं आते
रोज नये रंग बरसाते हैं
परिवारों का बंधन है मजबूत
यहाँ चट्टानों सा है जीवन सबका।
वीर शिवाजी औं लक्ष्मीबाई की
गाथाएँ सबको याद जबानी हैं
शहीद भगत और आजाद की
सरफरोशी की तमन्ना
सबने ही सम्मानी है।
वेद व्यास औं कृपाचार्य का
बुद्धि बल व्याप्त हुआ जगह में
गौतम बुद्ध, महावीर से ऋषियों ने
अपने उपदेशों से लोगों में फूँका
ऐसा मन्त्र मनोहर
उमड़ पड़ी जन-जन में
त्याग तप श्रृद्धा की इच्छा
भरत नाम से बना यह भारत देश
करते शत-शत तुम्हें प्रणाम।।

स्वतंत्रता दिवस
75वाँ स्वतंत्रता दिवस
मनाने का अवसर है आया
खुशी-खुशी गर्वित हो
सभी राष्ट्रगान हैं गाते
आकाश से इंद्रधनुष भी
उपस्थिति का दे रहा सबूत
बादल गरज-गरज कर
करते अपनी खुशियाँ प्रकट
बालक झंडे ले-ले कर
मदमस्त हो घूम रहे इधर-उधर
भाषण, प्रतियोगिताओं का
जगह-जगह हो रहा आयोजन
रंग-बिरंगी टोपी की पन्नियाँ
दे रही हैं दस्तक
सीना तान क्रांतिकारियों का
जनसमूह करता आव्हान
फूल खुशियों के बिखेर रहे
छाई निराली घंटा घनघोर है
नतमस्तक हो हम सब
करते झंडे का अभिवादन हैं।।

सम्पर्क : *मुम्बई (महा.)*

समीर उपाध्याय

मैं ॐ हूँ

मैं सिर्फ एक शब्द नहीं हूँ,
बल्कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति के समय का सर्वप्रथम नाद हूँ।

मैं तीन अक्षर अ, ऊ और म से बना हुआ हूँ।
मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश का प्रतीक हूँ।

मैं संसार के कण-कण में व्याप्त ध्वनि हूँ।
मैं सर्वत्र सकारात्मकता का संचार करता हूँ।

मैं समस्त वेदों की व्याख्या में समाहित हूँ।
मैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रदायक हूँ।

मैं वेदों की ऋचाओं को पूर्णता प्रदान करता हूँ।
मैं आधिभौतिक दुःखों की शांति का सूचक हूँ।

मैं सभी मंत्रों में सर्वप्रथम उच्चरित नाद हूँ।
मैं नित्यानंद, मुक्तानंद और ब्रह्मानंद रूप हूँ।

मैं समस्त ब्रह्मांड की ऊर्जा का स्रोत हूँ।
मैं तिमिर से प्रकाश की ओर ले जाता हूँ।

मैं ग्रंथियों के स्त्राव को नियंत्रित करता हूँ।
मैं आधि, व्याधि और उपाधि को दूर करता हूँ।

मैं सर्वत्र आभामंडल की रचना करता हूँ।
मैं आल्हादकारी रसायन की वर्षा करता हूँ।
मैं अनादि, अनंत तथा निर्वाण का प्रतीक हूँ।
मैं परमात्मा से जुड़ने का साधारण तरीका हूँ।

मैं सभी धर्मों में पवित्र ध्वनि के रूप में प्रकट होता हूँ।
मैं किसी एक की संपत्ति नहीं हूँ।
मैं सबका हूँ।
मैं सार्वभौमिक हूँ।
मैं पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त हूँ।

रसना की रासलीला

रसना जो रासलीला रचावै
तो तन तड़प जावै।
रसना जो रासलीला रचावै
तो मनमुटाव हो जावै।।

रसना जो रासलीला रचावै
तो दिलजला हो जावै।
रसना जो रासलीला रचावै
तो जीवहिंसा हो जावै।।

रसना जो रासलीला रचावै
तो अटूट गाँठ पड़ जावै।
रसना जो रासलीला रचावै
तो चैन की नींद खो जावै।।

रसना जो रासलीला रचावै
तो महाभारत हो जावै।
रसना जो रासलीला रचावै
तो घर मरघट हो जावै।।

रसना जो रासलीला रचावै
तो रंग में भंग हो जावै।
रसना जो रासलीला रचावै
तो उथल-पुथल मच जावै।।

रसना जो रासलीला रचावै
तो रब भी रूठ जावै।
रसना जो रासलीला रचावै
तो जिंदगी ठहर जावै।।

लेकिन रसना जो सूर में सूर मिलावै
तो जीवन सफल हो जावै।।

सम्पर्क : *चोटीला, सुरेन्द्रनगर (गुजरात)*
मो. 9265717398

नरेन्द्र दीपक

ग़ज़ल

एक

दुख को मन के आँगन रखना,
यूँ मन को वृन्दावन रखना।

अपना चेहरा दगा न दे दे,
सम्मुख कोई दर्पण रखना

आहट से भ्रम पैदा होगा,
साथ सदर सूनापन रखना।

ख़ुद से मिलते-जुलते रहना,
ख़ुद को केसर चन्दन रखना।

मेरे लिये परायेपन में,
थोड़ा सा अपनापन रखना।

मेरा मन रखने की ख़ातिर,
गिरवी मत अपना मन रखना।

वादे, वादे रहने देना,
पर, कुछ यादें रौशन रखना।

दो

वैसे तो भीड़ में ही ज़ियादा रहे हैं हम,
ये और बात है के तन्हा रहे हैं हम।

दो-चार प्यार कुल जमा हैं याद्दाश्त में,
उन में भी पर कटा-सा, परिन्दा रहे हैं हम।

बच्चों को ज्यों दिलासा देती है कोई माँ,
कुछ इस तरह से दिल को बहला रहे हैं हम।

लिख लीजिये कि हँस-कर काटी है ज़िन्दगी,
मत पूछिये कि कितना जिन्दा रहे हैं हम?

उस नासमझ की यारों ये ज़िद तो देखिये,
वैसा ही रहना चाहे, जैसा रहे हैं हम।

तीन

क्या पता था इस तरह भी दिन गुजर जायेंगे,
नाम लेकर दूसरों का हम पुकारे जायेंगे।

आसमाँ से इस कदर अपनी रही नज़दीकियाँ,
साथ मेरे झिलमिलाते कुछ सितारे जायेंगे।

बा-इरादा आपने छोड़ा हमें मझधार में,
पूछते हो क्यों, कि अब हम, किस किनारे जायेंगे।

इस तरह से दुख हमारी सोच में शामिल हुआ,
प्रण अधूरे जायेंगे, सपने कुँआरे जायेंगे।

क्या पता था इस कदर दिल पर खरोंचे आयेंगी,
क्या पता था इस तरह दिल से उतारे जायेंगे।

होड़ बच्चों में लगी है, चन्द तिनके झील के,
इस किनारे जायेंगे, या उस किनारे जायेंगे।

देख लेना आँसुओं की पैरवी के वास्ते,
भरी महफ़िल नाम लेकर हम पुकारे जायेंगे।

आप को काँटे बिछाने का हुनर मालूम है,
इल्म है हमको कि कैसे पथ बुहारे जायेंगे।

आपका चेहरा दिखेगा, आप की परछाँइयाँ,
घाव 'दीपक' जब कभी, अपने उधारे जायेंगे।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9425011510

शिव डोयले

बच्चे की हँसी

मैं बहुत देर तक
सोचता रहा
नन्हें बच्चे की हँसी को लेकर
मंदिर की घंटी
सुनाई देती है मुझको
या अर्चना के दीप
जैसी है
कहीं नदी
पाजेब पहन छन-छन करती
आ गई है मेरे आँगन
जानता हूँ
बसंत के मौसम में
कभी-कभी खिड़कियाँ खोल
सुन लेता हूँ
पक्षियों की चहचहाट
जरूर कोई गा रहा होगा
बाँसुरी की धुन पर
गुनगुनाता भँवरा खिल उठे होंगे फूल
बच्चे की हँसी सुनकर
क्या इतनी मधुर
खुबसूरत होती है
बच्चे की खिलखिलाहट
दौड़ कर माँ भी
सीने से लगा लेती है जिसे।

मैं लिखता हूँ

मैं लिखता हूँ कविता
कविता के हाथ में
खुरपी, कुदाली, हथौड़ी
गैंती, फावड़ा
अस्पताल, स्कूल नहर
सड़क बनाती

फोड़ती चट्टानें
खेत में चलाकर हल
रोपती है बीज
फसल आते ही
बाँहों में भर लेने को
खुशियों भरी, तमाम रोशनी
कविता के हाथ
चला रहे भुंसारे घट्टी
गहरे कुएँ से खींचती
अपने भाग्य की डोर से
बँधा पानी
मटकों में भर-भर कर
पिलाती रहेगी
प्यास का गला तृप्त करने को
कविता चाहती है
जिंदा बनी रहे हमारी प्रकृति
पेड़ पहाड़, नदी,
पर्यावरण ले सके साँस
जीवित रहने को।

सम्पर्क : *विदिशा (म.प्र.)*
मो. 9685444352

विवेक द्विवेदी

आरोप

रात के अँधेरे में वह घर में घुसता और अपने कमरे में जाकर चुपचाप बिस्तर पर लेट जाता। पूरा एक सप्ताह गुजर गया था। किसी को पता ही नहीं चला था कि प्रशांत को हुआ क्या है? पत्नी दीक्षा बार-बार पूछती कि बात क्या है? आप इतना परेशान क्यों हो? तीन दिन से आफिस भी नहीं जा रहा था। दोनों छोटे बच्चे करीब आते तो उन्हे डाँट कर भगा देता। दीक्षा चीख उठती। ''जब कुछ बोलोगे नहीं, तो कौन समझेगा कि तुम्हें क्या परेशानी है?'' वह गहरी साँस लेता। फिर झुँझला उठता। ''लगता है कि आत्महत्या कर लूँ।''

आत्महत्या सुनकर पूरा घर चौंक उठा था। परिवार के पैरों तले की जमीन खिसक गयी थी। जैसे परिवार के ऊपर आसमान फट पड़ा हो। पैंसठ साल की बूढ़ी माँ विलाप कर उठी। सत्तर साल के बूढ़े पिता ने बेटे के गाल पर जोरदार तमाचा मारा था- ''नालायक इसी दिन के लिए पैदा किया था। बता बात क्या है?'' वह तब भी नहीं बोला था। उसका सबसे करीबी दोस्त दयाराम भी उप यंत्री था। बूढ़ा पिता काँपते हाथों से स्कूटी चलाते दयाराम के घर जा पहुँचा। दयाराम तो कई बार प्रशांत को समझा चुका था। ''एक मामूली शिकायत से इतना परेशान होने की जरूरत नहीं है। तुम्हारे साथ इस वक्त तुम्हारे दुश्मन भी हैं। शिकायत आफिस की है।'' लेकिन प्रशांत अपने लिए परेशान नहीं था। उसे माता-पिता और पत्नी की इज्जत की चिंता सताने लगी थी। यह सुनकर पत्नी दीक्षा ही न कहीं आत्महत्या कर ले। माता-पिता न विचलित हो जायें। सामने बैठे पिता ने दयाराम से पूछ लिया तो दयाराम बताने में ही हित समझ रहा था।

''बाबू जी, ठेकेदार इदरिस और विनोद ने झूठा आरोप मढ़वा दिया है।''

''कैसा आरोप?'' पिता ने सख्ती से पूछा था।

''इदरिस नाम का एक फ्राड ठेकेदार है। कोई काम समय से पूरा नहीं करता। अपनी रंगदारी की वजह से आधा-अधूरा काम करके बिल प्रस्तुत कर देता है। फिर सब इंजीनियर पर दबाव बनाता है कि फायनल वर्क डन की रिपोर्ट दे दें।''

पिता हंसराज सेवानिवृत्त शिक्षक थे। उन्हें आफिस के काम से कोई मतलब नहीं था। दंद-फंद जानते ही नहीं थे। उन्हें नहीं पता था कि जब तक उप यंत्री लिखकर नहीं देता, तब तक किसी काम को पूरा नहीं माना जाता। उप यंत्री की रिपोर्ट के बाद ही ऊपर के अधिकारी भुगतान हेतु कलम चलाते हैं।

तभी लेखा शाखा में जाता। इदरीस और विनोद दोनों रंगदारी के बल पर कई अधूरे काम का भुगतान ले चुके थे। ऊपर से नीचे तक कई काम सिर्फ कागज पर होते। प्रशांत ने कभी यह काम नहीं किया। एक साल पहले ही वह इस डिवीजन में आया था। इदरीस और विनोद ने उसे हटवाने के लिए बहुत कोशिश की। परन्तु सफल नहीं हुए थे। इसलिए रंजना नाम की एक बदनाम औरत से प्रशांत के विरोध में बलात्कार करने की कोशिश की एक रिपोर्ट दिलवा दी। हंसराज ने पूछ लिया कि रंजना का आफिस में क्या काम था। प्रशांत उससे कहाँ मिला था।

''बाबू जी, रंजना हर मलाईदार दफ्तरों में चक्कर लगाती रहती है। राजनीति से जुड़ी है। इदरीस और विनोद के लिए काम भी करती है। इस तरह उसने कइयों के खिलाफ शिकायत की थी। फिर मोटी रकम पाने के बाद...।''

हंसराज इतना सुनकर चले आये थे। घर पर प्रशांत को बुलाकर बोले थे- '' बहुत मूर्ख हो। हवा का एक मामूली झोंका भी तुम सह नहीं पाये। ईमानदारी में बहुत ताकत होती है। डट कर मुकाबला करो। परिणाम जो भी होगा, देखा जायेगा।''

दरअसल इदरीस हर बार एक बहाना गढ़ लेता। इस बार बोला कि मैंने मंत्री बिसेन को दस लाख दिये हैं। बड़े साहब अहिरवार साहब को भी दे चुका हूँ। तुम्हें भी जो लेना हो ले लो। मगर मेरा बिल पास होना चाहिए। प्रशांत अड़ गया था। अधूरे काम का बिल मंजूर नहीं होगा। कागज में काम तभी पूरा माना जायेगा, जब जमीन पर काम पूरा हो जायेगा। मैं अपनी रिपोर्ट नहीं दे सकता। वैसे भी तुम्हारे खिलाफ कई शिकायतें हैं। जाँच भी चल रही है। इदरीस एक गुंडा भी था। उसका रेरा चलता था। पहली बार किसी उप यंत्री ने उसे चैलेंज किया था।

रंजना रूलिंग पार्टी की सदस्या थी। हर महीने बीस-तीस हजार की व्यवस्था इन्हीं कामों से हो जाती। वैसे हर दफ्तर से कुछ न कुछ उसे मिलता रहता। परन्तु सभी को पता था कि वह विनोद और इदरीस के लिए काम करती है। इदरीस ने उसे एक पुरानी कार भी खरीद कर दे दिया था। रंजना को मालूम था कि प्रशांत बहुत ही सज्जन इंसान है। फिर भी उसने इदरीस के कहने पर थाने पर प्रशांत के खिलाफ शिकायत लिख कर दे दी थी। उसने लिखा था। प्रशांत मुझे आफिस में बुलाकर पीछे वाले सुनसान कमरे में घसीट ले गया था। फिर मेरे साथ जबरदस्ती करने की कोशिश की। मैं चिल्लाई तभी छोड़कर भागा। मैं सीधे थाने आ गयी। और भी कई बातों का उल्लेख किया था। प्रशांत को रंजना की बात अक्षरशः याद थी। ''प्रशांत साहब, इदरीस का काम कर दीजिये। उससे पंगा मत लीजिये। आपकी ईमानदारी ही आपके मौत का कारण बन जायेगी।'' प्रशांत अचानक भड़क उठा था। अपनी सीट से उठ कर खड़ा हो गया था। लेकिन संयमित स्वर में बोला था।

''रंजना मैडम, आप हमारे बीच में मत आइये। यदि मैं इस तरह का करूँगा तो मैं तो जेल जाऊँगा ही, आप भी सुरक्षित नहीं रहेगी।''

''अच्छा तो तुम देश भक्त बनना चाहते हो। तुम्हें पता नहीं कि जब मैं चाहूँगी तो तुम जेल के अंदर दिखाई दोगे।''

तब प्रशांत को नहीं मालूम था कि रंजना किस बला का नाम है। वह तो नया आया था। मंत्री

बिसेन की खास थी। जब भी मंत्री जी जिले में आते, रंजना रात के अँधेरे में विश्राम गृह पहुँचा दी जाती। एक रात में लाखों का वारा न्यारा हो जाता। दया राम ने उसे समझाया था। उससे बचकर रहना। प्रशांत अंदर से डर गया था। दयाराम ने कहा था-यह गुलदस्ता है। हर आने वाले अतिथि को भेंट करने के लिए तैयार रखा जाता है। रंजना, निधि, सलमा और भी कई नाम हैं। इनसे बचकर रहना। कइयों को खा गयी हैं। यह सब याद आते ही प्रशांत खट् की आवाज से भी डर जाता। रंजना अपने उद्देश्य में सफल हो गयी थी। पुलिस की आवाजाही बढ़ गयी थी। आफिस में सी.सी.टी.वी कैमरा लगा था। पुलिस सातों कैमरे खँगाल चुकी थी। कहीं कुछ नहीं मिला था। फिर उसने प्रशांत के बारे में कइयों का बयान दर्ज किए थे। एक भी आदमी ने प्रशांत के खिलाफ बयान नहीं दिया था। सभी ने कहा था कि रंजना न केवल आदमखोर है, पैसा कमाने का उसका धंधा भी है। पुलिस परेशान थी। आफिस की एकता पर उसे आश्चर्य भी हो रहा था।

पत्नी दीक्षा तो परेशान ही थी। पूरा घर परेशान हो उठा था। रंजना किसी भी सूरत में अपनी शिकायत वापस नहीं ले रही थी। वह एक लाख से बढ़कर पाँच लाख की माँग कर बैठी थी। आर.टी.ओ आफिस के दो बाबुओं को फँसा चुकी थी। ऊँची कीमत में सौदा हुआ था। तब जान बची थी। प्रशांत को नींद आनी बंद हो गयी थी। कभी रात में छत पर चला जाता। कभी रात में अकेले सड़क पर निकल जाता। दूर तक चला जाता। जब पार्क में जाता और नशे में धुत् औरत और मर्दों को आलिंगनबद्ध देखता तो उसके होश उड़ जाते। पुलिस बेंच में बैठी बीड़ी पी रही होती। उसे बार-बार याद आता। यही दयाराम जो कभी शराब और औरतों के चक्कर में इतना धँस चुका था कि उसकी पत्नी ने कोर्ट में केस कर दिया था। कितनी मुश्किल से उसका परिवार बचा था। आज दोस्त बना है। कल इसी ने रंजना को उससे मिलवाया था। उसका खौफ दिखाया करता। अब उसे पता है कि रंजना ने सबको डरा रखा है। वह किसी के साथ कुछ भी कर सकती है। बड़े साहब तो हर महीने बंधानी देते थे।

खिड़की पर खड़ा होकर सड़क पर आते-जाते लोगों को देखता। कई हसीन जोड़े मस्ती करते दिखते। पूरी रात सड़क चलती। सुबह पेपर में खबर छपती। कोठी कंपाउन्ड के पास गैंगरेप हुआ। शास्त्री ब्रिज के नीचे एक महिला की लाश मिली। गहरा तालाब में एक युवक की लाश तैरती मिली। नेहरू पार्क में असंदिग्ध लड़कियों को पुलिस ने छापामार कार्यवाही में पकड़ा। चार लड़के भी धराये गये। फिल्म के अंतिम शो के छूटते ही एक वार फिर सड़कों पर शोर शराबा बढ़ जाता। कई बार गोलियों की आवाज भी आती। पुलिस की सायरनवाली गाड़ियाँ सड़कों पर दौड़ने लगतीं। फिर एक दिन सुबह-सुबह पेपर में जब देखा कि रंजना की फोटो मंत्री बिसेन के साथ में गुलदस्ता लेते छपी तो उसके पैरों के नीचे की जमीन ही खिसक गयी। उसे याद आता। कभी अखबारों में शहर गायब रहता। दिल्ली, मुम्बई और भोपाल की खबरें होती। शहर की खबरें किसी कोने में एक तरफ पड़ी रहतीं। आज तो पूरे अखबार में शहर ही छाया है। उसे आश्चर्य होता कि क्या मेरा शहर महानगर की श्रेणी में आ गया। यहाँ भी होटलों में छापे पड़ने लगे हैं। दो होटल तो औरतबाजी के चक्कर में पुलिस ने बंद करा दिए हैं। वह सिर पकड़कर बैठ जाता।

आखिर दीक्षा ने रंजना के घर का पता लगा लिया। वह मिलने के बहाने रंजना के घर पहुँच गयी थी। रंजना को यकीन ही नहीं हो रहा था कि दीक्षा ही प्रशांत की पत्नी है। दीक्षा के सामने उसका सिर झुक

गया था। आँखें नहीं मिला पा रही थी। दीक्षा उसे पहचान गयी थी। वह पहचानने से इंकार कर रही थी। कभी दोनों एक साथ कॉलेज में पढ़ी थीं। अखबार में छपी फोटो से दीक्षा ने पहचाना था। लेकिन रंजना ने साफ मना कर दिया था। मैं आपके साथ कभी नहीं पढ़ी। मैं तो पहली बार आपसे मिली हूँ। कमरे के अंदर लकवाग्रस्त पति बिस्तर पर लेटा था। अठारह साल की बेटी ट्रे में दो गिलास पानी लाकर रख गयी थी। एक बारह साल का बेटा था। वह दीक्षा को प्रणाम करके चला गया था। रंजना ने ही बताया था कि यह मेरी बेटी राजी है और बेटा मनु है। दीक्षा मुस्करा उठी थी।

''क्या अपने बाद इस मासूम बेटी को भी शरीर बेचने के काम में लगा देगी।''

यह सुनते ही रंजना बिलबिला उठी थी। उसने दोनों पाँव जमीन पर पटकती उठी। दीक्षा को लगा कि वह मारेगी। लेकिन फिर शांत होकर बैठ गयी थी। दीक्षा फिर बोली- ''आपने कोई जवाब ही नहीं दिया?'' रंजना की बात पूरा घर सुन रहा था। अंदर लेटा उसका पति और दोनों बच्चे कमरे में बैठकर सुन रहे थे। रंजना चीख उठी थी।

''हाँ, हाँ, हाँ.....। इस पुरुष समाज ने मुझे नोंच-नोंच कर खाया है। मैं तुम्हारे पति को भी नहीं छोड़ूँगी।''

दीक्षा ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। चुपचाप सुनती रही। जब रंजना शांत हुई तो दीक्षा धीरे से बोली- ''पैसा ही चाहिए तो माँग लेती। दूसरे के कहने पर गंदा आरोप क्यों लगा दिया।'' यह बात सुनते ही रंजना की आवाज दब गयी। फिर भी उसने जलती आँखों से दीक्षा की ओर देखा। दीक्षा ने कहा- ''बहन, आपके झूठा आरोप लगा देने से एक परिवार खत्म होने वाला है। सच बताइये। क्या मेरे पति ने.....।'' यह कहते-कहते दीक्षा की आँखें भर आई थीं। उसकी आवाज अवरुद्ध हो गयी थी। पता नहीं क्यों रंजना के मुँह से अचानक सच निकल गया-''आरोप पूरी तरह से झूठा है। आरोप की कीमत भी मुझे मिल चुकी है लेकिन मैं कैसे अपने कथन से अब मुकर जाऊँ? मुझे भी तो खतरा है।''

''कितनी कीमत है आपकी?''

यह सुनते ही रंजना फिर भड़क उठी। उसने रणचंडी का रूप धारण कर लिया था। अपने बाल नोंच डाले फिर चीखते हुए बोली थी- चली जाओ यहाँ से। कीमत देने आई हो। दीक्षा खामोश बैठी रही। दीक्षा मुस्कुरा उठी। रंजना को तो यह भी नहीं पता था कि दीक्षा के सीने में लगा कैमरा उसकी सारी बातें कैद कर रहा है। रंजना इस बात से भी अनभिज्ञ थी कि आफिस में सात सी.सी.टी.वी कैमरे लगे हैं जिसमें एक भी तस्वीर प्रशांत के साथ रंजना की नहीं है। पुलिस ने एक-एक फुटेज खँगाला था। बल्कि एक तस्वीर में इदरीस और रंजना आपस में सटे एक जगह बैठे थे। वह भी लेखापाल के कक्ष के बाहर लगी कुर्सियों का दृश्य था। कई तस्वीरों में वह विनोद के साथ दिखाई दी थी। प्रशांत ने पुलिस को एक मोटी रकम थमा दी थी। पुलिस ने पैंतरा बदल दिया था। दफ्तर वालों की माँग पर उच्च स्तरीय जाँच की जा रही थी। पूरा विभाग प्रशांत के पक्ष में आ गया। रंजना ने सभी को डरा दिया था। इदरीस के सारे ठेके रद्द करके उसके खिलाफ एक बड़ी रकम की भरपाई निकाल दी गयी थी। इदरिस अपने ही मामले में उलझता जा रहा था। उसकी गुंडागर्दी की हवा निकल गयी थी। इदरिस बड़े साहब को गोलियों से भून देने की धमकी देकर गया था। बड़े साहब ने पुलिस को इसकी सूचना भेज दी थी।

वह मंत्री का आदमी था। तब भी सरकार ने उसके खिलाफ जाँच बैठा दी थी। यह जानकारी अभी रंजना को नहीं हो पायी थी।

''आप कुछ बोली नहीं और मुझे घर से भगाने लगीं।'' दीक्षा ने बहुत ही सहजता से पूछा।

''दे सकोगी कीमत? मेरे पूरे जिस्म में नाखूनों के खरोंच हैं। भर दो मेरे घावों को। मैं तुम्हारे पति को आज ही आजाद करा दूँगी।''

''मेरे पति का अपराध क्या है? उसने तो आपसे कभी.....।'' दीक्षा ने पूछा था।

''कभी कुछ नहीं किया। लेकिन मेरे लोगों को परेशान कर रहा है।'' रंजना ने कहा।

तब तक उसका पति किशोर घिसटता हुआ बैठक में आ गया था। दूर से रंजना की ओर थूकते हुए बोल उठा- ''कुतिया, उस बहन से क्या पूछती है। तूने किसी से पूछ कर अपना बदन नुचवाया है। मुझे तो तूने मार-मार कर गूँगा बना दिया परन्तु क्या दुनिया को भी चुप कर सकती है।'' रंजना ने जैसे ही यह सुना, अपनी जगह से उठी और किशोर के मुँह पर एक जोरदार तमाचा मारा और उसके बाल नोचते हुए बोल उठी-''हरामी, तुझ जैसे निठल्ले को कब तक बैठाकर शराब पिलाती। तूने ही तो आग की भट्टी में झोंका था। तू ही तो पहली बार एक नेता के पास ले गया था। क्या बोला था तू। रंजना, तुम्हारी एक मुस्कराहट में यह मेरा प्रमोशन करा देगा।''

''अरे कुतिया, यह क्यों नहीं कहती कि तुझे मेरी कमाई में पूजता नहीं था। कार और बंगला चाहती थी। पाई.....। जो था, वह भी गवाँ दिया।'' किशोर इतना बोलकर रोने लगा।

रंजना का पति किशोर सहकारी बैंक में क्लर्क था। पूरी कोशिश करता था कि बूढ़े माता-पिता के साथ दो बच्चे और पत्नी को खुश रख सके। परन्तु रंजना तो किसी और दुनिया का ख्वाब देख रही थी। उसकी सुंदरता से कोई भी प्रभावित हो जाता था। वह धीरे-धीरे राजनीति में रुचि लेने लगी। यह सही है कि किशोर अपने काम के लिए एक नेता के पास ले गया था किंतु नेता कोई और नहीं रंजना का रिश्ते में फूफा लगता था। उसने रिश्तेदार की तरह ही काम किया था। उसने यह जरूर किया था कि रंजना के बार-बार आग्रह पर महिला ब्रिगेड में शामिल करा दिया था। जिलाध्यक्ष की आँखों में चढ़ गयी थी। उसने रंजना की आँखों में कई सपने भर दिए। रूलिंग पार्टी का अध्यक्ष था। पार्टी कार्यालय में किसी बहाने से देर तक रोक लेता। जब किशोर विरोध करता तो उसे घौंस बताकर चुप करा देती। छोटे-मोटे कार्यक्रमों में बोलने का मौका भी देता। देर रात में कार से घर तक छोड़ देता। फिर एक दिन उसने दबी जुवान में कह दिया- ''रंजना यह राजनीति है। यहाँ पहले देना पड़ता है। उसके बाद आदमी मूल का ब्याज खाकर जिंदगी गुजार लेता है।'' रंजना यह सुनकर चौंक उठी। बात को समझ तो गयी थी। कुछ देर मंथन करने के बाद बोल उठी-

''आपका आशय मैं नहीं समझ पाई?''

''खुबसूरत हो। देख लो, श्रद्धा कहाँ से कहा पहुँच गयी। आज वह विधायक के लाइन में खड़ी है।''

रंजना चाहकर भी विरोध न कर सकी थी। एक छोटी सी फिसलन ने उसे गुलदस्ता बना दिया। किशोर उसकी खुशी को मापना चाह रहा था। बैग से नोटों की गड्डी बाहर निकालते हुए बोली- अध्यक्ष महोदय ने कल की रैली के लिए एक लाख थमा दिया है। मुझे महिलाओं के लिए चाय और नाश्ताँ का

प्रबंध करना है। पर कौन करता है। सभी तो अपने घर से खा पीकर आते हैं। किशोर कैंप गया था। उसे तो कई कहानी पता थीं। लेकिन चुप रह गया था। करता भी क्या? रंजना उसकी कौन सुनती है। फिर नेताओं का आना शुरू हो गया। सुबह-शाम जब रंजना घर में रहती तो नाश्ता बनाने से ही उसे फुर्सत न मिलती। किशोर अपनी उपेक्षा होते देख विरोध भी करता। रंजना कई-कई रात घर आती ही नहीं थी। जब आती तो नोटों से भरा बैग जरूर लाती। डेढ़ साल के अंतराल में उसने एक फलैट खरीद लिया था। बूढ़े माता-पिता किशोर से बोल- बेटा, मुझे कुछ अपशकुन लग रहा है। बहू को कहो कि घर पर रहे। किशोर फिर विरोध करता। रंजना टका से जवाब देती- ''विधायक की लाइन में हूँ। तुम्हे जलन होनी स्वाभाविक है। मैं इतना आगे बढ़ चुकी हूँ कि अब पीछे लौटना संभव नहीं है।''

किशोर गम भुलाने के लिए शराब का सहारा ले लिया था। रंजना को रोकने के लिए वह मारपीट भी करने लगा था। पहले तो रंजना सह लेती। फिर बराबरी करने लगी थी। किशोर साफशब्दों में कहने लगा था। तू अब रंडी हो गयी है। चारो तरफतेरे नाम की चर्चा हो रही है। एक दिन रंजना ने किशोर के गाल में एक चाटा जड़ते हुए कहा था।

'' हाँ, हाँ, हाँ मैं आजाद हो गयी हैं। तेरे साथ जीवन गुजारना भी अब मुश्किल हो गया है। जिंदगी का एक लम्बा हिस्सा तो किराये के मकान में गुजरा। थोड़ी खुशी आई तो तेरे पेट में दर्द होने लगा है।''

किशोर टूट गया था। शराब और रंजना की उपेक्षा ने उसे अर्द्धविक्षिप्त बना दिया था। उसके पाँव लड़खड़ाने लगे थे। चलते हुए गिर पड़ता। बेटी या बेटा जाकर उसे उठा कर लाते। फिर एक दिन किशोर के आधे अंग में लकवा लग गया। लोक लाज से बचने के लिए रंजना ने उसे अस्पताल में भर्ती कराया था। किशोर सत्तर प्रतिशत ठीक हो गया था। चल नहीं पाता था। जब बेटे-बेटी स्कूल चले जाते। बूढ़े माता-पिता किशोर के पास बैठे रहते तो रंजना खुलेआम कभी इदरीस के साथ तो कभी विनोद के साथ तो कभी और किसी के साथ अपने कमरे में बंद रहती। बूढ़े माता-पिता किशोर को चुप करा देते-

''पानी सिर से ऊपर निकल गया है। तुम्हारे वश में नहीं रह गया। हर निर्णय समय करेगा। चुप रहो।''

दीक्षा चली आई थी। चलते वक्त इतना ही बोली थी-'' एक स्त्री होने के नाते इतना ही कहूँगी। अभी भी वक्त है। मेरी बात पर विचार कीजियेगा।''

किशोर ने ताली बजाई थी। रंजना ने इस बार खामोशी से सुना था। फिर नीचे तक छोड़ने भी आई। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट थी। प्रशांत ने दीक्षा को डाँटा था। इस तरह कहने की क्या जरूरत थी। वह कठपुतली बना दी गयी है। वह समझ सकती तो क्यों इन दरिंदों के चक्कर में फँसती। भले मैं परेशान हूँ। किंतु उसके साथ मेरी हमदर्दी है। उसे तो पता ही नहीं कि जोकर दूसरों को हँसाता जरूर है परन्तु उसके दर्द को कौन समझ पाता है। यह दुनिया मजमेदारों की है।

पुलिस की जाँच इदरीस की ओर मुड़ गयी थी। उसके किये कई अपराध सामने आ गये थे। उसकी धमकियाँ भी काम नहीं आई थीं। जाँच कमेटी ने अपनी जाँच रिपोर्ट पुलिस को सौंप दी थी। इदरीस तो अपने में ही उलझ गया था। रंजना से बचने का प्रयास करने लगा था। रंजना बार-बार फोन लगाती तो उठाता ही नहीं था। रंजना दीक्षा के कटु व्यवहार से व्यथित हो गयी थी। वह सीधे थाने जा

पहुँची। पुलिस को धमकाते हुए बोल उठी – ''यदि पुलिस चौबीस घंटे के अंदर प्रशांत को गिरफ्तार नहीं करती तो मैं कल से महिलाओं को लेकर सड़क पर उतर जाऊँगी।'' उसकी बात पूरी हुई ही थी कि उसके गाल में जलता हुआ चाटा पड़ा था। वह लड़खड़ाकर गिरते-गिरते बची थी। फिर जैसे तमाचे का दौर शुरू हो गया था। उसने सिर उठाकर देखा तो सामने एक महिला पुलिस अफसर उसे थप्पड़ मारे जा रही थी।

''यह क्या कर रही हैं। एक महिला नेत्री पर हाथ उठा रही हैं। मैं इसकी शिकायत अभी पुलिस अधीक्षक को करती हूँ।'' रंजना के साथ आई आयशा ने कहा फिर यही नहीं रुकी। उसने पूरे आवेश में आकर कहा-''आप मुझे जानती नहीं। मैं प्रदेश महिला प्रकोष्ठ की संगठन मंत्री आयशा खान हूँ।''

''शाबाश!'' पुलिस अफसर ने मुस्कुराते हुए कहा। फिर टी.वी.स्क्रीन को चालू करते हुए बोली- ''जी आयशा खान जी। आप ही लोगों ने महिला के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया। उन्हें अविश्वसनीय बना दिया। कृपया एक नजर इधर भी देख लें।''

तभी स्क्रीन पर रंजना की बोलती तस्वीर के साथ आवाज गूँजने लगी। -''हाँ, हाँ, हाँ.....मैंने ही प्रशांत को फँसाया है। उसने इदरीस का बिल रोक दिया था। इदरीस मेरे लिए सब कुछ है। ...इदरीस ने मेरी कीमत अदा कर दी है। तू क्या देगी....।'' तस्वीर में किशोर घिसटता कमरे से बाहर निकलता दिख रहा था। तभी दीक्षा और प्रशांत सामने आ गये थे। रंजना चीख उठी थी।

''यह धोखा है। इस महिला ने झूठा वीडियो बनाया है। यह मुझे धमकाने गयी थी।'' रंजना समझ गयी थी कि वह बुरी तरह से फँस गयी है। दीक्षा के द्वारा जो जो पूछा गया था सिलसिलेवार बातें स्क्रीन में आ रही थी। कुछ तस्वीरें धुँधली जरूर थीं, किन्तु सच बयान कर रही थीं। रंजना उठकर दीवार में अपना सिर पटक रही थी। थाना के अंदर ही अपने कपड़े फाड़ने लगी थी। आयशा मौका लगते ही बाहर निकल गयी थी। रंजना आयशा को देख रही थी। पुलिस वाले उसे पकड़ रहे थे। यद्यपि पुलिस कंट्रोल रूम में भी कैमरा लगा था। रंजना की यह हरकत भी कैमरे में कैद हो रही थी। उसी समय किशोर आटो से नीचे उतरा था। बैसाखी अपनी बेटी के सहारे थाने के अंदर आया था। किशोर को देखकर रंजना चौंक गयी थी। वह तेजी से आगे बढ़कर किशोर से लिपट गई थी।

''देखो, इस नागिन ने क्या किया? इसने मुझे झूठा फँसा दिया है।''

किशोर कसायल सी मुस्कराहट बिखेरा रंजना के सिर पर हाथ फेरता आगे बढ़ा। उसे रंजना को देखकर दया आ गयी थी। उसकी भी आँखें गीली हो गयी थीं। उसने दोनों हाथ जोड़ लिये थे।

''बहन, मैं तुमसे क्षमा माँगने आया हूँ। यदि मेरी पत्नी को कुछ हो गया तो पूरे परिवार की बैसाखी छिन जायेगी। बच्चे अनाथ हो जायेंगे। मेरी नौकरी तो चली गयी। मेरे बूढ़े माता-पिता भूखों मर जायेंगे। रंजना एक हकीकत है। इसके गुनाहों को कोई सजा ही नहीं, सिवाय मर जाने के। इसलिए इसे क्षमा कर दीजिये।''

दीक्षा की आँखें भर आई थीं। वह कुछ बोली नहीं। प्रशांत ने पुलिस अफसर से कहा था। यह अपनी शिकायत वापस ले। मुझे इसके खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं करनी है। फिर दोनों वापस लौट आये थे। दीक्षा की आँखें बहती जा रही थीं। प्रशांत भी भावुक हो गया था। रंजना ने लिखकर दीक्षा ने

अपनी शिकायत वापस ले ली थी। सार्वजनिक माफी माँगी थी। दूसरे दिन के अखबारों में रंजना और प्रशांत के साथ दीक्षा की भी तस्वीरें छपी थीं। रंजना के गुनाहों की पूरी सूची छपी थी। सभी ने दीक्षा की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। सभी ने कहा था कि यदि दीक्षा सूझ-बूझ से काम न करती तो प्रशांत को बचाया नहीं जा सकता था। इदरीस तो जेल चला गया था। प्रशांत लम्बी साँसें लेता बिस्तर पर करवट बदल रहा था। वह बार-बार कह रहा था।

''दीक्षा, अंत में एक स्त्री का ही तो चीरहरण हुआ। देखो, सिटी केबल में कितनी चचाएँ हो रही हैं। कोई कुछ कह रहा है तो कोई कुछ। जो मूल अपराधी है, रूपकुमार। उसकी तो कहीं चर्चा ही नहीं हो रही।''

''प्रशांत, किसी को मूल अपराधी क्यों मानते हो। रंजना को यह सोचना चाहिए था कि वह जो करने जा रही थी, उसका परिणाम क्या हो सकता है। मैं तुमसे ही पूछती हूँ। भेड़िया तो सड़ा-गला माँस भी खा लेता है। रंजना खूबसूरत है। लेकिन क्या खूबसूरती बिकने के लिए होती है। उसके मायने कुछ और भी नहीं होता?''

अचानक सिटी केबल में समाचार का रुख बदल गया था। एंकर बोला-मैं आप लोगों को रोक रहा हूँ। एक बहुत बड़ी खबर आ रही थी। यस मयंक.....बोलो....क्या हुआ। संवाददाता बोलने लगा था। आज जब हम लोग रंजना से वास्तविक तथ्यों की जानकारी लेने पहुँचे तो उसके घर में मातम फैला हुआ था। रंजना ने चौथी मंजिल से नीचे कूद गयी थी। सामने रंजना की लाश पड़ी है। पुलिस मौके पर पहुँच गयी है। मैं समीर कैमरामैन से कहूँगा कि थोड़ा कैमरा लाश की ओर मोड़े।

अचानक प्रशांत के पिता की आवाज बाहर से आई थी। पप्पू कहाँ हो। देखो...टी.वी में क्या आ रहा है। धवन अंकल तुमसे मिलने आये हैं। प्रशांत पिता की आवाज सुनकर जैसे बाहर जाने लगा। दीक्षा बोली- ''शायद कई लोग आ गये हैं। आप रंजना के बारे में उल्टी-सीधी बात मत करना। वह भी तो एक स्त्री थी।'' प्रशांत ने दीक्षा की ओर गंभीरता से देखा था। फिर होंठों के बीच बुदबुदाया था। हाँ वह भी तो एक स्त्री थी और बाहर निकल गया था।

सम्पर्क : *रीवा (म. प्र.)*
मो. 9424770266

स्वरांगी साने

दुनिया

'हाथ छूटे भी तो रिश्ते नहीं छोड़ा करते', क्या क़माल लिखते हैं गुलज़ार और जगजीत सिंह ने कितना अच्छा गाया है।

लेकिन क्यों ब्लूटूथ पर इसी ग़ज़ल को वो बार-बार सुनती रहती है? किचन में हो, कार ड्राइव कर रही हो। कहीं भी हो, कुछ भी कर रही हो। किसे समझाना चाहती है? खुद को या दुनिया को।

'दुनिया'

संजना की आँखों में पानी छलछला गया।

उस दिन सन्नाटे को चीरती आवाज़ आई थी

'रो संजना, रो, संजीव गया, अब नहीं आएगा, रो ले संजना, रो ले।'

नंदिनी की आवाज़ बहुत तल्ख़ थी पर फिर भी संजना रोई नहीं थी, उसकी आँखें पथरा गई थीं। प्रिया के कंधे पर संजना का सिर था, प्रिया ने उसके दिल पर हौले से हाथ रखा था, संजना का दिल ज़ोरों से धड़क रहा था। इतना कि प्रिया की अँगुलियाँ फड़फड़ा रही थीं।

संजना को प्रिया की याद आ गई। संजना मन ही मन सोचने लगी कैसे वह हमेशा बेलौस प्रिया को बेलगाम समझा करती थी, हर बात पर चुहल, हर बात में मस्ती, लेकिन संजीव की बीमारी और उसकी असमय मृत्यु से प्रिया का एक अलग ही रंग उसके सामने आया था, और दूसरा रंग दुनिया का दिखा था।

संजना फिर बीते दिनों में चली गई। पिछले साल मार्च की ही बात थी और चार-पाँच महीनों में सब बिखर गया। संजीव के कैंसर का एकदम लास्ट स्टेज में पता चला था। रिपोर्ट हाथ में लेकर वह स्तब्ध बैठी थी। स्थानीय डॉक्टरों ने यही कहा था, मुंबई ले गए तो आज मुंबई से यह रिपोर्ट आई थी। संजीव सामने ही बैठा था। उससे कुछ कह नहीं सकती थी। उसने संजीव से इतना ही कहा वह प्रिया के यहाँ जा रही है। संजीव भी शायद समझ गया पर कुछ बोला नहीं।

प्रिया उसके घर से कुछ ही दूरी पर रहती थी। रात के आठ बज रहे थे। वह प्रिया के यहाँ थी। प्रिया को पता था कि आज मुंबई से रिपोर्ट आने वाली थी। इस समय संजना को देख वह समझ गई कि बात गंभीर है। संजना चुप थी, प्रिया भी चुप थी।

कुछ देर बाद संजना इतना ही बोल पाई - अब क्या करूँ?

प्रिया उसके लिए पानी का गिलास ले आई, लो पहले पानी पियो और हिम्मत से काम लो।

हिम्मत, कहाँ से लाऊँ हिम्मत? देख रही हो अमोघ कितना छोटा है, केवल चार साल का है, संजीव के बिना हमारी पूरी ज़िंदगी कैसे कटेगी?

अभी बाकी की बातें मत सोचो। इस समय तुम्हें ही सबसे ज़्यादा हिम्मत दिखानी होगी।

क्यों प्रिया? मेरे साथ ही ऐसा क्यों हुआ? यह उम्र है क्या जो संजीव ऐसे जा रहा है?

संजीव अभी गया नहीं है, अभी से क्यों मातम मना रही हो? उसके साथ हर पलों को जी लो।

प्रिया जिस पर बीतती है, वही समझ सकता है, तुम नहीं समझ पाओगी। अपने सामने किसी को हर पल मरते देखना और कुछ नहीं कर पाना और वह भी ऐसे इंसान को जो आपको सबसे ज़्यादा प्यारा हो।

संजना जो प्यारा होता है, वह चला भी जाए तब भी हमसे दूर कभी नहीं होता। संजीव को मन में बसा लो। फिर जो जाएगा वो उसका शरीर होगा और वो तो तुम्हारे पास ही होगा।

तुम्हारे लिए ऐसी बातें करना आसान है। तुम नहीं समझ पाओगी।

इतना कहकर संजना उठ खड़ी हुई। प्रिया ने उसके कंधों पर हाथ रखते हुए उसे लगभग जबरदस्ती ही सोफे पर बैठा दिया, जैसे वह सोफे में धँस गई, जैसे दु:ख उसमें धँस गया था।

प्रिया ने उसे कहा- मेरी बातें तुम्हें कड़वी लग रही होंगी, लेकिन संजना यह समय कमज़ोर पड़ने का नहीं है। तुम कमज़ोर पड़ोगी तो लोग तुम्हें और कमज़ोर करेंगे। तुम टूटोगी तो संजीव और भी टूटेगा। नियति जो तय कर चुकी है, उसे बदल नहीं सकते, इसे स्वीकार कर लो। स्वीकार कर लोगी तो चीज़ें कुछ आसान हो जाएँगी। तुम्हें न केवल खुद को बल्कि संजीव को, अमोघ को, अपने पेरेंट्स को, संजीव के पेरेंट्स को सबको देखना है। सब तुम्हारी ओर देखकर रो पड़ेंगे, उन्हें तुम्हारे चेहरे पर हौसला दिखना चाहिए, टूटन नहीं।

संजना ने गहरी साँस भरकर 'हम्म' कहा।

प्रिया ने उसे कहा- अब घर जाओ, संजीव अकेला है, उसके मन में जाने क्या-क्या ख्याल आ रहे होंगे। सोचो वो कितना घबरा गया होगा। उसे विश्वास दिलाओ कि तुम टूटोगी नहीं, उसे विश्वास दिलाओ कि वह हमेशा तुम्हारे साथ होगा, वो तुम्हारे भीतर हमेशा रहेगा, तुम खुश रहोगी। संजीव को खुशी दो संजना, पीड़ा नहीं, वो वैसे ही शारीरिक-मानसिक यातना भुगत रहा है।

संजना लौट पड़ी थी। संजना को आज यह याद आया और लगा कि प्रिया ने उस दिन उसे जो संबल दिया था उससे उसे कितना बल मिला था। घर लौटी थी तो अमोघ बाहर टीवी देख रहा था, संजीव बैडरूम की लाइट बंद कर अकेला बैठा था। संजना ने बैडरूम की लाइट लगाई तो संजीव की बंद आँखों से आँसू झर रहे थे। संजना धीरे से संजीव के पास गई, उसके आँसू पोंछते हुए बोली- रो नहीं संजीव, तुम कहीं नहीं जाओगे, तुम मेरे मन में हो, मुझसे छीनकर तुम्हें कोई कहीं नहीं ले जा सकता।

संजीव ने हामी में गरदन हिला दी। संजना ने कहा- मैं कुछ बनाती हूँ। सूप पियोगे? ऐसा पूछकर संजना रसोईघर में आ गई और रसोईघर की दीवार पर पीठ टिका भड़भड़ाकर रो पड़ी। कैसे सह पाएगी? कैसे जी पाएगी?

संजना को वह दिन याद आया और वह बिफर उठी। उसे लगा उन चार-पाँच महीनों में सब कितना तितर-बितर हो गया था, वह कितनी बिखरती जा रही थी और दुनिया भी उसे तितर-बितर करने में लगी थी।

वह फिर फ्लैशबैक में चली गई। जितने लोग मिलने आते वे गहरी सांत्वना से भरे होते। उनकी आँखों में संजना और संजीव के लिए बेचारगी दिखती। उस दिन वह प्रिया के सामने फूट पड़ी थी। यह कहते हुए कि- इन लोगों से कह दो, मिलने न आया करें। संजीव को और लगता है कि इतने लोग मिलने क्यों आते हैं? जरूर कुछ गहरा बुरा होने वाला है। अमोघ की पढ़ाई भी नहीं हो पाती। संजीव तो जा ही रहा है लेकिन इस मासूम को कैसे सँभालूँ, इन लोगों से?

प्रिया- पर बताओ लोगों को कैसे मना करेंगे।

संजना- तुम समझा सकती हो, लोगों को, व्हाट्स ऐप के कॉमन ग्रुप पर मैसेज डाल दो।

प्रिया- पर उसमें तो संजीव भी है। एक काम करते हैं। एक और ग्रुप बना लेते हैं, जिसमें करीबी मित्र- परिचित और तुम्हारे रिश्तेदारों को भी शामिल कर लेते हैं और वहाँ पर नियमित अपडेट देते रहेंगे, वह ग्रुप बनाकर सबसे कह देते हैं कि रोज़ न आया करें।

संजना- तुम ही बना दो, तुम अच्छे से लिख भी सकती हो, ताकि किसी को बुरा भी न लगे और जो मैं कहना चाह रही हूँ वह लोगों की समझ में भी आ जाए।

प्रिया- ठीक है, मैं ग्रुप बनाती हूँ, तुम्हें भी एडमिन करती हूँ। तुम जोड़ लो, जिन्हें जोड़ना हो। फिर मैं कॉमन मैसेज डाल दूँगी।

संजना को आज जब वे बातें याद आईं तो उसे लगा कितनी बार प्रिया उसके लिए खड़ी थी। क्या सच में बुरे वक्त में ही लोगों की पहचान होती है। जिन्हें वह अपना बहुत करीबी मानती थी उन लोगों ने भी कैसी बेरुखी दिखाई थी और प्रिया को तो वो हमेशा उथली ही समझती थी लेकिन प्रिया कितनी गहराई से सोचा करती थी, हर बात के डिटेल्स तक जाकर छानबीन करती थी और लगता था इससे कभी भी मदद ली जा सकती है। जबकि बाकी लोग किनारा करने लगे थे, सबके कितने रंग समझ आ रहे थे।

संजना को वो दिन याद आया जब संजीव के साथ करवा चौथ पूजने छत पर गई थी। तब संजीव बीच-बीच में पेट दर्द की शिकायत करने लगा था। नवंबर का महीना था। उस दिन भी संजीव ने कहा पेट दु:ख रहा है और फिर खुद ही बोला तुम इतने प्यार से खाना ठुँसवाती हो न कि हजम नहीं होता।

संजना कितना प्यार करती थी संजीव को। उस दिन वो लाल साड़ी आखिरी बार पहनी थी। उसके अगले साल की करवा चौथ में महिलाएँ छत पर थीं और संजना नीचे अकेली बैठी थी। उसका संजीव उसके साथ नहीं था। महिलाओं ने उसके घर की ओर रुख भी नहीं किया। उसके मन में भी एक दिन पहले मेहँदी लगाने की इच्छा हुई थी। वह भी सजना चाहती थी अपने संजीव के लिए। उसने मेहँदी लगाने वाली को हर साल की तरह फ़ोन किया था और उधर से आवाज़ आई थी- किसके लिए लगवानी है?

संजना चुप हो गई थी। दुनिया उसे बेरंग किए जा रही थी, जबकि संजीव को संजना के चेहरे पर ज़रा भी शिकन कभी बर्दाश्त नहीं होती थी।

संजना उस दिन भी खूब रोई थी....पति के लिए क्या-क्या नहीं किया था, जिसने जो बोला वो

किया, वैद्य तो वैद्य, हकीम तो हकीम, ये डॉक्टर तो ये, वे तो वे...दिल्ली-मुंबई, बैंगलूरू हर जगह दिखा दिया वह तो अमेरिका भी ले जाने की तैयारी में थी लेकिन कैंसर तेज़ी से आखिरी स्टेज तक पहुँच गया था..अब न दुआ से कुछ हो सकता था, न दवा से।

संजीव उस दिन अकेले धीरे-धीरे घर से बाहर अहाते में आ गया था। उसे कोई दिखाई नहीं दे रहा था, तभी प्रिया अपने घर के आँगन में दिखी। वह प्रिया को बुलाने का इशारा करने लगा। प्रिया का ध्यान नहीं था। थोड़ी देर बाद प्रिया का ध्यान उस ओर गया। प्रिया थोड़ी असमंजस में पड़ गई। कोई पुरुष किसी महिला को ऐसे इशारे कर बुलाए तो क्या किसी महिला को जाना चाहिए? एक क्षण उसके मन में ख्याल कौंधा लेकिन दूसरे ही क्षण उसने उस विचार को परे धकेला। अब यह स्त्री-पुरुष की बात नहीं थी। संजीव बीमार था। उसकी सहेली का पति था। उसका भी दोस्त था। प्रिया ने हाथ से 'हाँ' का इशारा किया और अपने आँगन का फाटक लगा संजीव के घर की ओर बढ़ चली।

संजीव घर पर अकेला था। उसने प्रिया को भीतर बुलाया। अजीब परिस्थिति थी, संजीव-संजना के बैडरूम में जाया जाए या नहीं, लेकिन फिर प्रिया को खुद पर ही ग्लानि हुई। वह बीमार है और प्रिया को मदद करना है। प्रिया ने तय किया और संजीव के पीछे चल पड़ी। संजीव के गले से आवाज़ तक नहीं निकल रही थी। वह इतना कमज़ोर हो गया था। उसने बिछौने की ओर इशारा किया। उसे रजाई चाहिए थी और उस रजाई का वजन भी उससे उठाया नहीं जा रहा था। प्रिया ने संजीव को लेटने के लिए कहा और उसे रजाई ओढ़ा दी। उसने कमरे का एसी भी बंद कर दिया...संजीव के चेहरे पर हलकी सी मुस्कान आ गई।

उसने संजना को फ़ोन लगाया- कहाँ हो तुम, संजीव घर पर अकेले हैं

संजना- दवाइयाँ लेने आई थी, महरी काम कर रही थी तब, उसे बताकर आई थी...वह चली गई क्या? अच्छा हुआ तुम हो, कुछ समय रुक सकोगी? मैं अभी आती हूँ।

कोई जल्दी नहीं, मैं हूँ यहाँ।

वह संजीव के पास ही मूढ़ा खींचकर बैठ गई। संजीव ने उस कमरे में लगी अपनी तस्वीर की ओर इशारा करते हुए बताया कि उस पर माला चढ़ जाएगी...कितना क्षीण लग रहा था संजीव। प्रिया ने संजीव को दिलासा देते हुए कहा- हम ऐसा नहीं होने देंगे...संजीव ने कातर नज़रों से प्रिया की ओर देखा। प्रिया ने कहा- डरो नहीं, कुछ नहीं होगा...हम सब हिम्मत से सामना करेंगे। एक-दूसरे की कमज़ोरी नहीं, ताकत बनेंगे। तुम डरोगे तो तुम्हारा भय संजना को और तोड़ देगा। इस समय तुम्हें संजना की और संजना को तुम्हारी ताकत बनना है और मैं तो हूँ ही।

संजीव ने इशारा किया कि वह चला जाएगा। प्रिया ने उसकी काँपती हथेलियों को थामते हुए कहा...उसे जाने देंगे, तब तो वह जाएगा न! जाता तो शरीर है। शरीर के जाने भर को व्यक्ति का जाना नहीं कह सकते। संजीव ने आश्वस्त होकर प्रिया की ओर देखा। अब उसे नींद आ रही थी। प्रिया ने उसे सोने के लिए कहा और संजना के आने तक वह वहीं बैठी रही।

और उस दिन जब संजीव अस्पताल में भर्ती था। प्रिया गई थी मिलने। संजीव आईसीयू में था। एक समय एक ही व्यक्ति मिलने जा सकता था। प्रिया अंदर गई तब संजना बाहर थी। संजीव को

ऑक्सीजन, वैंटीलेटर, सलाइन और पता नहीं क्या-क्या लगा था। संजीव ने प्रिया को देख केवल अँगुली उठाकर ऊपर की दिशा की ओर इशारा किया। प्रिया चौंक पड़ी। संजीव को क्या कुछ समझ आ गया था।

प्रिया आईसीयू से बाहर आई। संजना की माँ और संजना वहाँ थे। उसने संजना की माँ से कहा- आंटी कुछ भी हो, कभी भी लगे, मुझे फ़ोन कर देना, मैं जग रही हूँ, बिल्कुल कुछ मत सोचना।

वे भी समझ चुकी थीं, उन्होंने हाँ में गर्दन हिलाई।

और सुबह चार बजे, फ़ोन बज उठा। आंटी का था - संजीव चला गया।

प्रिया ने इतना ही पूछा - अस्पताल में और कौन है? आंटी ने कहा- मैं और संजना ही हैं। प्रिया ने व्हाट्स ऐप के उस ग्रुप पर मैसेज डाला और अस्पताल की ओर चल पड़ी, उस समय संजना को जरूरत थी। प्रिया को देखते ही संजना एकदम फूट कर रो पड़ी। प्रिया उसे धीरज बँधा रही थी। एक-डेढ़ घंटा संजना रो रही थी। उसकी आँखें सूज गई थीं। प्रिया उसकी पीठ सहला रही थी, घूँट-घूँट भर पानी पिला रही थी। तब तक और भी कई लोग आ गए। वे अस्पताल की औपचारिकताएँ पूरी करने में लग गए। प्रिया संजना और उसकी माँ को लेकर घर की रवाना हुई।

शाम होने तक सारी औपचारिकताएँ पूरी हुईं और एंबुलेंस से संजीव की बॉडी घर आ गई। संजना एकदम चुप थी। सारे विधि-विधान हो रहे थे। संजीव जा रहा था और संजना चुप थी। तब नंदिनी चिल्लाई थी- रो संजना रो, तुझे कुछ समझ आ रहा है क्या संजीव गया।

संजीव गया। इतने तेज़ स्वर में कहा था नंदिनी ने कि वहाँ खड़ी सारी औरतें सन्न रह गई थीं। कितनी और महिलाएँ भी रो रही थी लेकिन संजना चुपचाप संजीव को जाता देख रही थी। प्रिया के कंधे पर उसका सिर था और प्रिया उसे धीरज देने का खोखला प्रयास कर रही थी। प्रिया भी चुप थी। सबको लग रहा था कि प्रिया भी पत्थर है और संजना तो है ही। उसे कुछ असर ही नहीं हो रहा कि संजीव गया। उसे विलाप करना चाहिए था, पति के शरीर पर सिर पटक-पटक कर रोना चाहिए था।

सम्पर्क : *पुणे (महा.)*
मो. 9850804068

डॉ. आर. एस. खरे

एहसास... अंत की पीड़ा का

आज जब मैं उम्र के उस पड़ाव पर पहुँच चुका हूँ जहाँ आज से 20 -22 वर्ष पहले बाबूजी थे तो अब हर क्षण वैसा ही एहसास करता हूँ जैसा बाबूजी उन दिनों करते रहे होंगे। एक छोटे से कमरे में वे नितांत अकेले पलँग पर लेटे रहते थे। पिता को मैं बाबूजी कहा करता था। शायद उनका यह निकनेम उनकी सरकारी नौकरी के कारण चला आ रहा था। वह सरकारी दफ्तर में बड़े बाबू के पद से रिटायर हुए थे। रिटायरमेंट के कुछ वर्षों बाद ही मेरी माँ चल बसी थीं। इस तरह बाबूजी का विधुर जीवन लगभग 16-17 वर्षों तक रहा।

माँ के जाने के बाद भी वे टूटे नहीं। नित्य की तरह सुबह उठते, अखबार एवं पत्रिकाएँ पढ़ते, दोपहर में नियमित रूप से दो-तीन घंटे कुछ लेखन कार्य करते। सुबह-शाम घूमने जाते और अपने स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखते।

मृत्यु के अंतिम 2 वर्षों में उनकी काया शिथिल होने लगी और रोगों ने शरीर में स्थाई डेरा डाल दिया। उन्हें सबसे ज्यादा जिन दिनों देखभाल की जरूरत थी, उन्हीं दिनों हम सब अपने-अपने में इतने व्यस्त थे कि उनके पास बैठ कर दो बातें करने के लिए किसी के पास वक्त नहीं था। मैं उच्च सरकारी अधिकारी था और अपने उत्तरदायित्वों के कामकाज में इतना मशगूल रहता कि पत्नी और बच्चों को भी समय नहीं दे पा रहा था। बच्चे कॉलेज में थे और साथ-साथ प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में व्यस्त थे। पत्नी घरेलू कार्य, बच्चों की देखभाल और बिटिया के विवाह की तैयारी में व्यस्त थी।

आज 72 वर्ष की उम्र में मेरी भी वैसी ही स्थिति है। बेटे-बहू, पोते-पोतियाँ सब हैं, सिवाय जीवनसंगिनी के, जिसे गुजरे 2 वर्ष हो गए हैं। सभी सुविधाएँ होते हुए भी मैं नितांत अकेला हूँ। सब व्यस्त हैं अपनी-अपनी दुनिया में, किसी के पास भी समय नहीं है मेरे लिये। वर्तमान पीढ़ी के पास समय गुजारने के लिए सबसे अच्छा साधन एंड्राइड मोबाइल और सोशल मीडिया हैं। उन्हें कहाँ फुर्सत कि एक वृद्ध से बात करने के लिए समय बर्बाद करें।

मैंने भी तो बाबू जी के साथ यही किया था। वे जब कोई भजन या कथा-कहानी लिखते और प्रयास करते कि अपने बेटे या पोते-पोतियों को सुनाएँ, तो किसी के पास सुनने का वक्त नहीं होता। तब वे नौकर -चाकरों को पास बिठाकर सुनाते, जो बड़े ध्यान से उनकी बातें सुनते। उन्होंने कई डायरियाँ भर

डाली थीं भजनों से, धार्मिक कथा-कहानियों से। एक दिन उन्होंने सकुचाते हुए मुझसे कहा था कि 'इन्हें प्रेस में छपने के लिए देकर पुस्तक बनवा लो'। मैंने इसे व्यर्थ अपव्यय सोचकर अनसुनी कर दी थी। फिर दोबारा उन्होंने कभी भी इस बारे में चर्चा नहीं की।

अब जबकि मैंने भी अनेक कहानियाँ-कथाएँ लिख डाली हैं। एक दिन बेटे से अनुरोध किया था कि इसे 'कहानी संग्रह' के रूप में प्रकाशित करा दे। उसने जवाब दिया था कि 'आजकल पुस्तक हाथ में लेकर कौन पढ़ता है, अब तो सब कुछ मोबाइल पर पढ़ा जाता है'।

उसकी बात सही होते हुए भी मुझे धक्का लगा था। फिर मैं वहीं पहुँच गया था बाबू जी की यादों में।

बाबूजी छोटी-मोटी बीमारियों या कष्टों को किसी को बताते ही नहीं थे, पर उस दिन वे बाथरूम में गिर गए थे। मैं ऑफिस की मीटिंग में व्यस्त था जब पत्नी का फोन आया था। मैंने कार के साथ ड्राइवर को भेज दिया था जो उन्हें पास के अस्पताल में ले गया था। डॉक्टर ने मुझे फोन पर बताया था कि 'वह दिल का दौरा था और उन्हें आईसीयू में एडमिट कर लिया है।' यह सुनकर मैं घबरा गया था। अस्पताल पहुँचा तो उनका दयनीय चेहरा देखकर विचलित हो उठा था। वे मेरे चेहरे को देख कर भाँप गए थे, आखिर वे मेरे पिता जो थे। उन्होंने सामान्य होते हुए कहा था-'मैं ठीक हूँ। चिंता जैसी कोई बात नहीं है।'

डॉक्टर ने ढेर सारी दवाइयाँ लिख दी थीं और परहेज बताए थे। 15 दिन बाद एंजियोग्राफी करने की बात कही थी। घर आकर मैंने कुछ सख्त लहजे में उन्हें परहेज करने की हिदायत दी थी। वे चुपचाप सिर नीचा किये सुनते रहे थे।

ठीक वैसा ही जैसा आज मेरे साथ बेटे प्रशांत ने किया। उसने तो बहू सुधा को भी वहीं बुलाकर उसके सामने ही कठोर शब्दों में बोल दिया- 'पापा को आज से बिल्कुल फीका खाना देना। इनका बीपी हाई चल रहा है। मेरे पास समय नहीं है रोज-रोज डॉक्टर के पास ले जाने का।'

बाबू जी को तेज नमक खाने की आदत थी और वही आदत मुझे भी आ गई थी। मैं प्रशांत से कहना चाहता था कि 'बेटे बहत्तर की उम्र में 150/80 रक्तचाप बहुत ज्यादा हाई नहीं है। नमक कम कर देंगे, पर एकदम फीका खाना कैसे खाया जाएगा।' पर चुप रह गया था यह सोच कर कि प्रशांत का कोई ठिकाना नहीं, बहू के सामने कहीं और जलील ना कर दे।

बाबू जी अंतिम दिनों में ऊँचा सुनने लगे थे। जब टी वी पर रामायण या महाभारत सीरियल आता, वे टीवी का वॉल्यूम फुल कर देते। बच्चे अपनी पढ़ाई में व्यवधान होने का बहाना बताकर उनसे रिमोट लेकर वॉल्यूम धीमा कर आते। उनके चेहरे पर क्रोध का भाव उभरता, पर वे जल्दी ही उसे जज्ब कर लेते।

मैं भी अब जब टी वी पर क्रिकेट मैच देख रहा होता हूँ। अंशुल और अरुणिमा मेरा उपहास उड़ाते हैं -'दादा जी आपने कभी बैट पकड़ा था? अच्छा बताइए सिली मिड आन कहाँ होता है और सीम बोलिंग क्या होती है?

उन्हें लगता क्रिकेट सिर्फ युवाओं का खेल है तो युवाओं को ही देखना चाहिए। बुड्ढों को नहीं। वह कोई बड़े त्यौहार का दिन था और अवकाश होने से ड्राइवर उस दिन आया नहीं था। बाबू जी की इच्छा थी

कि शुभ मुहूर्त में मंदिर जाकर दर्शन करें और प्रसाद चढ़ाएँ। बड़े संकोच से उन्होंने मुझसे कहा था यदि समय हो तो कार से मैं दर्शन करा लाऊँ। मैंने भीड़भाड़ का बहाना बनाकर मना कर दिया था, तो चुपचाप बिस्तर पर जाकर लेट गए थे।

ठीक वैसा ही आज मेरे साथ हुआ। अंशुल से मैंने कहा कि वह पास के शिव मंदिर तक मुझे ले चले। घुटनों में दर्द के कारण कभी-कभी चलते समय संतुलन बिगड़ जाता है। 'दादा जी! इतने पास के मंदिर तो आप अकेले जा सकते हैं। साथ की क्या जरूरत। अपनी कॉलोनी के सारे बुड्ढे रोज वहाँ इकट्ठे होते हैं। सभी अपने आप चल कर जाते हैं।'

मैं चुप रह गया था। बिना सहारे के चलने में होने वाले मेरे कष्ट का उसे भान नहीं हो सकता था। जीवन के अंतिम दिनों में बाबू जी की याददाश्त विचलित हो गई थी। डॉक्टर के पास ले जाना था। उस दिन उन्हें समझ ही नहीं आ रहा था कि पैंट में किस तरह से पैर डालना है। मैं खड़ा-खड़ा देखता रहा था और मदद करने की बजाय हिदायतें दे रहा था, तभी ड्राइवर ने उन्हें बड़े स्नेह से बिठाकर पैंट पहना दिया था। फिर हाथ से सहारा देकर कार तक ले आया था। कार में बैठते समय भी वे भूल रहे थे कि कैसे अंदर प्रवेश कर सीट पर बैठना है। वहाँ भी मैं अफसर बना खड़ा-खड़ा देखता रहा था। ड्राइवर ने उन्हें सँभाल कर अच्छे से सीट पर बिठा दिया था।

डॉक्टर ने बताया था कि सोडियम-पोटेशियम का संतुलन बिगड़ जाने से यह स्थिति हो गई है। अब वैसी ही स्थिति की शुरुआत मेरी भी हो चुकी है। थोड़ी-थोड़ी देर में कुछ-ना-कुछ भूल जाता हूँ। बेटे प्रशांत से कहा था कि एक बार सोडियम-पोटेशियम का टेस्ट करा कर देख ले। शुरुआत में दवाओं से ठीक हो जाऊँगा, अन्यथा अस्पताल में भर्ती होना पड़ेगा।

'पापा! आपको कोई बीमारी नहीं है, सिर्फ साइक्लोजिकल बीमारी है। सारी सुविधाएँ हैं, सब सुख हैं, तो बेमतलब दवाइयाँ खाने की क्या जरूरत है।'

अब उसे कैसे समझाएँ कि बाबू जी के लिए, मैं भी ऐसा ही सोचा करता था और वह मेरी छोटी सी लापरवाही जीवन भर का पश्चाताप छोड़ गई।

बाबूजी के अंतिम समय की पीड़ा का एहसास न मैं कर पाया और न मेरा पुत्र मेरी पीड़ा का एहसास कर पा रहा है।

सच ही कहा गया है 'पुत्र पिता का अंश होता है लेकिन पिता की पीड़ा का अंश मात्र भी उस तक नहीं पहुँचता।'

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*

श्यामल बिहारी महतो

बंधक

पोखरणपुर गाँव में एक मदारी सा मेरा स्वागत हुआ था। इसके साथ ही सबकी नजरें मुझ पर आ टिकी थीं, मानो कोई अजूबा प्राणी हूँ और भूले भटके उस गाँव में पहुँच गया हूँ। मेरी बाईक के दोनों छोर पर टँगे दो बड़े-बड़े झोले और पीछे कैरियर में बँधा बोरी ने एक समा बाँध दिया और तब लोगों के बीच फुसफुसाहटें शुरू हो गयी थीं।

मुझे अच्छी तरह याद है, उबड़-खाबड़ रास्तों पे चलते दो-दो नाले और एक बहती नदी को पार करने में कितनी मसकत करनी पड़ी थी तब मुझे।

पोखरणपुर गाँव के उत्तर-दक्षिण आधा किलो मीटर पर बहती थी खरखरी नदी! और नदी के उस पार था घना जंगल! गाँव के मुहाने से साफ दिखता था। नदी के दोनों किनारे सखुआ-शीषम के जंगल दूर तक चला गया था। पहले लोग दिन में भी इस जंगल में घुसने से डरते थे। खाश कर औरतें! यदा कदा नक्सली नजर आ जाते थे। अगर मैं खरखरी नदी की बात करूँ तो यह नदी पोखरणपुर गाँव के लोगों के लिए वरदान और अभिशाप दोनों थी। बारह माह पोखरणपुर की प्यास बुझाती थी और बरसात में कभी-कभी अपने तेज बहाव में लोगों को बहा भी ले जाती थी। डर से कुटुम्ब लोग बरसात में पोखरणपुर आना जाना बंद कर देते थे।

उस दिन मैं घने जंगल की राह चल पड़ा था। उसी पोखरणपुर गाँव की ओर! विकास की राह जोहते उबड़-खाबड़ मुँह चिढ़ाती कच्ची सड़क पर बाइक की गति कभी कम तो कभी बढ़ा देता था। मन में एक डर भी लगा हुआ था और पेशाब भी लेकिन डर था कि बाइक रोक तो कहीं कोई जंगली जानवर भेंटा न जाए। पहले एक सियार फिर एक हुंडार ने दर्शन दे चुका था। अभी आधा किलोमीटर आगे बढ़ा ही था कि सामने एक जंगली सूअर पश्चिम दिशा से भागता हुआ सड़क पर निकला और पूरब की झाड़ियों में छलाँग लगा दी। इसके साथ ''मारो ..मारो..मारो का एक डरावना शोर पीछे से आता सुनाई पड़ा। मेरे शरीर के सारे बाल सिहर उठे, लगा जान संकट में आन पड़ी है कि तभी हाथ में कुल्हाड़ी पकड़े डाकूअँगुलीमाल की तरह एक शिकारी अचानक मेरे सामने आ गया ...

मैं गिरते-गिरते बचा। लेकिन डर ने अपना काम कर दिया। झट से पेशाब निकल गया और पैन्ट गिली हो गयी। मैं समझ गया आगे और भी बहुत कुछ होने वाला है, सूअर तो शिकारी के हाथ से बच निकला परन्तु मेरे पास अब कुछ नहीं बचेगा। वह खड़ा हो गया था बिल्कुल मेरे सामने, गज भर की दूरी पर, काला भुजंग सा वह

मनुष्य कम आदि मानव ज्यादा लग रहा था। पहनावे में घुटनों से ऊपर धोती बाँधे और माथे पर एक लाल रंग का गमछा लपेटे हुए था। कसा हुआ भारी शरीर। मुझे लग रहा था एक हाथ मारेगा और सारा कुछ ले जंगल में समा जायेगा तभी सुना ''खैनी...।'' डरते-डरते मैंने ना में सिर हिलाया। उसकी आँखो में अजीब सी बैचेनी थी।

''ब बीडी ....।'' फिर मैंने वही किया। इस बार देखा नहीं। आगे निश्चत तौर पर पैसे की ही मांग करेगा। मैं अनुमान लगा रहा था।

फिर सुना ''कहाँ जाहिं..!''

''प पोखरणपुर...।'' बड़ी मुश्किल से डरते-डरते मुँह से निकला था, मन को ढाँढस मिला तो मैंने झट दरिया दिली दिखायी और डिकी से पानी की बोतल निकाल उसकी तरफ बढ़ा दी। उसने लपकते हुए बोतल पकड़ी और हाथ से इशारौ करते कहा ''जा'' मेरी जान में जान आई। मैंने देखा वह तेजी से उसी दिशा में आगे बढ़ गया था जिधर सूअर ने छंलाँग लगाई थी।

डेढ़ दशक पहले पोखरणपुर नक्सलियों की माँद के रूप में जाना जाता था। दिन को भी लोग उधर जाने से कतराते-डरते थे। कभी-कभी दिन में ही अचानक जंगल से गोलियों की आवाज इस कदर आने लगती थी जैसे दीपावली में पटाखे फूटने की आवाज आती हो। डर और खौफके साये में जीने को अभिशप्त थे पोखरणपुर वासी। अभी मैं उसी पोखरणपुर गाँव में कदम रखने ही जा रहा था कि पूछ ताछ के क्रम में एक युवक बातों-बातों में मेरी बाइक पर ऐसे सवार हो गया जैसे खेलते-खेलते कोई बच्चा कंधे पर सवार हो जाता है ....।

''सर, आप कहाँ से आ रहे हैं? पोखरणपुर गाँव में आप किससे मिलने जा रहे हैं? बताइए मैं आपको उसके घर तक सीधे पहुँचा दूँगा।''

''कहीं यह लड़का नक्सलियों का मुखबिर तो नहीं हैं?'' मन में एक ख्याल आ गया था। कई साथियों ने सावधान किया था और कहा था कि भेद जानने अजनबियों पर नजर रखने के वास्ते आज भी नक्सली हर गाँव टोलों में अपना गुप्तचर छोड़े रखते हैं। धत! मन में क्या विचार लेकर बैठ गया। यह सब पहले हुआ करता था। अब नक्सली भी चुनाव लड़ने लगे हैं। अब गुप्तचर रखने का क्या औचित्य!

लगा लड़का कान खायेगा!

''नाम क्या है तुम्हारा'' मैंने पूछा था

''सोहन'' लड़के ने बताया

''सुगिया को जानते हो?''

''कौन वो सुगिया जो अपने काका घर में नौकरानी बनी हुई है?''

'' नौकरानी! तुम कैसे जानते हो वह नौकरानी है?''

'' सारा गाँव जानता है सर! बेचारी!'' लड़के ने मुँह बनाया। स्वर भी बेचारगी से भर गया था

''और क्या जानते हो सुगिया के बारे में?'' अब मैं लड़के के दिमाग में सवार होना चाहा था।

''सर सब बताऊँगा, वह उस टोले में रहती है।'' कह लड़का दूर के एक टीले पर ले गया, कहा टोले पर और ले आया टीले पर। मैंने लड़के की ओर देखा तो वह दूसरी ओर देखने लगा। मैं समझ गया आज जिंदगी की कठिन इम्तिहान है। टीले पर आठ दस लोग पहले से मौजूद थे। बीच में एक चट्टान थी जिस पर मलखान सिंह जैसा एक आदमी बैठा हुआ था, कंधे पर उसने लाल रंग का गमछा डाल रखा था। उनकी बड़ी-बड़ी आँखों में मैं

सवाल की तरह टँग गया था। बाकी नजरें घूरने में लग गयी थीं। मेरा गला सूखने लगा था। पास में पानी भी नहीं था। पानी की बोतल शिकारी को दे आया था। मैं किसी को याद भी नहीं कर सकता था क्योंकि संसार की काल्पनिक चीजों पर न भरोसा था न विश्वास ही। बस माँ को याद कर लिया। दिल को राहत महसूस हुई।

''कौन है कहाँ से है कुछ बताया!''

''नहीं कामरेड दा, पूछा नहीं सीधे इधर ले आया'' उसी लड़के का जवाब था।

''स्याला हरामी की औलाद ...।'' मैं मन ही मन उस लड़के की माँ-बहन करने लगा था।

''आप कहाँ से हैं किस मकसद से पोखरणपुर आना हुआ ..!''

''अखबार में सुगिया के बारे पढ़ा था। उसी को आर्थिक सहयोग के लिए आया हूँ। और दूसरा कोई मकसद नहीं है।'' मुँह से साफनिकल गया।

''समाजसेवी हो!''

''छोटा मोटा।'' मेरा छोटा सा जवाब था।

इस बीच मेरे सामानों की अच्छी तरह जाँच पड़ताल हो चुकी थी। दो आदमियों ने मेरे शरीर की भी जाँच कर ली। तब हुक्म सा हुआ- ''सुगिया से मिला दो।''

हम अब टीले से टोला की ओर लौट पड़े थे। मैं उस लड़के सोहन से बात नहीं करना चाहता था। पर वह तो खुद ब खुद बकने लगा - ''उसके बारे कोई एक बात हो तो बताऊँ..'' मैं चुप रहा। उसने बकना जारी रखा- ''उसके जैसा अभागन मैंने आज तक नहीं देखी। उसकी तकदीर में तो जैसे दुखों ने डेरा ही डाल रखा है। इतनी सी उम्र में ही उसने जीवन के कई उतार-चढ़ाव देख लिए है।'' लड़का कहता चला गया और मैं केवल सुनता चला गया ''कहते हैं अभाव के घाव कभी भरते नहीं, और सुगिया के जीवन में तो अभाव ही अभाव है। उसके जीवन की बड़ी अजीब कहानी है। जिसे सुनकर पत्थर दिल इंसान भी सुबक पड़े। कुपोषण से उपजी जानलेवा बीमारी टीबी उसके परिवार वालों को एक-एक कर लीलती गई। कुपोषण के कोख से किसी तरह बच निकला छोटा भाई खेदना के साथ जीवन के लिए संघर्ष कर रही है सुगिया। टीबी से ग्रसित माँ इलाज के अभाव में दो वर्ष पहले चल बसी। एक वर्ष पूर्व बड़ा भाई भी टी बी और पीलिया से लड़ते-लड़ते इलाज के अभाव में अंतत: दम तोड़ दिया। आखिरी सहारा पिता भी दो माह पूर्व टी बी से जंग लड़ते-लड़ते हार गया। उसके बाप के हिस्से की जो थोड़ी बहुत जमीन जायदाद थी इलाज में सब बिक गयी ...। '' एक पल के लिए वह लड़का रुका था फिर चालू हो गया- ''एक आखरी झोपड़ी थी जो बरसात में ढह गई है। चाचा के घर शरण लेकर जीवन की जंग लड़ रही है सुगिया। बदले में चाची का सारा काम अपने सिर ले रखी है पर अभी तक इसकी मदद को कोई आगे नहीं आया था, आप पहले मददगार के रूप में...।''

''फिर किसी दूसरे टीले पर ले जा रहे हो क्या।'' बीच में ही मैंने टोका था- ''नहीं...।''

हम सुगिया के झोपड़ी के सामने खड़े थे।

एक अजनबी जब किसी अंजान जगह पर पहुँचता है तो अकस्मात कईयों की निगाहों में आ जाता है। यहाँ भी मुझ पर ढेर सारी नजरें उग आयी थीं।

कहा तो यह भी जाता है कि एक दौर था जब सरकारी योजनाओं को भी पोखरणपुर की जमीन पर जन्म लेने से पहले सौ बार सोचना पड़ता था। लेवी का लेबल हर योजना में चिपका होता था। सड़क का

अलग पुल-पुलिया का अलग और तो और इंदिरा आवास भी अछूता नहीं था लेवी से। पेड़-पौधे पर भी नक्सली डर चिपका हुआ होता था। एक कहावत और चल पड़ी थी कि पोखरणपुर की माताएँ भले बेटा-बेटी पैदा करती थीं लेकिन भूख और बेरोजगारी की कोख से पोखरणपुर के हर घर से नक्सली पैदा हो रहे थे।

समय ने करवट बदली। अलग राज्य का गठन हुआ। पंचायती राज की घोषणा हुई। नक्सलियों की भाषा बदल गई। बंदूक की जगह भाई चारे की बात होने लगी। आत्म समर्पण होने लगा। पोखरणपुर गाँव भी इस बदलाव से अछूता न रहा। यहाँ का प्रमुख्य नक्सली जगना जो बाद में जगतपाल के नाम से जाना जाने लगा था नजदीकी थाने में एक दिन बंदूक समेत खुद को हाजिर कर दिया। कई माह बाद वह जेल से बाहर आया और मुखिया का चुनाव लड़ने की घोषणा कर लोगों को सकते में डाल दिया। जो लोग मुखिया का चुनाव जीतने की जोड़-तोड़ में लगे थे। उन्हें साँप सूँघ गया। वहीं राशन दुकानदार नूना गंझू ठगा सा महसूस करने लगा था। जगतपाल ने उसे पंचायत चुनाव में मदद की बात कही थी। परन्तु बदले समीकरण को देख खुद चुनाव लड़ने की बात कह जगतपाल ने गाँव में हलचल पैदा कर दी थी लेकिन कानूनी अड़चनों की बाधा वह पार न कर सकी कई संगीन अपराध उस पर दर्ज थे तब पत्नी को उसने आगे कर दिया था।

उसके बारे में कहा जाता था कि जगतपाल बनने के पहले उसे गाँव में जगना कहा जाता था पहले वह गाँव का एक चरवाहा था। फसल चर जाने के कारण गाँव के मुखिया ने एक बार उसे चप्पलों से पीट दिया था। बाद में जगना भी एक बार मुखिया को डंडों से दे दनादन कूट कर जंगल में भाग गया और लालखंडी गिरोह में शामिल हो गया। वही जगना कालांतर में भय और आतंक का प्रर्याय बन गया था। थाना -ब्लॉक तक उसके नाम से थर-थर काँपते थे।

अब कोई पागल ही होगा जो जगतपाल से पंगा लेने की सोचे, चुनाव प्रचार में उसके आगे सब कुछ दबा-दबा रहा। वोट के दिन उसका डर घर-घर से बाहर निकला और कमांडर की पत्नी फूलमनी देवी मुखिया का चुनाव जीत गयी। उसने पूर्व महिला नक्सली रधवा देवी को पराजित किया था। कल का नक्सली कमांडर जगतपाल की पत्नी अब गाँव की कमांडर बन चुकी थी। पहले जगना का जंगल में राज था अब पोखरणपुर में पत्नी के हाथों राज करेगा।

उसी पोखरणपुर गाँव में पहुँच! आ बैल मार मुझे वाली कहानी का पात्र बन चुका था मैं।

''टीबी की बीमारी ने दूर किया भाई बहन को।''

हिन्दुस्तान अखबार की इस खबर ने इस कदर मुझे विचलित कर दिया था कि दो रातों तक ठीक से सो नहीं सका था। बचपन से मैंने घर में माँ को दूसरों की मदद करते देखा था। माँ की आकस्मिक मौत के बाद वही भाव और भावना मुझ में समा गयी थी। दूसरों की मदद करने वाली माँ की इस पवित्र भावनाओं को मैं मरने नहीं देना चाहता था बल्कि समय के साथ उसे अपने जीवन में आत्मसात कर लिया था।

फिल्मों में ऐसी घटनाओं का चित्रण तो संभव था। परन्तु निजी जिंदगी में इस तरह का होना! कैसा होगा सुगिया और उसके भाई के जीवन का रंग। सोच सोच कर मेरी नस फटी जा रही थी। मैं खुद को रोक नहीं पाया। दूसरे दिन बाजार गया, कुछ जरूरी सामान खरीदा और अगले ही दिन मैं पोखरणपुर के लिए निकल पडा था।

जब भी किसी मुहिम में घर से निकलता-चुपके से निकलता था। यहाँ भी मैंने वही किया। मैं

पोखरणपुर के लिए घर से चला था तो मेरे साथ कोई नहीं था। बस मेरे साथ विचारों का एक झुंड सा चल पड़ा था। मैं जैसे-जैसे पोखरणपुर के नजदीक पहुँचता जा रहा था मेरे अंदर सुगिया को लेकर कई तरह की कल्पनाएँ आकार लेती जा रही थीं।

इस बीच! कौन है, कहाँ से आ रहा है, पोखरणपुर गाँव क्यों जा रहा है? ऐसे कितने सवाल थे जो मुझसे बार-बार टकराये और उसका एक ही जवाब होता ''बस जा रहा हूँ, बाद में सबको पता चल जायेगा'' लोग हैरत से मुझे हुलकने लगते थे। सोहन ने अबकी मुझे ठीक सुगिया घर के सामने लाकर खड़ा कर दिया था। लेकिन वहाँ कोई घर नहीं था। पर उसका जोर था ''यहीं सुगिया का अपना घर था।''

मुखिया घर से सौ गज दूरी पर सुगिया का अपना घर था, बिल्कुल मलबे का ढेर सा-धँसा पड़ा।

दीमकों का टीला उठ आया था। और कुछ ही दूरी पर उसके काका-काकी का घर था, एक पुराना खपरैल और दूसरा एक प्रधानमंत्री आवास! सुगिया का घर तो मिल गया, देख भी लिया। परन्तु सुगिया का कहीं अता-पता नहीं था।

''आप कौन है, कहाँ से आये हैं और सुगिया से क्यों मिलना चाहते हैं?'' पूछने वाला एक दुबला पतला आदमी था। पता चला वह सुगिया का काका है। मुझे वह एक कमजोर आदमी लगा। लुंगी लपेटे हुए था।

''आप सुगिया को बुला दीजिए, मैं उससे मिलने आया हूँ। आपके सभी सवालों का जवाब मिल जायेगा।'' मैंने कहा। पर वह कठुआल वहीं खड़ा रहा। हाइड्रोसिल का भारी मरीज मालूम पड़ रहा था। लोगों का जमा होना शुरू हो गया था। बढ़ती भीड़ में काना फूसी भी होने लगी, गाल बजने लगे थे, होली पार हुए दो दिन बीत चुका था परन्तु बहुतों के चेहरे से रंग अभी भी नहीं उतरा था।

''कुछ देर पहले तो सुगिया यहीं गोबर उठा रही थी।'' भीड़ में से किसी ने कहा था।

''माथे पर कपड़ों की गठरी लादे वह पोखर जा रही थी।'' भीड़ में समाते एक औरत ने कहा। होली का रंग उतार वह सीधे बाँध से चली आ रही थी। यौवन में पगा चेहरा कमल की तरह खिला-खिला लग रहा था और तभी वहाँ जैसे एक हलचल सी हुई। तड़का सी एक तगड़ी औरत मुझसे थोड़ी दूर आकर खड़ी हो गई थी। मैंने महसूस किया उस औरत तभी आ जाने से कई औरतें वहाँ से खिसक लीं और जो खड़ी थीं। मूर्तिवत चुप हो गयीं। यह उस औरत का डर था या दबदबा कहना मुश्किल था। तगड़ी सी उस महिला को देख एक पल के लिए मैं भी सोच में पड़ गया था। इधर वह सीधे मुझसे मुखातिब होते हुए बोली ''तंइ के लागा, कहाँ से आयल है? जे कहेक हव हमरा से कहा, हम सुगिया के काकी लागी।''

बड़ी विनम्रता के साथ मैंने हाथ जोड़ते हुए कहा..'' काकी प्रणाम! मेरा नाम संजय है। मैं एक समाज सेवी हूँ। तारापुर कोयलरी से आया हूँ। गरीब असहाय लोगों को यथा शक्ति मदद करना अपना परम धर्म समझता हूँ। यह मैंने अपनी माँ से सीखा है...।'' मैं कहता चला गया।'' परसों के अखबार में सुगिया और उसके भाई के बारे में खबर छपी थी, उसका फोटो भी छपा हुआ है। देखिए'' मैंने अखबार मोटी काकी के आगे पसार दिया। कई चेहरे आगे आ गये। सबों की आँखें फटीं की फटीं रह गयीं। कुछ सुगिया का फोटो देखने लगे। तभी किसी ने हेड लाइन पढ़ दी।'' टीबी की बीमारी ने दूर किया भाई बहन को।'

''अभी ओकर काका-काकी हम जिंदा हैं, पेपरवा में दूर काहे लिख देलअ!'' काकी गुस्सा गयी ''काकी आप गुस्सा मत कीजिए। जिसने लिखा बहुत सोचकर लिखा है। दोनों भाई बहन के लिए तो पूरी छत

है छत!''मैंने काकी को मक्खन लगाते हुए कहा – ''बस आप सुगिया को बुलवा दीजिए। मैं अपने हाथों से यह सारे सामान उनके हाथ सौंप कर चला जाऊँगा ..।'' संजय कह ही रहा था कि डरी सहमी एक दुबली-पतली लड़की उस औरत के सामने आकर खड़ी हो गई।

शायद वही सुगिया थी!

सुगिया! नाम के अनुरूप सुग्गा जैसा मुखड़ा और साँवला बदन की अठारह वर्षीय सुगिया। शरीर से चौदह की लग रही थी। अपने को किसी तरह अपने फटे-पुराने, मैले-कुचैले कपड़ों से ढँक रखा था। ओढ़नी शायद अभी तक उसे नसीब नहीं हुई थी। वहीं रूखे उलझे उसके बाल तेल साबुन का अभाव साफ बता रहे थे। तभी –''आर ये एकर भाई लागेअ खेदना।'' एक अधेड़ उम्र महिला ने घिसे-पिटे चेहरा वाले एक आठ दस साल के लड़के को मेरे सामने ऐसे हाजिर कर दिया मानो कहना चाहती हो कि सिर्फ बहन की खोज पूछ हो रही है परन्तु इस अभागे भाई को कौन पूछेगा।

सहसा मुझे! महादेवी वर्मा की ''घीसा'' का स्मरण हो आया था। बिल्कुल नि:संग-निश्पाप। बदन पर मात्र एक मैला सा पैन्ट! बाकी शरीर खुला आसमान।

सुगिया से मिलने पोखरणपुर आने की बात मुखिया फूलमनी देवी के कानों से जा टकरायी थी, वह घर से निकली और सोचने लगी- कौन है जो पोखरणपुर में आकर चर्चा का विषय बन गया है? मिलना होगा उससे!

सुगिया के बारे अखबार में उसने भी पढ़ा था। पहले उसने उस पत्रकार को फोन किया फिर उससे बातें करते हुए आगे बढ़ती गयी...। सुगिया के हाथ में सलवार सूट, शॉल, कंबल और उसके भाई के हाथ में पैन्ट-शर्ट और स्वेटर के अलावे सामने जमीन पर पचास किलो चावल की बोरी, दस किलो आटा पैकेट, एक सरसों तेल पैकेट, एक साबुन और बगल में नमक की पैकेट देख फूलमनी देवी की आँखों में खटका सा लगा, आँख मलते हुए- ''आप कहाँ से आये हैं, आपका नाम क्या है?'' उसका सीधा सवाल मुझसे था।

''संजय..समाज सेवी हूँ।'' मैंने हाथ जोड़ते हुए कहा।'सुगिया और उसके भाई के बारे अखबार में पढ़ा था, आपने भी पढ़ा ही होगा। दिल नहीं माना मिलने चला आया। यहाँ आने पर पता चला कि गाँव की मुखिया एक महिला है। आपसे मिलकर खुशी हुई। बहुत सी पंचायतों में आज महिलाओं ने पंचायती राज की कमान सँभाल रखी है।'' मैंने पुन: हाथ जोड़ा। इसके आगे कोई कुछ बोले मैंने फुलमनी देवी से कहा-'सुगिया को आपकी एक मदद चाहिए।'

'क्या ..?' मुखियाइन के मुख से निकला।

''सुगिया के नाम का प्रधानमंत्री आवास पास करवा दीजिए।'' फूलमनी देवी पर नजरें गड़ाते हुए मैंने कहा था। वैसे मैं कल बी डी ओ साहब से मिलने जा रहा हूँ और जरूरत पड़ी तो डी सी शंभु झा साहब से भी मिल लूँगा। सुगिया का प्रधानमंत्री आवास तो बनेगा ही, लेकिन अगर यह आवास आपके मार्फत बनता है तो दोनों भाई बहन को रहने की एक छत मिल जायेगी और गाँव समाज में आपका नाम शुमार हो जायेगा हाँ।' इस बार मैंने भीड़ की ओर देख कर जोर से कहा था।''जाने से पहले मैं गाँव के उस सेठ जी से मिलना चाहूँगा जो सुगिया के अलावे और पाँच लोगों का राशन कार्ड बंधक रखे हुए हैं।''

''राशन कार्ड बंधक है..यह आपको कैसे पता चला?' फूलमनी देवी इस बार चौंक उठी थी।

''मुझे बहुत कुछ पता है मैडम जी।'' मैने पहली बार फुलमनी देवी की आँखों में झाँका था। जहाँ से मेरे

प्रति उसके मन में कई सवाल उठने लगे थे।

''मैं सेठ जी से मिलना चाहता हूँ। मिलाने में कोई मदद करेंगे...'' मैंने अपनी बात पर जोर दिया था।

''चलिए मैं मिलाता हूँ ...।'' सोहन फिर सामने आया।

''फिर किसी टीले पर ले जाने का विचार तो नहीं है....।''

''क्या सर! आप तो ...।''

''तो फिर चलो...।''

गाँव पोखरणपुर का यह दूसरा दो मंजिला पक्का मकान था। जिसके सामने हम खड़े थे। पहला पक्का और शानदार मकान मुखिया फूलमनी देवी का हम देख चुके थे। यहाँ से दूर-दूर तक जंगल ही जंगल दिख रहा था। सेठ के मकान के बाहर कुछ औरतें और दो चार लड़के भी खड़े थे। कुछेक के हाथ में राशन कार्ड नजर आ रहे थे। शायद वे सभी राशन लेने आये थे। मैंने सोहन की ओर देखा। वह मेरा आशय समझ गया और अंदर चला गया।

पाँच मिनट! दस मिनट! बीस मिनट! और आधा घंटा पार। परन्तु न सोहन बाहर आया न सेठ! मुझे कुछ गड़बड़ लगी। मोबाइल का जमाना था। पलक झपकते ही एक जगह की खबर दूसरे जगह पहुँच जाती है। कुछ-कुछ शंका सी हो चली थी। मुझे इस बात की इल्म तो थी कि पोखरणपुर पंचायत के मुखिया पति पूर्व नक्सली कमांडर हुआ करता था। यह याद कर दिमाग में बड़ी उथल-पुथल होने लगी। अभी तक मुखिया पति जगतपाल का दीदार नहीं हुआ था! पहले शिकारी फिर टीले का वो बड़ी-बड़ी आँख वाला और अंत में फूलमनी देवी का वो चेहरा मेरी आँखों के सामने घूम गया। ''राशन कार्ड बंधक है यह आपको कैसे पता चला...।'' कहने के साथ उसके चेहरे ने रंग बदला था।

खड़े-खड़े मेरे पैर दुखने लगे थे। तभी देखा सामने से वही बड़ी-बड़ी आँखों वाला आदमी चला आ रहा है, उनके पीछे पाँच-छः और ऐसे चले आ रहे थे जैसे आदेश मिलते ही किसी को उठा लेंगे। या फिर लतिया देंगे।

उसी पल! कानों में आवाज टकराई- ''अरे तो कमांडरवा आय रहल हो..।'' खड़े में से किसी ने कहा था। मतलब यही जगतपाल है! और मैं इनसे मिल चुका हूँ। देखा जो लोग सामने खड़े थे, अगल-बगल दुबक गये। मैं संभल कर खड़ा हो गया। अब जो हो सो हो! मेरे मुँह से आवाज निकली-''आप ही जगतपाल हैं उस वक्त जान नहीं पाया था-लाल सलाम!'' उसने कोई जवाब नहीं दिया।

''यह राशन कार्ड का क्या मामला लेकर बैठ गया.....।'' जगतपाल ने मेरी तरफ देखते हुए सख्ती से कहा था।

''तुम कोई बी डी ओ हो, डी सी हो जो राशन कार्ड की इन्क्वारी करने चला आया है। जान प्यारी है तो चुपचाप निकल ले.....।'' अपने मकान से बाहर निकलते ही सेठ नूना गंझू मुझपर चढ़ दौड़ा। वह क्रोध से काँप रहा था। बीपी बढ़ गया था शायद! वहीं पता चला वह भी पूर्व में नक्सली था और जगतपाल का दाहिना हाथ था।

''आपको पता होना चाहिए कि इस तरह राशन कार्ड बंधक रखना कानून की नजर में कितना बडा अपराध है।''

''टीले पर तुमने कहा था कि समाज सेवी हो।'' जगतलपाल का तेवर कड़ा होता जा रहा था।

''समाज सेवा का मतलब है मदद पाने वाले की मदद करो और चलते बनो, यह न कि उसका खतियान पर्चा जाँच करने लगो। मुझे उस वक्त लगा आर्थिक मदद करने आये हो, कर के चले जाओगे पर तुम तो ..अरे पानी लाओ ..तुम तो हमारी अंदर का जोरबंध ही खोलने बैठ गया।''

इसके साथ ही जगतपाल का एक झन्नाटेदार थप्पड़ मेरे गाल पर पड़ा था। उसका गुस्सा चरम पर पहुँच चुका था। मुझे दिन में ही तारे नजर आ गये थे। इसी बीच जगतपाल के एक लौन्डे ने मेरी पीठ पीछे लात मारी–''निकल स्याला... ।''

मैं मुँह के बल गिरता कि तभी पत्रकार उत्तम जी ने आगे बढ़कर सँभाल लिया था।

''गाँव में किसी की मदद करने आये को इस तरह लात मारना गलत है।'' किसी के मुँह से निकला।

''सही कहा तुमने! इस तरह मार पीट करना तो सीधे–सीधे गुंडा गर्दी है।'' दूसरा बोला।

''इसीलिए तो दूसरे गाँव के लोग इस गाँव में रिश्ता जोड़ने से पहले सौ बार सोचते हैं।'' कोने से तीसरी आवाज आई।

''विकास के नाम पर सिर्फ लूट हो रहा है! कुछ ही मालामाल हो रहे हैं.. ।'' भीड़ और शोर दोनों बढ़ने लगे थे।

''पीछे से कौन भौंक रहा है बे? सामने आकर बोल न।'' जगतपाल गुस्से से उबल पड़ा था।

''आपका यह रूप देख लग रहा आज भी इस इलाके में जंगल राज कायम है।'

''बको मत।'' जगतपाल फिर गुरजा।

''आगन्तुक ने क्या गलत बात कही जो उसके साथ मारपीट की गयी..... ।'' बोलने वालों की आवाज ऊँची होने लगी थी– ''आज की यह घटना साबित करती है कि पंचायत में मुखिया गिरी की आड़ में दादागिरी हो रही है। गरीब कुछ बोलें नहीं और अमीर उसकी नोच खसोट करता रहे। जोरू जमीन सब पर उसका अधिकार बना रहे।'' भीड़ में शोर काफी बढ़ गया था। कौन क्या बोल रहा है पता करना मुश्किल था।

''होश में रहो होश में...'' जगतपाल लगभग धमकाने सा बोला –'' मैंने हथियार डाला है लेकिन सोच वही पुराना है, मैं वही जगना हूँ। सबका जीना हराम कर दूँगा ..धाँय धाँय.. !'' गुस्से में रिवाल्वर जगतपाल के हाथ में आ गया था। भीड़ में दहशत फैल गई। इससे पहले कि भीड़ भाग खड़ी होती तभी कहीं से सनसनाता एक पत्थर सीधे जगतपाल की कनपटी पर आ लगा। उसके मुख से एक चीख निकल गई! एक हाथ से कनपटी सहलाने लगा, विस्मित नेत्रों से उसने भीड़ की ओर देखा, फिर गोली की तरह दनदनाता हुआ उसी दिशा में बढ़ गया जिधर से वह आया था। उसकी बड़ी–बड़ी आँखों में एक बड़ा सा खौफ समाता चला गया था... !

सम्पर्क : *मुंगो गाँव, बोकारो (झारखंड)*
मो. 6204131994

मोहन वर्मा

अमरबेल से फूटती खुशबू

15 अगस्त की खुशनुमा सुबह। टीवी पर लाल किले से प्रधानमंत्री का भाषण आ रहा था। ज्ञानसिंह अपनी आदत के अनुसार सोफे के नीचे पसर कर बैठा था और भाषण को सुनकर समझने की कोशिश कर रहा था।

आज़ादी के पचहत्तर साल के विकास की गौरव गाथा। हालाँकि पढ़ा-लिखा न होने के बाद भी देखते-समझते कुछ-कुछ समझ में आने लगा था। मंत्रमुग्ध सा टीवी में खोया था कि हॉल में झाड़ू लगाते-लगाते भागो ने टोका - 'कित्ती बार समझाया है कि सोफे पर बैठा करो पण ये तो आदत से मजबूर है नी..कदी कोई की सुनी है जो अब सुनेंगें। ...हर बार की तरह पत्नी की झिड़की खाकर कुनमुनाता हुआ, मन को मोहने वाले प्रधानमंत्री के भाषण में और अपने में ही खोया उठकर सोफे पर जा बैठा। दरअसल टीवी पर पचहत्तर सालों के विकास की बातें सुनते-सुनते वो अतीत के झूले पर जा बैठा था और सुन तो भाषण रहा था मगर सोच रहा था क्या सचमुच इत्ता सब कुछ बदल गया है?

टीवी पर प्रसारण के बीच विज्ञापन आने लगा। पलटकर जमुहाई ली और पत्नी को झाड़ू लगाते देखकर झिड़की का हिसाब चुकाने का मन हो आया - 'अरे महारानी झाड़ू-पौंछा बर्तन-सफाई करने बाई आती है ना मगर अपने को तो मेहतरानी बनने का शौक है ना?' भागवंती ने खा जाने वाली नजरों से देखा और बोली - नौकर तो नौकर ही होते हैं जबतक अपने घर की अपने हाथ से साफ़-सफाई नी करें चमकता ही नहीं है मगर तुम्हें ये सब थोड़ी समझ में आयेगा। थोड़ी सी मीठी नौक-झौंक के बाद ज्ञानसिंह बोले - ठीक है, ठीक है जो करना है करो पर महारानी एक कप चाय तो पिला दो। ..झाड़ू लग चुकी थी। भागवंती हाथ धोकर चाय बनाने चली गई। टीवी पर स्वाधीनता दिवस का भाषण खत्म हो चुका था और अब सभी चैनलों में भाषण को च्युंगम जैसा चबाकर दर्शकों को पकाने का काम चल रहा था। ज्ञानसिंह बाहर कुर्सी पर बैठकर दीवार के सहारे चढ़ती अमरबेल को देखने लगे जिसके साथ-साथ लिपटी लता की खुशबू उन्हें बार-बार अतीत में धकेलने लगी। दीवार का सहारा पाकर चढ़ती बेल और लता की खुशबू में उन्हें कल से आजतक का सफर याद आने लगा और आँखें बंद कर वे फिर से अतीत के झूले पर जा बैठे।

गाँव के चौरस्ते पर टाट के टुकड़े पर बैठा ज्ञानू किसी का जूता सी रहा है और सोच रहा है कि उमर भर फटे जूतों को ही सीना है कि कभी अपना फटा भाग सीने का मौका भी आयेगा। सोचते-सोचते सुई हाथ में जा चुभी, वे तिलमिला उठे। न जाने कब से पास आकर बैठ गये बीने ने टोका - 'ओ दादा ध्यान कां है तमारो।' अचकचा कर देखा - 'बोले कईं नी रे..तू कदे आयो' ..बीने बोला - 'स्कूल से घर जाते-जाते यां अईग्यो।' ज्ञानू ने पूछा - 'भेरू और जोती..?' बीने ने बताया वो घर चले गये हैं। अच्छा-अच्छा बोल कर वो फिर अपने काम में जुट गया और बीने पास पड़े अखबार के पन्ने पर लिखा पढ़ने लगा। बीने यानी विनय जिसे पढ़ने का चस्का था। यहाँ वहाँ जहाँ भी जो कागज हाथ में आ जाता वो अक्षर-अक्षर चाटने लगता। बाप-बेटे बैठे थे कि रामसिंह अपनी चप्पलें

सुधरवाने आया। उसे देख कर ज्ञानू के चेहरे पर मुस्कुराहट आ गई बोला – 'आओ रामसिंह भैया..बीने..काका को नमस्ते करो'। बीनू ने आदर से कहा – राम-राम काका। रामसिंह ने स्नेह से राम-राम कहा और खुश होकर बीने को आशीष देते हुए बोला – ज्ञानू भई जो है सो है पर तुम्हारे बच्चे एक दिन तुम्हारा नाम ऊँचा करेंगे।

नाम से बात चली तो बताऊँ – इस परिवार के नाम की कहानी भी अजीब है। ज्ञानसिंह का नाम माँ-बाप ने क्या सोचकर रखा पता नहीं पर ज्ञानसिंह से ज्ञानू उसे गाँव वालों ने कब बना दिया, उसे याद है और फिर हिकारत से ज्ञानू से घाणु और कभी-कभी गांडू के नाम से भी बुलाया गया। शादी भागवंती से हुई जो आई तो अपने भाग्य लेकर थी मगर गाँव की महिलाओं ने छोटे-मोटे कार्यक्रमों में अपने काम के लिए बुलावा देते। उसे आते देख कर ये कहकर कि लो वो आ गई भागी-भागी या फिर उनके घरों से कुछ माँगने पर उसे भगाते हुए जब कहा – 'चल भाग'.. तो भागवंती कब भागी हो गई समय के साथ पता ही नहीं चला। पहला लड़का हुआ तो उसका नाम किसी शुभचिन्तक ने विनय रख दिया था। बाद में गाँव के लड़कों की मेहरबानी से बीने होकर उसे चिढाने के लिए काम आने लगा – 'वो आ गया कचरा बीने..या फिर ले भई चल गऊँ बीने..।' दूसरा लड़का हुआ तो नाम भेरू रखा गया जिसे देखकर भी गाँव के उद्धंड लड़के भें..भें...की आवाजें निकालकर चिढ़ाते। हालाँकि वो उनसे भिड़ भी जाता मगर माथे पर लिखी जाति उसे घर लौटने पर मजबूर कर देती। तीसरी लड़की हुई तो नाम ज्योति रखा गया जो ज्ञानू और भागवंती के लिए भले मोती थी मगर बिगड़ैल उसे जोती, खोती, रोती किसी भी नाम से बुलाते...

ज्ञानसिंह आँखें बंद किये कुर्सी पर बैठा अतीत में यों खोया था जैसे अपने जख्मों को सहला कर आनंदित हो रहा हो। बच्चों की उमर पढ़ाई की हो गई तो गाँव के स्कूल के एक नेकनीयत और सहृदय मास्टर विजय सर को न जाने उन बच्चों में क्या नजर आया कि तमाम विरोधों के बावजूद न सिर्फ उन्हें पढ़ने को प्रेरित किया, बल्कि किताब कापियों तथा फीस की व्यवस्था भी की। बच्चों की रुचि ने भी मास्टरजी की सहृदयता का मान रखा और माँ सरस्वती उनका मार्ग प्रशस्त करती रही। नतीजा ये रहा कि गाँव की पढ़ाई पूरी करके वे विजय सर की मदद से शहर पढ़ने गये। उनकी छात्रवृत्ति की व्यवस्था हो गई और विनय की पढ़ने-लिखने की रुचि ने उसे पत्रकार बना दिया। भेरू का नाम विजय सर ने गाँव में ही उसका भविष्य देखकर भेरू से शेरू यानी शेरसिंह कर दिया था जो एनसीसी के प्रशिक्षण के बाद सहस्त्रबुद्धे सर के मार्गदर्शन में पुलिस प्रशिक्षण के लिए चुन लिया गया। कल की खोती रोती मगर ज्ञानू और भागवंती के परिवार का चमकता मोती यानी ज्योति भी अब चमक उठी थी और आईटी का कार्स करके एक एमएनसी में ऊँचे वेतन पर पदस्थ हो गई थी साथ ही एक्टिविस्ट भी।

विनय अब एक बड़े पत्रकार के नाम से जाना जाने लगा, शहर में नाम इज्जत होने लगी। शेरसिंह इंस्पेक्टर शेरसिंह होकर शहर के एक थाने में पदस्थ हो गये और बिटिया ज्योति के चेहरे पर भी खुद के पाँवों पर खड़े होने की दमक नजर आने लगी। बच्चों ने शहर के पॉश इलाके में तीन मंजिला मकान बना लिया। बच्चों ने ज्ञानू और भागवंती के फटे भाग्य को कब सी दिया गुजरते समय के साथ पता ही नहीं चला..अतीत में और अपने ही विचारों में खोये ज्ञानसिंह को जब भागवंती ने झकझोरकर उठाया तो उनकी तन्द्रा टूटी। कुम्भकरण का भी बाप हो तम..कोई कित्ती देर से घंटी बजई रियो है..कां ध्यान है तमारो..छोरा छोरी अई ने पूछी रिया कि पापा के कई हुई ग्यो..जाओ देखो कुन है दरवाजा पे।

ज्ञानसिंह ने दरवाजा खोला- देखा हुकमसिंह है। ...गाँव के पूर्वसरपंच.. हाथों में मिठाई का पैकेट और

फूलों का गुलदस्ता। एक समय की तनी आँखें और मूँछे अब नीची थीं। वक्त के हाथों खिचड़ी बालों से झाँकती सफेदी के बावजूद उन्हें पहचानने में ज्ञानसिंह को कोई देर नहीं लगी। उन्हें इस तरह अपने दरवाजे पर देख कर आश्चर्य से भरे ज्ञानसिंह बोले – 'अरे आप इस तरह..और ये सब क्या है..?' हुकमसिंह थोड़े संकोच से मगर अब भी अपने व्यंग्य को दबाते, छिपाते बोले – 'भैया तू तो अबे बड़ो आदमी हुई ग्यो है पण है तो अपनों ज मनक.. आज देश को बड़ो त्यौहार है ..शहर आयो थो तो सोच्यो मिलता चलूँ' .. ज्ञानसिंह को बात कुछ हजम नहीं हुई उन्हें याद आया वो झंडावंदन का दिन जब झंडावंदन के समय मिठाई बँटने के वक्त कैसे उन्हें और उनके बच्चों को दूर रहने के लिए दुत्कारा गया था। कुछ कहने को हुए पर चुप रहे।

ज्ञानसिंह बोले – 'आईये आईये होकम' ..बीच में ही बात काटकर हुकमसिंह में कहा – 'अरे भैया काय का होकम.. भई हाँ तमारा' ..ज्ञानसिंह फिर फिर अतीत के झूले में जाने लगे, मगर तभी ऊपर से शेरसिंह की आवाज आई – 'कौन है पापा' .. देखा तो हुकमसिंह थे। शेर सिंह नीचे उतर कर उनके बीच आ गये। बोले – 'अरे आप आईये आईये – क्या बात है?' और उनके हाथों में गुलदस्ता और मिठाई देखकर बोले – 'ये सब क्या है ..?' हुकमसिंह ने बिना वक्त बर्बाद किये कहा – 'अब क्या कहूँ बेटा तुम्हें तो सब पता है हमारी औलाद जालम की करतूत .. गलत संगत में क्या कर बैठा है और अब जेल में है। वकील कहते हैं बड़ा मामला है जमानत भी नहीं हो सकती। अब तुम ही कोई रास्ता निकाल सकते हो' ... तब तक विनय भी आवाज सुनकर आ गया और कुछ ही देर में ज्योति भी चाय लेकर आ गई। चाय को अनदेखा करते देख कर ज्योति ने टोका – 'काका जमाना बदल गया है चाहो तो पी सकते हो' .. हुकुमसिंह खिसियाने से मुस्कुराकर रह गये। विनय ने चुप्पी तोड़ी – 'काका मीडिया में बहुत हल्ला है..और जिस तरह से लड़की के साथ जालम और उसके दोस्तों ने हरकत की है यदि वो बच जाती है तो भी और मर जाती है तो भी मुश्किल ही मुश्किल है' ...अचानक बीच में ज्योति अपनी भावनाओं पर काबू नहीं रख सकी और बोली – 'काका बाप नहीं एक इंसान होकर सोचो और यदि बाप होकर सोच रहे हो तो उस लड़की के बाप होकर सोचो कि ये घटना' ..फिर न जाने क्या सोचकर ज्योति अपनी बात अधूरी छोड़कर चुप हो गई। शेरसिंह बोला – 'काका मामला अब राजधानी तक और मानवाधिकार तक जा पहुँचा है। हम कुछ नहीं कर सकते' ... हुकमसिंह के पास किसी की बात का कोई जवाब नहीं था। बस अपनी ही उलझनें और अपने ही सवाल थे।

सभी के बीच पसर रही चुप्पी को तोड़ते हुए विनय ने कहा– 'काका जालम उसके दोस्त और हम तीनों भाई बहन भी आपके सामने बड़े हुए हैं और कहूँ तो हम तो अभी भी बड़े नहीं हुए है। हम सबने जो भी सीखा, समझा, संस्कार पाये वो आप बड़ों से ही पाये हैं फिर आप ही सोचो कहाँ और क्या कमी रह गई? आप हमेशा भाव में रहे और हम सब अभावों में रहे। मगर माँ–पापा और गुरुजनों से और कुछ सीखा हो या न सीखा हो इंसानियत जरूर सीखी है। हम सब आपसे पहले भी बहुत छोटे थे, और अब भी छोटे ही हैं और कहूँ तो छोटे ही बने रहना चाहते हैं..ईश्वर हम सबको बस मनुष्य बनाये रखे।निरुत्तर हुकमसिंह क्या कहते, बस उठकर जाने को हुए। हुकमसिंह को बिदा करने बाहर आये ज्ञानसिंह की नजर दीवार के सहारे ऊपर की और उठती अमरबेल पर जा पड़ी जिससे लिपटी लता अब भी खुशबू बिखेर रही थी।

सम्पर्क : *देवास (म.प्र.)*
मो. 98275 03366

अखिलेश श्रीवास्तव चमन

दादी के आँसू

गलत नहीं कहा है किसी ने कि मूल से अधिक प्यारा सूद होता है। अगर किसी को इस कथन की सत्यता के बारे में रंचमात्र भी संदेह हो तो वह खुशियों में सराबोर सावित्री चाची को देख कर अपनी शंका का निवारण कर सकता है। उनको देख कर समझ में आ जाएगा कि किस को कहते हैं जमीन पर पाँव नहीं पड़ना, किस को कहते हैं फूले नहीं समाना, किस को कहते हैं मन में हजार-हजार लड्डू फूटना, किस को कहते हैं इतराना, और किस को कहते हैं खुशी के मारे फूल कर कुप्पा हो जाना। सचमुच सावित्री चाची के पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे आजकल। खुशी का आलम यह था कि इन दिनों सारी-सारी रात नींद भी नहीं आती थी उनको। इन दिनों उनकी रातें जागी आँखों से सपने देखने, भाँति-भाँति के खयाली पुलाव पकाने, स्मृति पर जोर डाल कर शादी की विभिन्न रस्मों के लिए जरूरी सामानों की फेहरिश्त बनाने और विभिन्न कार्यक्रमों की रूपरेखा तय करने में ही बीत जाती थीं।

सच बात तो यह थी कि सावित्री चाची को खुद अपने आप से और अपने सौभाग्य से ईर्ष्या होने लगी थी। कुल-खानदान, टोला-मुहल्ला से ले कर जान-पहचान और रिश्ते-नाते तक में भला कौन ऐसा था जिसके बेटे और पोते इतने बड़े अफसर हुए हों। सावित्री चाची के इकलौते बेटे प्रकाश चन्द्र डिप्टी कलक्टर थे।

''अरे नहीं भाई डिपुटी कलट्टर नहीं है। डिपुटी कलट्टर तो हमारा परकाश तभी था जब वह नौकरी में भर्ती हुआ था। अब तो तरक्की कर के बहुत ऊपर पहुँच गया है। कोई और बड़ा अफसर हो गया है। बताते हैं लोग कि बस अब एक तरक्की और करेगा तो सीधे कलट्टर बन जाएगा। यानी अभी कलट्टर से बस एक सीढ़ी नीचे है मेरा बेटा।'' अगर कोई सावित्री चाची के बेटे को डिप्टी कलेक्टर कहता है तो वह तुरन्त एतराज करती हैं और उसको समझाने लगती हैं।

हाँ तो सावित्री चाची के इकलौते बेटे प्रकाश चन्द्र इन दिनों कानपुर में अपर जिलाधिकारी के पद पर तैनात थे। प्रकाश चन्द्र के बड़े बेटे मुन्नू बाबू यानी नवीन प्रकाश ने आई.आई.टी. रुड़की से इंजिनियरिंग की पढ़ाई की थी और आजकल मुम्बई में साफ्टवेयर की किसी विदेशी कम्पनी में नौकरी कर रहे थे।

''अरे ! सत्तर हजार रुपिया महीना तनखाह पाता है मेरा मुन्नू। पूरे सत्तर हजार...।'' लोगों को यह बताते समय सावित्री चाची अपने दोनों हाथों को कंधे के समानान्तर फैला कर, और आँखें फाड़ कर

ईशारों से ऐसे हाव-भाव प्रदर्शित करती थीं कि सुनने वाला हँसे बगैर नहीं रह पाता था।

सत्तर हजार रुपया महीना पगार पाने वाले सावित्री चाची के उन्हीं पोते मुन्नू बाबू की शादी थी। जब से शादी की खबर आयी है सावित्री चाची की खुशी का कोई ओर-छोर नहीं है। पूरे मुहल्ले में फिरकी की तरह नाचती फिर रही हैं वह। घूम-घूम कर सभी को बताती फिर रही हैं। रात-दिन, चौबीसों घंटे बस उसी शादी की बात और उसकी ही तैयारी के सिवा और कुछ भी नहीं सूझ रहा है उनको। बस मन के किसी कोने में जरा सा मलाल है तो इस बात का कि ए.डी.एम. साहब यह शादी अपनी नौकरी से यानी कानपुर से कर रहे थे। यदि यहीं शादी यहाँ गाँव से सम्पन्न होती तो बात ही कुछ और होती। हीत-नात, दयादी-पट्टीदारी और गाँव-जवार के लोगों पर अपना रौब-रुतबा गाँठने तथा अपनी हैसियत दिखाने का अवसर मिलता सावित्री चाची को। देखने वाले देखते कि कितना बड़ा अफसर है उनका बेटा।

''प्रकाश ठीक ही कर रहा है जो अपने बेटे की शादी गाँव से नहीं कर रहा है। वरना इस भुच्च देहात में उतने ठाट-बाट, धूम-धाम का इन्तजाम कैसे हो पाएगा भला? एक से बढ़ कर एक बड़े लोग, साहब-सूबा, मंत्री-संत्री, सेठ-साहूकार आयेंगे शादी में। उनके लायक उठने-बैठने की जगह भी तो होनी चाहिए। सैकड़ों तो मोटर, गाड़ियाँ आयेंगी। उनके लिए भी तो रास्ता और खड़ी करने की जगह होनी चाहिए। यहाँ गाँव में कोई बढ़िया चीज, सामान भी तो नहीं मिलेगा। और खाने-पीने, आने-जाने, रहने-ठहरने की परेशानी होगी सो अलग। अरे भाई! अब वो जमाना तो रहा नहीं कि कद्दू की सब्जी, पूड़ी, आलूदम और बूँदी, दही से निपट जाये शादी-ब्याह। आजकल तो काज-परोस में इतनी तरह की चीजें बनती हैं, खाने-पीने के इतने सारे आइटम होते हैं कि आदमी उन्हें देख-देख कर ही अघा जाये। यहाँ देहात में न तो वो सब सामान मिलेगा और न ही वैसा बनाने वाले कारीगर। कानपुर बड़ी जगह है....वहाँ बढ़िया अर-इंतजाम हो जाएगा।'' पतिदेव यानी मास्टर साहब ने समझाया तो सावित्री चाची के मन का मलाल कुछ कम हुआ।

''ए परकाश के बाबूजी! सुनते हैं कि कानपुर की गाड़ी में भीड़ बहुत होती है। एको दिन में बलिया चले जाइए और सीट का रिजरवेशन करवा लीजिए। नहीं तो भीड़-भड़क्का में सामान ले कर जायेंगे कैसे.....?'' एक दिन सवेरे उठते ही सावित्री चाची ने कहा।

''ठीक है। ऐसा करते हैं कि सत्रह तारीख की शादी है तो पन्द्रह की रात का रिजर्वेशन करा लेते हैं। सोलह को सवेरे पहुँच जायेंगे कानपुर।'' मास्टर साहब का इतना कहना था कि पजामे से बाहर हो गयीं चाची। ''आप भी गजबे बात करते हैं....। सत्रह की शादी है तो सोलह को सवेरे पहुँचेंगे? हम कोई हीत-नात या मेहमान हैं काऽ जो ऐन शादी के टाइम पर पहुँचेंगे। चार-पाँच दिनों पहले से तो हल्दी, मटकोड़ और संझा-पराती शुरू हो जाती है। बाइस तरह के तो रसम पूरे करने होते हैं शादी-बियाह में। बहू कौन दो-चार बेटे, बेटियों की शादी कर चुकी है कि उसको रसम-रिवाज के बारे में पता होगा। भला बूढ़-पुरनिया के बिना कौनो काज-परोस होता है क्या? हमें पहिले चल के बहू को विधि-विधान बताना होगा, एक-एक रसम की तैयारी करनी, करानी होगी। कम से कम सात-आठ दिन पहले तो चलना ही पड़ेगा।''

''हे भगवान! तुम रह गयी गँवार की गँवार ही। अरी बूढ़ी दाई, वो जमाना गया जब पन्द्रह दिनों पहले से ही दुलहा-दुलहिन को लगन लग जाया करता था। अब चट मँगनी, पट ब्याह का जमाना है। शहरों में किसी के पास इतनी फुरसत नहीं कि हफ्ता, दस दिन तक रस्म-रिवाज करे और संझा-पराती गाए,

गवाए। समझी?'' मास्टर साहब बोले।

''अच्छा, अपना कायदा-कानून अपने पासे रखिए और कल सवेरे जा कर टिकट रिजरब करा आइए। इनके कहने से बिना रसम, रिवाज के शादी हो जाएगी। बहुत अंग्रेज बन रहे हैं। अरे! इसी बात के लिए तो हफ्ता दिन पहिले चलना है हमको कि बहू से कोई रसम-रिवाज छूट ना जाए।'' सावित्री चाची ने घुड़का तो मास्टर साहब हँसते हुए बाहर चले गए।

अगले दिन अपने खानदानी पुरोहित भरत पाठक को बुला कर चाची ने हल्दी, मटकोड़, पीतर, कोहबर से ले कर कुँवा पूजन और कंगन छुड़ाई आदि तक एक-एक रस्म की साइत और समय पूछ कर कागज पर लिखवा लिया।

'अरे! मटकोड़ के लिए और दुलहिन उतारने के लिए बाँस की दउरी, चढ़ावे के लिए डाल और परिछावन के लिए सूप भी तो चाहिए होगा। पता नहीं वहाँ शहर में ये सब चीज मिले कि नहीं मिले। इसके बिना रसम कइसे होगा?' अचानक ध्यान आया तो सुदामा डोम को बुलवा कर उन्होंने डाल, दउरी और सूप तैयार करने के लिए कह दिया।

पता नहीं बहू को सिंधोरा का ध्यान होगा कि नहीं....। उसने मँगावाया होगा कि नहीं। एक दिन ढेर सारे सामानों से लदी-फदी सावित्री चाची रमरतिया और मास्टर साहब के साथ शादी से छः दिन पहले ही कानपुर पहुँच गयीं। वहाँ ए.डी.एम. साहब के सरकारी आवास में आँगन के दूसरे छोर पर एक स्टोर रूम था। सावित्री चाची और रमरतिया को उसी में ठहराया गया। गाँव से लाए सूप, दउरी, डाल, सिंधोरा आदि ऊटपटाँग चीजों को देख कर साहब की बीबी तो केवल मुँह बिचका कर रह गयीं लेकिन उनकी छोटी बेटी ने कह ही दिया-''अरी दादी! यह सब क्या आलतू-फालतू सामान ले आयी हैं आप।''

''अरी नन्हकी! ई सब आलतू-फालतू नहीं बहुत जरूरी चीजें हैं बेटी। शादी में रसम-रसम पर जरूरत पड़ती है इन चीजों की।''

''दादी प्लीज! मेरा नाम तृप्ति है। तृप्ति कह कर बुलाइए। यह नन्हकी, फन्हकी पसंद नहीं है मुझको।'' ए.डी.एम. साहब की बेटी ने तुनक कर कहा और गुस्से में पाँव पटकती चली गई।

''ई देखो नन्हकी को....। अभी काल्ह तक दादी, दादी किए गोदी में चिपकी रहती थी.....किस्सा-कहानी सुनाने के लिए नाक में दम किए रहती थी....और आज अंग्रेजी बतिया रही है।'' पोती की बात को उन्होंने हँसी में उड़ा दिया।

''अरे ! शादी-बियाह का घर ऐसा होता है कहीं....? ना गाना ना बजाना, ना रिश्तेदारों, नातेदारों की भीड़, ना कोई तैयारी। कहीं कोई सुनगुन ही नहीं है। सारे लोग हाथ पर हाथ धरे ऐसे आराम से बइठे हैं जैसे कोई बात ही न हो।'' ए.डी.एम. साहब के घर का रंग-ढंग देखा तो सावित्री चाची रामरती से बोलीं।

''हाँ ईआ, यहाँ तो लगता ही नहीं है कि पाँच-दिन के बाद इस घर में शादी होने वाली है। पता नहीं बड़े शहर में शादी ऐसे ही शान्ति से होती है क्या।'' रामरती ने उनकी हाँ में हाँ मिलायी।

ए.डी.एम. साहब के घर में व्याप्त शान्ति और निश्चिन्तता को देख कर सावित्री चाची के आश्चर्य का ठिकाना न था। सर्वाधिक आश्चर्य उनको इस बात से थी कि किसी ने भी उनके लाए सामानों में रुचि नहीं दिखलायी। वह चाह रही थीं कि बहू और पोतियाँ आ कर पूछें कि वह गाँव से क्या-क्या ले आयी हैं। फिर

वह अपने साथ लाए एक-एक सामान सभी को दिखायें और वे सभी उन सामानों की प्रशंसा करें। लेकिन यहाँ तो जैसे किसी को फुरसत ही नहीं थी। कोई मतलब ही नहीं था। सब अपने-अपने में मस्त और मगन थे। सवेरे जब वह लोग यहाँ पहुँची थीं बस तभी एक बार बहू उनके कमरे में आयी थी और उनकी चारपाई, बिस्तर आदि का प्रबन्ध करने के बाद जो गई तो फिर दुबारा उनके कमरे में झाँकने तक नहीं आयी। दोनों पोतियाँ भी बस तभी एक बार दिखी थीं। उनको नमस्ते करने आयी थीं। उसके बाद किसी ने भी उनकी सुध नहीं ली। झाड़ू-बुहारू से ले कर खाना बनाने, और परस कर खिलाने तक हर काम के लिए दाई, नौकर लगे थे। वे समय-समय पर चाय, नाश्ता और खाना उनके कमरे में ही पहुँचा दिया करते थे।

सारा दिन उन्होंने जैसे-तैसे काटा। लम्बी यात्रा की थकान होने के कारण थोड़ी देर आराम किया। लेकिन मन नहीं माना तो शाम होते ही शादी की तैयारियों का जायजा लेने निकल पड़ीं। ''अरी बहू ! मर-मसाला कूटना हो, चावल बीनना, फटकना हो, गेहूँ धोना, सुखाना हो, आटा, बेसन चालना, रखना हो या धोती, साड़ी बगैरह रंगना-रंगाना हो.....जो भी काम बाकी रह गया हो बताओ। मैं इसी सब के लिए तो रमरतिया को अपने साथ ले आयी हूँ।''

''नहीं अम्मा जी.....कोई काम नहीं है। कैटरर को ठेका दे दिया गया है। वही करेगा सब इन्तजाम।'' बहू ने कहा तो मुँह ताकती रह गयीं वह।

''ठेका....? किस बात ठेका दी हो बहू.....?''

''अरी अम्मा जी, शादी के एक दिन पहले से ले कर एक दिन बाद तक के चाय, नाश्ता, खाना, पीना सभी चीज का ठेका एक हलवाई को दे दिया गया है। वही सब इन्तजाम करेगा। खुद ही सामान भी ले आएगा और बनाएगा, खिलाएगा भी। हमें कुछ नहीं करना है। बस पैसा दे देना है उसको।''

''अच्छा....? तो नाश्ता, खाना का भी ठेका होता है...?''

''हाँ अम्माजी। यहाँ शहर में तो शुरू से अंत तक पूरी शादी के खाने-पीने का ठेका हो जाता है। हलवाई को बस ये बताना होता है कि किस टाइम खाने या नाश्ते में कौन सी चीज चाहिए।''

''फिर तो हलवाई बाजार का गंदा-संदा, शुद्ध-अशुद्ध जो चाहे बनाए, खिलाए....। लाख मन घिनाए खाना ही पड़ेगा।''

''तो क्या किया जाये। जब सारे रिश्ते-नाते के लोग जुटेंगे तो इतने ढेर सारे लोगों के लिए बनाना और खिलाना-पिलाना कौन करता भला? घर के किचन में इंतजाम भी तो मुश्किल था। सो हलवाई को सहेज दिया गया है।''

''हाँ भाई तुम लोग नए जमाने की बिटिया, बहुरिया हो। नया रीति-रिवाज है। नहीं तो हमारे समय में एक बारात के बराबर हीत-नात का खाना, नाश्ता तो घर की औरतें ही सँभाल लेती थीं। हफ्ता, दस दिन पहिले से ही जुट जाते थे लोग और हफ्ता भर बाद तक रहते थे।''

बहू ने कोई उत्तर नहीं दिया। उनके सामने से हट कर अपने कमरे में चली गई।

''अरी बहू! मुन्नू नहीं दिख रहा है....। अभी आया नहीं क्या बम्बई से?'' थोड़ी देर बाद अचानक ध्यान आया तो पूछा सावित्री चाची ने।

''ना अम्मा जी.....वह पन्द्रह तारीख को वहाँ से चल कर सोलह को पहुँचेगा यहाँ।''

''क्या....? सत्रह को उसकी शादी है और सोलह को आएगा वह। तो फिर तिलक कब होगा, हल्दी कब चढ़ेगी....? हल्दी की साइत तो चौदह तारीख की शाम को ही है। मैं भरत पंडित से हर रसम की साइत लिखा कर ले आई हूँ।''

''अब क्या करें अम्मा जी। बेचारे को छुट्टी ही नहीं मिली तो कैसे आता भला। उसी दिन सोलह को ही जल्दी-जल्दी हो जाएगा सारा रस्म।''

''अरे वाह रे वाह....। भला ऐसी भी कौन सी नौकरी है जिसमें शादी के लिए भी छुट्टी नहीं मिलती। रसम, रिवाज सगुन-साइत से होता है कि ऐसे ही मनमाना जब चाहा जैसे चाहा कर लिया। कोई मुसलमान, क्रिस्तान की शादी है क्या...? भाई तुम लोगों का तो कोई हिसाबे समझ में नहीं आ रहा है।'' सावित्री चाची विफर पड़ीं। मूड आफ हो गया उनका।

अब क्या करें सावित्री चाची और क्या करे रमरतिया। यहाँ तो करने को कुछ था ही नहीं। बस खाओ, पियो और पड़ कर सो रहो। इतना ही काम रह गया था उनके जिम्मे। अगले दिन से एक-एक पल पहाड़ हो गया उनके लिए। समय काटे नहीं कट रहा था। वो तो अच्छा हुआ कि रमरतिया को साथ लेते आयी थीं तो बोलने, बतियाने का एक सहारा हो गया था। वरना यहाँ तो बात करने की भी फुरसत नहीं थी किसी के पास। हर कोई अपने में व्यस्त और मस्त था। 'ठीक कह रहे थे मास्टर साहेब....सोलह तारीख को ही आना चाहिए था मुझे। जब कोई रसम, रिवाज ही नहीं होना है, तो बेकार इतनी जल्दी आ गयी।' मन ही मन पछताने लगी थीं सावित्री चाची। यहाँ हाथ पर हाथ धरे खाली बैठी रमरतिया भी ऊबने लगी थी। न कोई काम न धाम बस तीनों टाइम खाओ और आलसी की तरह कमरे में पड़े रहो। हाँ मास्टर साहब को जरूर आराम हो गया था। रोज सुबह तीन-चार अखबार तथा पत्रिकायें मिल जाती थीं उनको। सारे दिन वे उसी में डूबे रहते थे और सुबह-शाम पड़ोस में स्थित पार्क में टहल आते थे।

जैसे-तैसे चार दिन का समय कटा। पन्द्रह तारीख की शाम से ले कर सोलह तारीख की दुपहर तक के बीच ए.डी.एम. साहब की सास, ससुर, सालों, सरहजों, सालियों, साढुओं और उनके दर्जन भर बच्चों से पूरा घर भर गया। साहब की पत्नी और उनकी दोनों बेटियाँ उन सब के साथ ऐसे घुल-मिल गयीं जैसे पानी में दूध। फिर तो पूरे घर में ए.डी.एम. साहब के ससुराल वालों का ही साम्राज्य हो गया। सावित्री चाची और रमरतिया कुजात की तरह एक कोने में पड़ी रहीं। वो तो कहो सोलह तारीख को दोपहर में सावित्री चाची की बेटी रेखा आ गयीं तो कुछ राहत महसूस हुयी उन्हें।

सोलह को ही दोपहर बाद वह कमरे में अपनी बेटी रेखा तथा रमरतिया के साथ बैठी बातें कर रही थीं कि अचानक ''भैया आ गया....भैया आ गया'' का शोर सुनायी पड़ा। रमरतिया को बाहर भेज कर पता कराया तो मालूम हुआ कि बम्बई से मुन्नू बाबू यानी नवीन प्रकाश आ गए हैं। पोते को देखने के लिए बेचैन सावित्री चाची अपने आप को रोक नहीं सकीं। वह जैसे थीं वैसे ही दौड़ पड़ीं। अपनी सगी, ममेरी और मौसेरी बहनों से घिरा मुन्नू बरामदे में खड़ा था।

''अरे मुन्नू तू इतना बड़ा हो गया रे। पूरे छः साल के बाद देख रही हूँ तुझे.....। सच, तुझे देख कर आँखें जुड़ा गयीं मेरी। मेरा लाल....मेरा हीरा....मेरा धन...इधर आ तो जरा।'' यह कहते हुए पोते को धधा कर कलेजे से लगा लिया सावित्री चाची ने। पोता भी दादी के सीने से यूँ चिपक गया जैसे दूध पीता बच्चा हो। दादी और पोते का यह

मिलन देख कर वहाँ खड़ीं उसकी बहनें मुँह पर हाथ रख फी...फी फी...फी करके हँस पड़ीं।

अब शादी को एक ही दिन बचा था। एक दिन में ही सारी रस्में पूरी करनी थीं। सावित्री चाची को आतुरता थी कि जल्द से जल्द एक-एक कर के सभी रस्में निपटाई जायें लेकिन वहाँ कुछ सुनगुन ही नहीं हो रहा था। कोई साँस ही नहीं ले रहा था। आखिर कब तक चुप रहतीं वह। शाम होते ही फट पड़ीं-''अरी बहू! यह कैसी शादी हो रही है....? मुझको तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है। न हल्दी न मटकोड़ न संझा-पराती न पीतर न्यौताई....कोई रसम ही नहीं हो रही है। एकदम्मे से फिरंगी हो गई हो क्या तुम लोग। शादी-ब्याह का शुभ काम ऐसे होता है क्या कहीं....? मुन्नू कहाँ है....बुलाओ कम से कम हल्दी तो लग जाए....चुमावन तो हो जाए। पाँच बार हल्दी लगनी है अब से कल तक के बीच।''

''अम्मां जी...मुन्नू तो अपनी बहनों के साथ बाजार गया है.....शॉपिंग करने।'' मुन्नू की मम्मी ने बताया।

''बाजार गया है....? ई का हो रहा है भाई.....? कल उसकी शादी है और आज वह बाजार घूम रहा है....? लगन लगने के बाद दुल्हे को बाजार-हाट जाना चाहिए....? तुमको मालूम नहीं क्या....? हद्द हो गयी। तुम लोग तो बिल्कुल अंग्रेज हो गई हो जैसे....?''

बहू के ऊपर जी बरस चुकने के बाद सावित्री चाची ने आँगन के एक कोने में चटाई-बिछाई और रमरतिया के साथ बैठ कर देवी, देवताओं और पीतरों को न्यौतने का गीत शुरू कर दीं-''गइया के गोबरा महादेव अँगना लिपाइ। सुनीं हे शिव। शिव के दोहाइ। सुनीं हे शिव। गज मोतिया हे महादेव चउका पुराइ। सुनीं हे शिव। शिव के दोहाइ....।'' साथ देने के लिए कोई भी नहीं आया। रमरतिया के संग सगुन के रूप में पाँच गीत गा कर वह उठ गयीं।

सवित्री चाची बात बे बात टोका-टाकी करती रहीं लेकिन किसी को भी उनकी परवाह नहीं थी। सत्रह तारीख की दोपहर में बस नाम करने के लिए जल्दी-जल्दी दो-चार रस्में हुयीं और शाम होते ही सारी औरतें और लड़कियाँ सजने, सँवरने में जुट गयीं। बारात लखनऊ जानी थी। थोड़ी देर में एक दर्जन से अधिक छोटी, बड़ी गाड़ियाँ दरवाजे पर आ कर खड़ी हो गयीं। घर के अंदर सावित्री चाची और रमरतिया तथा बाहर दो चौकीदारों को छोड़ कर बाकी सारे के सारे मर्द, औरतें, लड़के, लड़कियाँ बारात में चले गए। सावित्री चाची द्वारा यहाँ-वहाँ से जुटा कर बड़े शौक से गाँव से ले आए सामानों की तरफ किसी ने देखा तक नहीं। कमरे के एक कोने में रखे सूप, दउरी, डाल, सिन्धोरा उनको मुँह चिढ़ाते रहे। सारी रात बिस्तर में पड़ी करवटें बदलतीं तथा बदले जमाने को कोसती रहीं वह। बगैर किसी रस्म-रिवाज और विधि-विधान के जैसे यह शादी हो रही थी उसे पचा नहीं पा रही थीं सावित्री चाची। शादी न हो नाटक-तमाशा हो जैसे....गुड्डे, गुड़ियों का खेल हो जैसे।

अगले दिन सवेरे नहा-धो कर वह पूजा पर बैठने ही जा रही थीं कि बाहर शोर हुआ। पता चला कि बारात लौट आयी है। अपने आप को रोक नहीं पायीं वह। उन्होंने रमरतिया से दोनों दउरी ले चलने को कहा और उसके साथ बाहर गेट की तरफ दौड़ पड़ीं। वह अपनी बहू को बताने जा रही थीं कि नई दुल्हिन को घर में ऐसे ही नहीं लाया जाता है। दरवाजे पर परिछावन कर के दउरी में डेग डलवाते हुए दुल्हा, दुल्हन दोनों को एक साथ कोहबर तक ले आया जाता है। लेकिन यह क्या जब तक वह बाहर बरामदे तक पहुँचीं तब तक नवीन की बहनें दुल्हन को कार से उतार कर घर के अंदर ले जा चुकी थीं। नई उमर की

लड़कियाँ और लड़के दुल्हन को चारों तरफ से घेरे हुए थे। हँसी-मजाक, चुहलबाजी करते लड़कों और लड़कियों के झुण्ड के पीछे खड़ीं सावित्री चाची अपनी बहू यानी नवीन की माँ को ढूँढ़ती रहीं लेकिन उनका कही अता-पता नहीं था। पूछने पर मालूम हुआ कि उनकी वाली कार अभी वापस नहीं आयी थी।

ढेर सारे लड़के-लड़कियों के शोर-गुल में पूरी तरह अप्रासंगिक बनी सावित्री चाची एक किनारे खड़ीं भकुए की तरह तमाशा देखती रहीं। उनकी सुनने वाला कोई नहीं था। हार कर सभी को कोसतीं, बड़बड़ातीं वह गाँव से लायी दोनों दउरी लिए रमरतिया के साथ अपने कमरे में लौट आयीं।

गुस्से में भरी सावित्री चाची ने सोच लिया था कि अब वह कुछ नहीं बोलेंगी। किसी से बात तक नहीं करेंगी। जो मन करे, जैसे मन करे वैसे करें सब। लेकिन उनका गुस्सा कुछ ही समय में कपूर की तरह उड़ गया। उनका मन पोते की बहू को देखने के लिए ललचाने लगा। समस्या यह थी कि इसके लिए कहें तो किससे कहें। बिन बुलाए जाने में उन्हें अपमान लग रहा था। वैसे ही वह बहुत अपमानित महसूस कर रही थीं कि पूरी शादी निपट गयी और किसी ने उनसे कुछ पूछा तक नहीं। उनकी इच्छा थी कि नवीन की माँ आयें और उन्हें बाइज्जत ले जा कर बहू की मुँह दिखायी की रस्म करायें। लेकिन सारे घर में सन्नाटा सा पसरा हुआ था। औरतें, मर्द, लड़कियाँ, बच्चे सारे लोग यहाँ-वहाँ पसरे रात के जागरण की खुमारी उतार रहे थे। मन मारे वह चुपचाप अपने कमरे में पड़ी रहीं।

आखिर दोपहर बाद उन्हें दुल्हन देखने का बुलावा आया। मुन्नू की माँ आयीं और बोलीं-''चलिए अम्मा जी अपने पोते की बहू देख लीजिए।'' वह तो जैसे इसी की प्रतीक्षा में बैठी ही थीं। झट मुँह दिखायी के लिए लाया सारा सामान साड़ी, ब्लाउज, चूड़ी, टिकुली, आलता, महावर, कंघी, चोटी और सोने के झुमके का सेट आदि ले कर वह दुल्हन देखने जा पहुँचीं। दुल्हन ने लपक कर पाँव छुए तो वह निहाल हो उठीं। मखमल के डिब्बे से झुमके तथा पालीथीन के पैकेट से साड़ी, ब्लाउज निकाल कर अन्य सामानों के साथ दुलहन की गोद में रखते हुए वह बहुत चिरौरी करती सी बोलीं-''दुलहिन! हम तो दो दिन बाद वापस गाँव चले जायेंगे। हमारी लायी साड़ी, कपड़ा, झुमका, चूड़ी एक बार हमारे सामने पहन लेती तुम तो देख कर हमारा जी जुड़ा जाता। मेरा इतने शौक से खरीदना सवारथ हो जाता।'' सिर झुकाए खामोश बैठी दुल्हन ने तो कुछ नहीं कहा लेकिन उसको घेर कर बैठीं लड़कियाँ ही..ही..ही..ही कर के जोर से हँस पड़ीं। मानो उन्होंने कोई बहुत बड़ी बेवकूफी भरी बात कह दी हो सावित्री चाची ने।

''अरी दादी! ये क्या उठा लायीं। इतना डार्क रेड कलर और उस पर इतने बड़े-बड़े प्रिंट....? ऐसी साड़ी भला कौन पहनता है आजकल।'' नवीन की बड़ी बहन दीप्ति बोली।

''और दादी, आप के जमाने के इतने बड़े झुमकों का भी फैशन नहीं रहा अब। आजकल तो लटकन वाले छोटे-छोटे टॉप्स का फैशन है।'' दीप्ति से छोटी तृप्ति ने कहा।

''कोई बात नहीं....झुमके काफी वजनी हैं। इन्हें बदल कर तीन नहीं तो दो टॉप्स तो आराम से आ जायेंगे।'' नवीन की मौसेरी बहन झुमकों को हथेली पर रख कर उसका वजन अंदाजते हुए बोली।

दीप्ति ने दुल्हन की गोद में रखा दादी का दिया सारा सामान उठा कर बड़ी बेमरौव्वत से एक तरफ रख दिया। जल-भुन कर रह गयीं सावित्री चाची। इन छोकरियों को भला क्या पता कि कितने मन से, कितनी साध से घंटों बाजार में भटकने और दर्जनों दुकानें छानने के बाद ये सारी चीजें खरीदा था सावित्री

चाची ने। असहज और अपमानित तो वह जिस दिन से आयी थीं उसी दिन से महसूस कर रही थीं लेकिन अब तो हद हो गयी। कितने अरमानों से आयी थीं पोते की शादी के लिए। कितने मन से एक-एक चीजें जुटा कर ले आयी थीं। परिवार में सबसे बड़ी, बुजुर्ग थीं इसलिए उन्हें उम्मीद थी कि हर काम, हर रस्म उनसे पूछ-पूछ कर उनके कहे अनुसार होगा। लेकिन यहाँ तो जैसे किसी को उनकी जरूरत ही नहीं। झूठ-मूठ, मुँह छूने के लिए भी किसी ने उनसे कुछ नहीं पूछा। बिना रीति-रीवाज, बिना पूजा-पाठ, बिना रसम पूरा किए चट-पट कब शादी निपट गयी कुछ पता ही नहीं चला। 'चलो, यही आना आखिरी आना होगा मेरा। परकाश की इन दोनों बेटियों की शादी में नहीं आऊँगी मैं। लाख बुलाए तो भी नहीं। एक बार में ही मन भर गया। चाहे जो भी हो जाए यहाँ अब दोबारा नहीं आना है अपमानित होने के लिए।' सावित्री चाची ने मन ही मन संकल्प किया और अगले ही दिन गाँव वापसी के लिए मास्टर साहब से जिद करने लगीं।

''क्या कह रही हो....कि कल वापस लौट चलें? भला कल वापस चलना कैसे हो पाएगा? कल तो रिसेप्सन है। रिसेप्सन यानी बहूभोज और अपना रिजर्वेशन तो परसों रात की गाड़ी में है।'' मास्टर साहब ने बताया तो मन मार कर दो दिन और रुकना पड़ा सावित्री चाची को।

अगले दिन रात को बँगले के बाहर विशाल लॉन में तने खूबसूरत पण्डाल में रिसेप्सन का आयोजन था। फूलों से सजे मंच पर दूल्हे-दुल्हन की कुर्सियाँ लगी थीं। आमंत्रितों की अच्छी-खासी भीड़ आ चुकी थी। दुल्हा-दुल्हन भी आ कर कुर्सियों पर बैठ चुके थे। लोगों का आना-जाना, मिलना-जुलना, नाच-गाना, हँसी-मजाक, खाना-पीना चल रहा था। हर तरफ वीडियोग्राफी हो रही थी। केमरों के फ्लैश लगातार चमक रहे थे। वहाँ सभी उपस्थितों की निगाहें दूल्हे-दुल्हन पर लगी थीं। लेकिन दूल्हे यानी नवीन प्रकाश की निगाहें भीड़ में किसी और को ही तलाश रही थीं। वह कुछ देर तक मंच के सामने रखे सोफों और कुर्सियों पर निगाहें दौड़ाता रहा फिर चुपचाप उठा और मंच से उतर कर किसी को कुछ बताए बगैर कहीं चला गया। लोगों ने सोचा शायद टायलेट के लिए गया होगा। पाँच मिनट बीता, दस मिनट बीता, पन्द्रह फिर बीस मिनट बीत गये दूल्हा लौट कर नहीं आया। मंच पर दुल्हन अकेली बैठी थी और दूल्हा नदारद। सभी को चिन्ता होने लगी कि अचानक वह गया तो कहाँ गया। सभी की परेशान निगाहें उसे इधर-उधर तलाश रहीं थीं कि तभी अपने दोनों हाथों से दादी को थामे वह बँगले के अंदर से आता दिखायी दिया। जो जहाँ था वहीं काठ बना देखने लगा। दादी को पकड़े वह मंच पर आया और उन्हें दुल्हन के बगल में यानी अपनी कुर्सी पर बिठा कर स्वयं उसके हत्थे पर बैठ गया। सावित्री चाची ने दुल्हन को देखा तो सहसा अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हुआ उन्हें। दुल्हन उनके द्वारा ले आयी बड़े छापे की लाल बनारसी साड़ी, हाथों में उन्हीं की लायी लाल, हरी कामदार चूड़ियाँ तथा कानों में उनके लाए बड़े-बड़े झुमके पहने बैठी थी। अपनी दोनों आँखें मल कर उन्होंने एक बार फिर देखा। आँखें फैला कर तिबारा देखा। इतने में दुल्हन उठी और अपने हाथों में आँचल का छोर ले कर पूरे आदर के साथ झुक कर दादी के पाँव छूने लगी। फिर उसके बाद तो अपने आप को सँभाल नहीं सकीं सावित्री चाची। उनकी दोनों आँखें सावन के उमड़े बादलों की तरह झरने लगीं।

सम्पर्क : *लखनऊ (उ.प्र.)*
मो. 9415215139, 6394976289

महावीर रवांल्टा

साकार होंगे सपने

''मानू... माऽनू!''

''हुँ .ऽ.ऽ. कई बार किवाड़ पीटते हुए आरती के पुकारने पर इस बार मानेन्द्र का नींद में डुबा हुआ स्वर निकला था।

''मानू बेटा! ...मानू बेटा!'' उसका स्वर सुनकर आरती ने उसे फिर से पुकारा था।

''क्या है माँ?'' मानेन्द्र भीतर से ही पूछ बैठा था।

''उठ जा बेटा'' आरती ने बड़े प्यार से उससे कहा था और अब उसे उम्मीद भी थी कि उसकी नींद टूट ही चुकी होगी।

''अरी माँ, कुछ देर और सोने दे न!'' मानेन्द्र का अपनी आशा के विपरीत उतर सुन पलभर के लिए आरती की इच्छा पर जैसे पानी फिर गया था।

''नहीं बेटा, अब उठ भी जा। कल बेशक देर तक सो लेना'' आरती ने प्यार से पुचकारते हुए कहा तो उसकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिला।

कुछ देर में 'गुंगटी' का दरवाजा खुला और अपनी आँखें मलता हुआ मानेन्द्र उसके सामने खड़ा था।

''क्या माँ, आज भी नहीं सोने दिया!'' उसने माँ से शिकायत के लहजे में कहा।

''चल उठ गया तो अब चाय पी ले! मधु! मानू के लिए चाय ले आ'' उसने बरांडे से भीतर की ओर आवाज दी।

''जी माते!''

कुछ ही देर में मधु अपने दोनों हाथों में चाय के गिलास पकड़े उनके सामने खड़ी थी।

''ले भाई जी, और माते तू भी पी ले।'' उसने गिलास उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा।

''मैं तो पी चुकी, तू पी ले।''

''मैंने अपने लिए भीतर रखी है, तू पी ले, तेरे लिए तो घड़ी-घड़ी चाय ही चाहिए। खाना तो खाती नहीं बस चाय ही चाय।'' मधु ने माँ को उलाहना देते हुए कहा था। माँ ने उसके हाथों से चाय के गिलास लेकर एक मानेन्द्र की ओर बढ़ा दिया और दूसरे से स्वयं पीने लगी।

''क्या करूँ बेटा, हर रोज तुझे यूँ ही... मन तो करता है कि तू भी दूसरे लोगों की तरह कहाँ जो...'' आरती ने अपने साथ चाय के गिलास लेकर बैठे बच्चों के सामने जैसे अपनी बेबसी को बयान किया था।

''कोई बात नहीं माँ! जब तू दिन-रात हमारे लिए इतना कुछ कर रही है तब हमें भी तो तेरा साथ देना चाहिए न! तूने छोटी उम्र से ही हमारे लिए खूब खरी खायी।'' चाय के घूँट गले से उतारते हुए मानेन्द्र ने माँ की ओर देखते हुए कहा था और मधु भी माँ से एकदम सट गई थी।

''हाँ रे, सच कहा तूने। हमारा भाग ही खोटा निकला जो हल में जुते बैलों की तरह हम अपने आपको मुसीबतों से अलग नहीं कर पा रहे हैं। दूसरे बच्चों की तरह तुम्हारे पिता जीवित होते...'' इस बार अपने मन की पीड़ा व्यक्त करते हुए आरती की आँखें भी नम पड़ने लगी थी।

''अब तू रोने लगी? बस भी कर सुबेरे-सुबेरे हमें भी रुलाएगी!'' किसी बड़ी-बूढ़ी महिला की तरह मधु माँ को डाँटती हुई उसके गले से लग गई थी।

''नहीं री, मैं क्यों रोने लगी। जिसके साथ तुम्हारे जैसे बेटी। हों वह भला क्यों रोएगी। बस तुम दोनों राजी-खुशी रहो, हम बड़ी से बड़ी मुसीबत से भी पार पा लेंगे।''

''यह हुई न बात, मेरी बहादुर माते!'' मधु मुस्कुराती हुई माँ से बोली। उसकी बात सुनकर माँ और बेटे के चेहरे पर एक मुस्कान सी दौड़ पड़ी थी।

'मानू' मानेन्द्र का घर का नाम है। वह आरती का बड़ा बेटा है, आठवीं में पढ़ता था तभी उसके पिता का देहान्त हो गया था। तब उसकी उम्र चौदह वर्ष की थी, अब वह ग्यारहवीं में पढ़ रहा है और उम्र भी सत्रह पार कर चुकी है। मधु उसकी छोटी बहिन है जो नौवीं में पढ़ती है। समीप के ही राजकीय इंटर कॉलेज में दोनों पढ़ने जाते हैं। दोनों भाई-बहिन पढ़ने में अच्छे हैं। अपनी माँ और घर की चिंता भी उन्हें बराबर बनी रहती है।

अब माँ ही उनके लिए सबकुछ है इसलिए उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपने जीवन की डगर में आगे बढ़ने का सपना दोनों की आँखों में बरकरार है। मानेन्द्र व मधु का पिता हो या फिर उसका पति स्मरण करते हुए उसके मुँह का स्वाद कसैला होने लगता है और एक दु:स्वप्न की तरह अतीत उसके सामने आकर खड़ा हो जाता है।

पहाड़ के एक छोटे से गाँव में सात बहिनों के परिवार में उसका चौथा स्थान था। घर की स्थिति अच्छी नहीं थी। थोड़ी सी खेती और मवेशी यही उनकी आजीविका का साधन था। चरकाखड़े की बेल की तरह बढ़ती बेटियों की तरह माता-पिता की चिताएँ भी बढ़ती जा रही थीं। अठारह की उम्र पार करते ही उनके लिए लड़के देखकर विवाह का सिलसिला शुरू हो गया था और फिर एक दिन उसे भी उसकी ससुराल के लिए विदा कर दिया गया था।

पहली बार उसे लड़का देखने आया था तब उसका नैन नक्श, सांवला सा रंग व अच्छी कढ़ काठी देखकर वह उसे भा गया था।

''रंग कुछ साँवला है। कहाँ दीदी एकदम दूध सी गोरी और कहाँ वह एकदम काला कलूटा तवे सा...'' छोटी बहिन ने कहा था तो माँ ने उसे बीच में ही टोक दिया था-''अच्छा चाल-चलन है, घर-परिवार सम्पन्न है फिर रंग का क्या करना, थोड़ा साँवला ही तो है। वैसे अपने किशन कन्हैया भी तो

साँवले ही थे लेकिन उनकी लीला देखो तो...।''

''तब तो दीदी को सारी उम्र उनकी रासलीला ही देखनी पड़ेगी।'' छोटी बहिन राधा ने चिकोटी काटी थी तब घर के सारे लोग हँस पड़े थे।

आरती की सहमति पर घर में उसके विवाह की तैयारी होने लगी।

ससुराल में आरती को पहले सब अच्छा लगा था। पाँच बेटे-बेटियों के परिवार में उसका पति धीरु याधी धीरेन्द्र सबसे बड़ा था। पिता ने गाड़ी चलाने की उसकी रुचि देखकर उसके लिए बैंक से कर्जा लेकर एक गाड़ी खरीद दी थी कि वह कुछ कमाकर घर-परिवार को सँभाल सके।

विवाह के बाद कुछ समय तक सबकुछ ठीकठाक चला। छोटे भाई-बहिनों के घर बस गए। घर में बेशक बहुत समृद्धि नहीं लेकिन खुशहाली जरूर थी। गाड़ी चलाते हुए धीरेन्द्र बुरे लोगों की संगत में कुछ ऐसे फँसा कि शराब के नशे में धुत देर रात घर लौटता और आरती से बेवजह लड़ना-झगड़ना शुरू कर देता। वह जो कुछ कमाता वह नशे की भेंट चढ़ जाता था।

उसके सुधरने की आस में आरती ने पहले तो मुँह नहीं खोला लेकिन सिर से ऊपर पानी निकलते देख उसने सास-ससुर को सारी स्थिति बता दी थी। पिता ने उसे समझाने की कोशिश की तो वह उनसे उल्टा ही प्रतिवाद करने लगा था- ''तुम्हारा क्या बिगाड़ता हूँ। अपनी कमाई की ही तो पीता हूँ।'' सुनकर पिता को बेहद अफसोस हुआ था। उन्हें अपने बेटे से ऐसी उम्मीद नहीं थी।

''यही बात है तो इस घर से सदा के लिए अपना नाता ही क्यों नहीं तोड़ देता, ऐसी औलाद का क्या करना जो अपने बूढ़े माँ-बाप का ही लिहाज न करें।'' बुजुर्ग पिता ने गुस्से में आकर जैसे अपना फरमान ही सुना दिया था।

''चला जाऊँगा।'' उसने गुस्से में पैर पटकते हुए कहा और फिर गाड़ी की चाबी लेकर घर से बाहर की ओर निकल पड़ा था।

रात को वह फिर पीकर लौटा। आज भी आरती ने उसे समझाने की कोशिश की तो वह उससे झगड़ पड़ा था। गाली-गलौज फिर मारपीट करने लगा। आखिर वहीं हुआ जो धीरेन्द्र चाहता था। उसकी हठ के सामने सारे घर को हथियार डालने पड़े थे। गाँव से पंचों को बुलाकर तीनों भाईयों के बीच बँटवारा करना पड़ा। एक घर अब तीन चूल्हों में बँट गया था। घर में आए दिन कलह होने लगी। वह रोज रात को शराब पीकर घर लौटता, पत्नी से बेवजह गाली-गलौज फिर नौबत लड़ाई-झगड़ा, मारपीट तक आ जाती थी। देवर-देवरानियाँ बीच-बचाव के लिए आगे आते तो उन्हें भी उसकी खरी-खोटी, गाली-गलौज सुनने को मिलती इसलिए धीरे-धीरे उन्होंने भी आना छोड़ दिया था। कभी-कभार तो वह बहुत ही हिंसक हो जाता था। उनका घर साक्षात नर्क बन चुका था। इसी माहौल में पहले मानेन्द्र का जन्म हुआ फिर मधु का। पति की गाली-गलौज और यातना सहते हुए भी आरती ने बच्चों की देखरेख व पालन-पोषण में कोई कमी नहीं रखी। वह उन्हें पढ़ा लिखाकर अपने पैरों पर खड़ा करने का सपना पाले हुए थी लेकिन पति नशे की गिरफ्त में अपना सबकुछ लुटाए बैठा था। शराब की लत ने उसे कर्जदार बना लिया और फिर कर्जा चुकाने के लिए उसे अपनी गाड़ी भी बेचनी पड़ी। अब वह बेकार बैठा था इसलिए शहर की ओर जाना भी छूटा और कुसंगति से छुटकारा भी मिल गया था।

''गाड़ी गई तो क्या हुआ अपनी खेती व मवेशी के सहारे हम अच्छी गुजर-बसर कर सकते हैं। हम जी तोड़ मेहनत करेंगे तो बच्चों का भी भविष्य बना लेंगे।'' आरती ने हताश बैठे धीरेन्द्र को ढाढस देते हुए समझाने की कोशिश की थी।

''तुमने सही कहा। मैं ही गलत रास्ते पर चलता रहा। आज उसी की सजा पा रहा हूँ। जिनके साथ उठा-बैठा, रुपये लुटाए उनमें से कोई भी मदद के लिए आगे नहीं बढ़ा आखिर तू ही...'' कहते हुए उसकी आँखें छलछला पड़ी थीं। उसे अपने किए पर पश्चाताप हो रहा था। उसने मन ही मन अपने किए के लिए ईश्वर से क्षमा माँगी और जीवन में फिर कभी शराब न छूने का प्रण कर लिया।

अब वह अपने घर-खेती के काम में रमने लगा था। उसके भीतर-बाहर हुए बदलाव को लेकर गाँव के लोग अचंभित थे और कुछ को कहते हुए सुना गया था कि इंसान चाहे तो क्या कुछ नहीं कर सकता। उसकी चहुँ ओर प्रशंसा हो रही थी और इस बदलाव का श्रेय आरती को ही दिया जा रहा था। कुछ ही दिन गुजरे। एक दिन धीरेन्द्र किसी काम से शहर गया। वहाँ एक मोटर साइकिल सवार ने उसे ऐसी टक्कर मारी कि वहीं पर उसका प्राणान्त हो गया। आरती के मोबाइल पर इस हृदय विदारक घटना के बारे में सबसे पहले उसी ने सुना था। सुनते ही मोबाइल उसके हाथ से छिटककर एक ओर गिर पड़ा था और दूसरी ओर वह बेहोश होकर गिर पड़ी था।

उसकी आँखें खुलीं तो उसके इर्द-गिर्द गाँव के लोगों का जमावड़ा था। शहर जाकर धीरेन्द्र के शरीर को लाने की तैयारी की जा रही थी। मानेन्द्र व मधु को साथ ले जाकर पोस्ट मार्टम के बाद निकट ही यमुना नदी के तट पर अंतिम संस्कार करने के सुझाव पर सभी की सहमति बन चुकी थी। घर-परिवार के सभी लोग और सगे। संबंधी शहर पहुँचे और पोस्टमार्अम के बाद अंतिम संस्कार करके ही उनकी घर वापसी हुई। पिता की क्रिया में मानेन्द्र को बैठना पड़ा। तेरहवीं तक घर में सांत्वना देने लोगों का आना-जाना जारी रहा फिर धीरे-धीरे थमने सा लगा था।

अब घर में आरती थी और उसके दो बच्चे मानेन्द्र व मधु। धीरेन्द्र की फ्रेमजड़ी फोटो घर की दीवार के बीचों बीच लटकी थी और उसमें फूल मालायें चढ़ी थीं। माथे पर तिलक लगा था। आरती ही बच्चों के लिए सब कुछ थी और बच्चे ही उसकी दुनिया थे। अपनी अनिच्छा के बावजूद उसे मानेन्द्र को कहीं न कहीं काम पर लगाना पड़ता था। क्या करती उसकी मजबूरी थी। खेती के दूसरे काम तो वह कर लेती लेकिन खेत में हल चलाना उसके बस की बात नहीं थी इसलिए वह सबेरे ही मानेन्द्र को खेत पर ले जाती। वह खेत में हल चला लेता फिर कॉलेज का समय होते ही घर आ जाता और फिर तैयार होकर मधु के साथ कॉलेज चला जाता। खेत से घर लौटने तक मधु उनके लिए खाना पकाकर रखती। कॉलेज से लौटने पर भी वे भाई-बहिन माँ की मदद के लिए खेतों में पहुँच जाते थे।

''क्या करूँ बेटा, दूसरे बच्चों के घर पर उनके पिता पुरुषों के सारे काम कर लेते हैं इसलिए उन्हें तुम्हारी तरह काम नहीं करने पड़ते लेकिन तुम्हें... कभी-कभी तो मुझे लगता है कि मैंने अपने ही हाथों तुमसे तुम्हारा बचपन छीन लिया है। तुम्हारे खेलने-कूदने के दिन थे और मैंने तुम्हें मवेशी की तरह काम पर जोत दिया।'' आरती का बेहद मायूसी भरा स्वर था।

''कैसी बात करती हो माँ, हम अपनी माँ के साथ काम नहीं करेंगे तो हमारा तुम्हारी संतान होने का

क्या अर्थ? संतान इसीलिए तो होती है कि माता-पिता का सहारा बने, यही काम हम कर रहे हैं।'' मानेन्द्र माँ की ओर देखते हुए बोला था।

''संतान माता-पिता के बुढ़ापे का सहारा होती है लेकिन भरी जवानी में तो उन्हें पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाने का जिम्मा माता-पिता का होता है लेकिन मैं अभागी...'' कहते हुए आरती की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी थी।

''फिर वहीं बात! अरी माँ इसमें तेरा क्या दोष? पिता जी दुनिया छोड़कर चले गए तो तुमने हमें पिता की कमी भी महसूस नहीं होने दी। हमारा लालन-पालन, पढ़ाई-लिखाई करवा रही हो फिर हम तेरे साथ खड़े हो जाते हैं तो क्या... तू बेवजह अने आपको दु:खी कर हमें भी दु:खी कर रही है।'' मानेन्द्र ने आरती को समझाने की कोशिश की थी।

''हाँ मेरी बहादुर माते, क्यों दु:खी हो रही है? कहीं इसलिए तो नहीं कि हम अभी से तुम्हारे बुढ़ापे का सहारा बन रहे हैं और तुम्हें अपने बूढ़ा होने का डर सता रहा है?'' मधु ने माँ के दु:ख के बोझ को हल्का करने की चेष्टा की तो सचमुच माँ की हँसी फूट पड़ी थी।

''मधु तू नहीं सुधरेगी!'' और फिर माँ ने उसे गले से लगा लिया था।

''देख मेरी बहादुर माते, तू बहुत साहसी है तो हम भी तुझसे कहीं कम नहीं। हम तेरे साथ 'छैल' की तरह रहेंगे। रही बचपन की बात तो वह तो अब जा चुका। अब तो हम भी बड़े हो गए हैं, क्यों भाई जी?'' वह मानेन्द्र की ओर देखती हुई बोली।

''हाँ माँ, मधु एकदम सही कह रही है। हमारा, बचपन जा चुका हमें तुम्हें देखकर जीने की समझ आ चुकी है इसलिए व्यर्थ परेशान होने की जरूरत नहीं है। हम कॉलेज भी पढ़ लेंगे और तुम्हारे साथ घर-खेती के काम भी कर लेंगे।''

''भाई जी ने सही कहा बहादुर माते! हम सब सँभाल लेंगे। मैं तो इसके साथ खेत में हल चलाने के लिए भी तैयार हूँ लेकिन यह मना करता है। आज पुरुष तो क्या नारी भी किसी से कमतर नहीं। वह हर क्षेत्र में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। वैसे भाई जी भी हमारे साथ चट्टान की तरह खड़ा है जो हमें पुरुष की कमी महसूस नहीं होने देता।'' कहते हुए उसकी आँखें भी नम थीं।

''हाँ मधु! घर का इकलौता पुरुष होने के नाते घर की बहुत सारी जिम्मेदारियाँ मेरे कन्धों पर हैं। उनका निर्वाहन तो मुझे करना ही है, यहाँ तक कि तेरी शादी भी...'' मानेन्द्र ने मधु को छेड़ते हुए चुटकी ली थी।

''क्या भाई जी! देखा माँ... जब... मधु लजाती हुई मानेन्द्र को पीछे की ओर ढेलती हुई बोली थी।''

''हाँ, मेरे बच्चों! अब तुम्ही मेरा सबकुछ हो, तुम्हारे सहारे ही मैं अपना जीवन हँसी-खुशी काट लूँगी। तुम नहीं होते तो तुम्हारे पिता के जाने के बाद आज तक तो मैं मिट ही जाती।''

''ऐसा नहीं कहते बहादुर माते! हमारे लिए भी तुम्हीं सबकुछ हो, हम सबकुछ कर लेंगे बस तुम्हारा हाथ हमारे सिर पर होना चाहिए।''

''मधु ठीक कहती है। अपनी मेहनत के बल पर हम जीवन में वह सब हासिल कर लेंगे जिसकी

तूने आस लगा रखी है। हम तेरे सपनों को साकार करेंगे।''

''हाँ मेरी बहादुर माते!'' मधु उसी चुहलबाजी के अंदाज में बोली थी। माँ को हँसाने, गुदगुदाने का उसका यही अंदाज है कि वह उसे बहादुर मातें कहकर पुकारती है और तब वे माँ-बेटा अपनी हँसी को रोक नहीं पाते।

''अब तुम्हीं मेरी दुनिया हो, शराब की कुलत के कारण तुम्हारे पिता हमारे लिए बहुत सारे दु:ख और कर्जा छोड़ गए थे। मैंने दिन-रात एक कर अपनी मेहनत-मजदूरी से उसे चुकाया और तुम्हारी देख रेख भी करती रही। मैं ही जानती हूँ कि कैसे लोग कर्ज के बदले मेरी इज्जत पर गिद्ध नजर डाले हुए थे।''

''तभी तो कहती हूँ कि तुम हमारी बहादुर माते हो!'' मधु ने फिर से चुटकी ली थी।

''बेशक मैं तुम्हें, दूसरे लोगों की तरह सुख सुविधा व आराम का जीवन न दे सकी, कहां से देती? मेरी राह में काँटे ही काँटे जो बिछे थे लेकिन मैंने तुम्हें संस्कार देने की कोशिश जरूर की और मेरा भी भाग कि तुमने मुझे कभी भी टूटने नहीं दिया। मजबूती से मेरे साथ खड़े हो।'' इस बार आरती का स्वर बेहद भीगा हुआ था। आँखों से पानी झर-झर बहने लगा था।

''अब आँसू पोंछ बहादुर माते और भाई जी के साथ खेत के लिए प्रस्थान करने की तैयारी कर। हल, बैल, सींत, नाड़ा और बीज का थैला तुम्हारी राह देख रहे हैं। मैं तुम्हारे लौटने तक खाना पकाकर रखूँगी फिर आज हमारा कॉलेज भी है।'' मधु ने अपने अंदाज में माँ को जैसे स्मरण कराया और स्वयं खाली गिलास समेटकर भीतर की ओर बढ़ने लगी।

कुछ देर बाद मानेन्द्र हल और बैल लिए खेतों की ओर बढ़ने लगा। उसके पीछे पीठ पर लदे एक गिल्टे में फरवा, बीज व ढिक्याना लिए आरती जा रही थी। आसमान के एक कोने में पहाड़ी के पीछे छुपा सूरज बाहर आने के लिए उतावला सा लग रहा था और उसकी अनदेखी करते हुए लोग अपने-अपने खेतों की ओर बढ़ते जा रहे थे।

सम्पर्क : *उत्तरकाशी (उत्तराखण्ड)*
मो. 8894215441, 9458350974

हेमराज कुर्मी

सहारा

मीना ने सब्जी का छौंक लगाया... और रसोई की खिड़की खोल दी। सब्जी की मधुर सुगंध पाकर पड़ोसी निहाल हो गए। कोई तो अनुमान भी लगाने लगा कि आज मीना भाभी रसोई में क्या पका रही हैं। यह तो खास बात थी। मीना भाभी के खाने की तो हर कोई तारीफ करता है यहाँ तक कि उनके प्रति प्रनव भी कई मौकों पर उनकी पत्नी की तारीफ करने से नहीं चूकते।

प्रनव सोफे पर बैठे-बैठे अखबार पढ़ रहे थे, कि तभी दरवाजे की घंटी बजी। प्रनव ने आवाज लगाई अरे... मीना जरा देखो तो कौन है दरवाजे पर?

अरे पटेल साहब तुम देख नहीं रहे हो मैं रसोई में व्यस्त हूँ। जरा आप ही कष्ट करें। अगर आप दरवाजा खोल देंगे तो शायद दरवाजा भी धन्य हो जाए। मीना ने कटाक्ष करते हुए कहा।

प्रनव ने दरवाजा खोला तो सामने उनके पड़ोसी सुंदरलाल जी खड़े थे। अरे आप... आज सुबह-सुबह मेरे घर का रास्ता कैसे भूल गए?

अरे... ऐसी कोई बात नहीं। बस जीवन की आपाधापी से समय ही नहीं मिलता।

अरे आप बाहर क्यों खड़े हैं अंदर आइये फिर दोनों जाकर गेस्ट रूम में बैठ गये। प्रनव ने मीना को आवाज लगाई अरे सुंदर भाई साहब आये हैं चाय नाश्ता तो ले आओ। तब तक वे दोनों एक-दूसरे का हालचाल पूछने लगे।

भाई साहब ... बड़े दिनों बाद आना हुआ। मीना ने नाश्ते की प्लेट टेबल पर रखते हुए कहा।

जी भाभी जी अभी काम में व्यस्त था। इसी वजह से आना नहीं हो पाया। भाभी हम भले ही आपके घर ना आ पायें, पर आप जरूर सबके घर तक पहुँच जाती हैं।

मीना एकदम सकपका कर बोली, भाई साहब वो कैसे?

अरे बाबा आपकी रसोई की खुशबू तो पूरे आस-पड़ोस तक पहुँचती है रोज। आज शायद आपने आलू छोले की सब्जी बनाई है?

अरे वाह ... भाई साहब। पर आपको कैसे मालूम?

भाभी जी उसकी सुगंध तो पड़ोसी पा चुके हैं।

प्रनव कहने लगा सुंदर लाल सच कहूँ तो मेरी बीवी के हाथों में तो जादू है। मैं तो कहता हूँ तुम भी जल्दी से एक भाभी ले आओ। तो हमें भी कभी-कभी आपके घर चाय नाश्ते का मौका मिले। प्रनव ने चुहल करते हुए कहा।

मीना प्रनव को टोकते हुए, अब ज्यादा मक्खन मत लगाओ। वह माहौल को हल्का करने की कोशिश कर रही थी। दरअसल दो साल पहले सुंदर लाल की पत्नी गीता का देहांत हो चुका था। मीना को ऐसा लगा कि शायद प्रनव ने भाई साहब का घाव कुरेद दिया है इसलिए वह कहने लगी आप तो जानते ही हैं इनको तो मजाक करने की आदत है।

कोई बात नहीं भाभी जी। पर प्रनव कह तो सही रहा है।

मीना कहने लगी भाई साहब यह क्या? आप भी उनकी हाँ में हाँ मिलाने लग गए।

अब सुदंर ने एक निमंत्रण निकालकर उनके हाथ में थमा दिया। अगले हफ्ते शादी कर रहा हूँ आप दोनों को आना है। अब प्रणव को भी झटका लग गया कि मैं तो मजाक कर रहा था। इन्होंने तो निमंत्रण ही थमा दिया। वो बोला अब कहीं आप तो मजाक नहीं कर रहे हो।

अरे भाई प्रनव नहीं ...मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ। मेरे पास घर है, जमीन जायदाद है, पर अभी घर सूना है उसकी देखभाल के लिए कोई नहीं होता है इसलिए मैंने दूसरी शादी करने का फैसला कर लिया है। ताकि मेरे घर में भी रौनक आ जाए। घर से उदासी दूर हो जाए।

चलो भाई सुंदर। बहुत ही अच्छी बात है।

अच्छा तो अब मैं चलता हूँ। अभी कई और लोगों को भी निमंत्रण देने हैं। अगले हफ्ते सुंदर लाल ने चंपा नाम की औरत से विवाह कर लिया। कुछ दिनों बाद सुंदर लाल ने प्रनव और मीना जी को उसके घर खाने पर आमंत्रित किया। वे दोनों पति-पत्नी, सुंदर के घर दोपहर को पहुँच गए। चंपा ने भोजन परोसा। सब लोग भोजन करने लगे। भोजन के समय प्रनव ने कहा भाभी आपके आने से इस घर में रौनक आ गई। चंपा बोली भाई साहब ...अभी तो कुछ नहीं। मैं इस घर को गुलशन जैसा बना दूँगी।

भोजन के बाद प्रनव और मीना अपने घर वापस आ गये। मीना मन ही मन कुछ बड़बड़ा रही थी। अरे मीना तुम क्या मन ही मन बड़बड़ा रही हो? क्या तुम्हें चंपा भाभी का खाना पसंद नहीं आया?

अरे पटेल साहब वो बात नहीं है। मैं तो उसके व्यवहार के बारे में सोच रही थी। सुना नहीं आपने क्या बात कह रही थी? कि वह घर को गुलशन जैसा बना देगी। अगर इतनी ही गुणवान होती तो अपने पहले खसम को यों छोड़ कर ना आती। इस घर को गुलशन बनाएगी ''वो मुई और मसूर की दाल।''

अरे भाई तुम्हें तो हर बात में उल्टा ही दिखता है। अरे वे अपने पड़ोसी हैं अच्छा सोचा करो उनके बारे में। भगवान हमारा भी अच्छा करेगा।

धीरे-धीरे दो साल बीत गए पर अभी भी सुंदरलाल की बगिया में कोई फूल ना खिला। बच्चों की कमी उसके बूढ़े माता-पिता को बहुत खलती थी। वे सोचते कि कम से कम इस नई बहू से घर के आँगन में कोई खिलौना आ जाएगा। परंतु उनकी उम्मीद के बादल ना बरस सके। सुंदर ने चंपा को कहा कि क्यों न हम एक बच्चा गोद ले लें?

चंपा पहले तो तैयार न हुई। पर जब सुंदर ने जिद की तो वो तैयार हो गई। एक दिन वो दोनों एक अनाथ आश्राम पहुँच और वहाँ से एक लड़की जिसका नाम पिंकी था। उसे गोद ले लिया। वे पिंकी को अपने घर ले जाए। जब प्रनव को इस बात का पता चला कि सुंदरलाल ने एक बच्ची को गोद लिया है तो वह भी उसे देखने गए। वे उस भोली सी मासूम बच्ची को देखते ही रह गये। मीना बोली अरे भाई साहब आपकी

बच्ची तो बिल्कुल परी जैसी है। फिर उसे दुलार किया। उससे उसका नाम पूछा। मैं तुम्हारी आंटी हूँ। वह हमारा घर है। तुम्हारा जब मन करे तो वहाँ खेलने आ जाया करो। पिंकी ने सिर हिलाकर हामी भर दी।

चंपा पिंकी को ज्यादा प्यार न करती। पर सुंदरलाल उसे बहुत लाड़ प्यार करता। दादा-दादी भी उसके साथ खेलते। धीरे-धीरे पिंकी सबके साथ हिल-मिल गई। अब उसे इस जगह अच्छा लगने लगा। सुंदर ने उसे नई जिंदगी दी थी। उसकी परवाह करने वाले इतने सारे लोग थे। धीरे-धीरे पिंकी के जीवन में से निराशा हट रही थी और मन में सुनहरे सपने उड़ान भरने लगे थे। उसके सपनों को पंख लग गए थे। जिन से उड़ान भरकर वह दुनिया की सैर करना चाहती थी। जबसे उसके जीवन की डोर सुंदर ने थामी उसकी तो दुनिया ही बदल गई। एक अनाथ को परिवार और समाज से सुखद अनुभव होने लगा। एक अनाथ को एक परिवार का परिवेश मिलने पर वह अब और ज्यादा निखर गई। उदासी उसके चेहरे पर दूर-दूर तक दिखाई न देती थी।

मीना अक्सर उसके साथ खेलती। उसे खूब प्यार करती, बिल्कुल माँ की तरह। जबकि चंपा केवल भोजन तक ही सीमित थी। वह केवल सुंदर के सामने उससे प्यार का दिखावा करती थी। पिंकी को यहाँ छः महीने होने को आए थे। सच में इंसान सच्चे प्रेम और मानवीय संवेदनाओं का भूखा होता है, और बच्चे तो और ज्यादा सुकोमल होते हैं। उन्हें तो केवल प्यार से ही अपना बनाया जा सकता है तभी तो एक दुधमुहा बच्चा उसकी माँ को केवल उसके स्पर्श से पहचान लेता है।

एक दिन सुंदरलाल की अचानक तबीयत खराब हो गई। वह अस्पताल में भर्ती हुआ था पर उसकी जान न बच सकी। उसका देहांत हो गया। उसके माता-पिता पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा जब उनका जवान बेटा क्यों अचानक छोड़कर चला गया। पिंकी के सिर से फिर से पिता का साया उठ गया। वह फिर से अनाथ हो गई थी।

सुंदरलाल के देहांत की तेरह दिन बाद ही चंदा घर को छोड़कर जाने लगी। जब उसके साथ ससुर ने कहा बहू घर छोड़ कर क्यों जा रही हो?

तो चंपा ने कहा मैं जिसके सहारे इस घर में आई थी। जब वो ही न रहा तो अब मैं भला किसके सहारे रहूँगी। पर बहू पिंकी की देखभाल कौन करेगा? हमारी अब कितने दिनों की जिंदगी है।

अरे बाबू जी पिंकी कौन सी मेरी सगी बेटी है। मैं क्यों इसके लिए अपनी जिंदगी बर्बाद करूँ। अगर आप इसकी देखभाल नहीं कर सकते तो इसे वहीं छोड़ आओ इसे जहाँ से लेकर आए थे।

क्या कहा चंपा? मीना बोली। वह अभी-अभी आई थी, और उनकी बातें सुन रही थी। पर चंपा तुमने तो कहा था कि तुम इस घर को गुलशन बना दोगी पर ऐसा तो कुछ नहीं कर पाई, ऊपर से अब अपनी जिम्मेदारी से जी चुरा कर भाग जाना चाहती हो।

अरे मीना भाभी मैं जिस खूँटे के सहारे इस घर से बँधी थी। जब वो ही नहीं रहा तो यहाँ रह कर क्या करूँगी।

पिंकी उन सब की बातें सुनकर उदास हो गई। अब तो वह सेच रही थी कि अब उसे फिर से अनाथ आश्रम में जाकर रहना पड़ेगा। उसके रोंगटे खड़े हो रहे थे। फूल सी खिली हुई बच्ची एकदम से ऐसे मुरझा गई। मानों वह कई दिनों से बीमार हो। मीना उसके घर वापस आ गई। उधर चंपा रात में चुपके से घर से भाग गई। वह घर से गहने पैसे भी साथ ले गई थी। सुबह जब वह घर में न मिली तो पूरे मोहल्ले में खलबली मच

गई। मीना कहने लगी उसे तो पहले ही यहाँ से जाने का मन बना लिया था। वो तो पिंजरा तोड़ के उड़ गई। उसे ढूँढ़ने से कोई फायदा नहीं है। अब सुंदर के घर में कोई कमाने वाला नहीं था। न ही उनके लिए देखरेख करने वाला कोई था। सुंदर के पिता जी बोले मीना बेटा क्या तुम मरो एक काम करोगी? जी चाचा जी ...बताइए।

वो कहने लगे बेटा अब हमारी जिंदगी का कोई ठिकाना नहीं। कब हमारे प्राण निकल जाएँ? अगर हमें कुछ हो गया तो इस मासूम बच्ची का क्या होगा? कैसे इस समाज में जियेगी? इससे तो अच्छा है कि इसे हम अनाथ आश्रम में छोड़ देते वहाँ कम से कम इसकी देखभाल तो होती रहेगी। चाचा जी की बात सुनकर वह सोचने लगी। अब वे पिंकी को फिर से अनाथ आश्रम भेज देंगे। ऐसा सोचते-सोचते वह घर आ गई। उसके दिमाग में तूफान जैसी हलचल मची हुई थी। बड़ी मुश्किल से एक अनाथ को एक नई जिंदगी मिली थी। क्या पिंकी फिर से अनाथ हो जाएगी? नहीं ...नहीं ... ऐसा नहीं हो सकता। क्या पिंकी के भाग्य में विधाता ने केवल बदनसीबी लिखी है? मीना को परेशान होते देख उसके पति प्रनव ने पूछा अरे मीना क्या हुआ? किस उधेड़बुन में खोई हो?

अरे ...पटेल साहब। क्या बताऊँ ? तुम्हें तो पता ही है चंपा तो रातों-रात रफूचक्कर हो गई।

तो तुम क्यों परेशान हो रही हो?

अरे ...मैं, उसको लेकर परेशान नहीं हूँ। मेरी परेशानी का कारण पिंकी है।

दरअसल चाचा जी कल मुझसे बोल रहे थे, कि पिंकी को अनाथ आश्रम भिजवा दो। उसकी परवरिश ठीक से नहीं हो पा रही है, और उनके बाद वह बच्ची अकली कैसे रहेगी इस समाज में? क्या वह फिर अनाथ हो जाएगी उसने पूछा? मीना का रो-रो कर बुरा हाल है था। पिंकी को लेकर मीना की परेशानी साफ-साफ झलक रही थी। एक स्त्री की नि:स्वार्थ ममता का सजीव चित्रण प्रनव देख रहा था। वो इतनी भाव विभोर हो गई कि उसे खुद की सुध-बुध ही ना रही मानो उसकी अपनी बेटी उससे दूर जा रही हो।

मीना और प्रनव को भी कोई औलाद न थी। प्रनव बोला तो तुमने क्या सोचा है? क्या उसे अनाथ आश्रम भेज दें? मीना शांत थी। उसके मन में भावनाओं का ज्वार हिलारें ले रहा था, पर हिम्मत न थी उत्तर देने की। प्रनव मीना के मन को भांप चुका था, फिर भी वह मीना के मुँह से सुनना चाह रहा था। प्रनव ने भी मीना को ज्यादा परेशान न करते हुए कहा। अरे ...पगली। मैं भी तो यही सोच रहा था। प्रनव की हाँ सुनकर मीना को तो मानों तीनों लोकों का खजाना मिल गया हो। वह खुशी से नाच उठी। अब पिंकी अनाथ आश्रम नहीं जाएगी। हम बनेंगे उसका ''सहारा''।

प्रनव अब देर न करो चलो पिंकी के पास चलते हैं।

मीना को देखकर पिंकी एकदम से चहक उठी फिर वो उदास होकर कहने लगी आंटी क्या तुम मुझे अनाथ आश्रम ले जाने आई हो?

मीना बोली नहीं बेटा... बिल्कुल भी नहीं। अब से तुम मेरे पास मेरे घर में रहोगी, और अब मैं तुम्हारी आंटी नहीं ''माँ'' हूँ।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 7974514033, 9300763940

सतीश राठी

जुड़ाव

'साहब! आप की बैंक में बचत खाता खोलना है, लेकिन उधर काउंटर पर बैठे बाबू जी मना कर रहे हैं।' उस मजदूर महिला ने आकर मुझसे कहा।

'क्यों मना कर रहे हैं तुम्हें।' मेरा प्रति प्रश्न था।

'कह रहे हैं कि, तुम परदेसीपुरा में रहती हो तो वहाँ की बैंक में खाता खोलो। यहाँ वल्लभनगर की शाखा में हम खाता नहीं खोलेंगे।' उस महिला ने बतलाया।

'ठीक ही तो कह रहे हैं। यहाँ आना-जाना तो तुम्हें बड़ा दूर पड़ेगा। आखिर यहाँ पर ही क्यों खोलना चाहती हो तुम अपना बचत खाता?' मैंने पुनः प्रश्न किया।

'आप नहीं जानते साहब। जब इस बैंक की बिल्डिंग बन रही थी, तो मैंने यहाँ पर ईंटें उठाई थीं। मेरे पसीने की बूँदें गिरी हैं, इस भवन की भीत में।' महिला ने नम आँखों से अपना स्पष्टीकरण दिया।

उसके स्पष्टीकरण से मेरी भी आँखें नम हो गईं। बिना कुछ बोले उसे सामने बैठा कर मैं उसका बचत खाते का फार्म भरने लगा।

रोटी की कीमत

आटा चक्की पर भीड़ लगी हुई थी। सभी लोग गेहूँ पिसवाने के लिए आए हुए थे। उसी समय एक महँगी कार में से एक सूटेड बूटेड व्यक्ति ने उतर कर आटा चक्की वाले से पूछा, 'भाई! गेहूँ पीस दोगे।

आटा चक्की वाले ने कहा, 'इसीलिए तो बैठे हैं। थोड़ा समय लगेगा। भीड़ काफी है। बैठिये आप।' इतना कहकर एक कुर्सी उस व्यक्ति की ओर बढ़ा दी।

कसमसाता हुआ व्यक्ति उस कुर्सी पर बैठ गया और अपना मोबाइल देखने लगा। उसकी बेचैनी बार-बार उसके चेहरे पर परिलक्षित हो रही थी। चक्की वाला लगातार लोगों के डिब्बे के गेहूँ चक्की में डालकर उन्हें पीसता जा रहा था। तकरीबन बीस मिनट इंतजार के बाद उसने पूछा, 'हो जाएगा ना!'

चक्की वाले ने कहा, 'अब आपका ही नंबर है और उसका गेहूँ चक्की में पीसने के लिए डाल दिया। वह व्यक्ति बड़ा असहज महसूस कर रहा था।

उसने आटा चक्की वाले को लगभग सफाई देने की भाषा में बोलते हुए कहा, 'अपने जीवन के इतने बरसों में आज पहली बार गेहूँ पिसाने के लिए आया हूँ। कभी मुझे तो आने की जरूरत ही नहीं पड़ी।

आटा चक्की वाले ने उससे कहा, 'चलिए अच्छा है भाई साहब! आज आपको रोटी की कीमत तो समझ में आई।'

सम्पर्क : *इंदौर (म.प्र.), मो. 9425067204*

सत्यप्रकाश शर्मा

द्वितीय राजभाषा

माँगें कई प्रकार की होती हैं जैसे दहेज में लोग स्कूटर, कार, फ्रिज, टी.वी. माँगते हैं। घर में गृहणियाँ सोने-चाँदी की माँग करती हैं। कर्मचारी डी.ए. की माँग करते हैं। मजदूर संगठन वेतन वृद्धि की माँग। मैं समझता था कि मैं विभिन्न प्रकार की लगभग सभी माँगों से परिचित हूँ। 21वीं सदी में जाने केबहाने एक मांग ने बड़ी तेजी से जोर पकड़ा और वह माँग थी द्वितीय राजभाषा की। मुझे अपने जनरल नालेज पर गर्व था लेकिन दुख हुआ कि मैं इस माँग के बारे में नहीं जानता था। माँग नई और आकर्षित होने के कारण सभी के मन भा गई क्योंकि पुरानी सड़ी-गली माँगों से लोग बोर हो चुके थे।

अत: प्रत्येक भाषा भाषी ने द्वितीय राज्यभाषा की माँग को पुरजोर तरीके से प्रस्तुत किया। यह जाने बगैर कि हमारे देश में 1650 भाषाओं से भी अधिक भाषायें बोली जाती हैं। राजनैतिक क्षेत्र में तहलका मच गया। प्रत्येक बड़े राजनीतिज्ञ की नींद हराम हो गई। उनके लिये यह माँग ऐसी ही थी जिसे न निगला जा सकता था न उगला जा सकता था। उनकी गति साँप छछूँदर की तरह हो गई थी।

द्वितीय राजभाषा के संबंध में जुलूस, धरने, प्रदर्शन, ज्ञापन आदि का दौर तेजी से चल निकला हमने लोगों को समझाया कि इससे आपस में दुर्भावना पैदा होती है और आप देखिए कई जगह गोलियाँ चल गईं और बहुत से निर्दोष लोग स्वर्गवासी हो गये। लेकिन हमारी कौन मानता। लोगों का कहना था बगैर बलिदान के कोई चीज हासिल ही नहीं की जा सकती है। अत: मुझे चुप करा दिया गया।

पुराने जमाने में बड़े-बड़े राजा महाराजाओं के सामने जब कोई समस्या आती थी जिसका समाधान उनके दरबार का कोई विद्वान नहीं करवाता था तब वह भागकर फकीरों के यहाँ जाया करते थे और फकीर उनकी समस्या हल भी कर दिया करते थे। लिहाजा एक दिन हमारे घर के सामने एक कार रुकी और उसमें से एक हमारे परिचित बहुत बड़े नेता हमारे घर पधारे।

उनसे मिलकर तो हमें इतनी खुशी नहीं हुई जितनी अपने घर के सामने कार देखकर क्योंकि इससे पहले हमारे घर के सामने कार तो क्या स्कूटर भी खड़ा नहीं हुआ था।

अत: उनके स्वागत को लपके हमने कहा कहिए आज सूरज पश्चिम की ओर से कैसे निकल आया वे मुस्कुराते हुए बोले 'तुम मेरे बचपन के दोस्त हो और कुछ ना कुछ लिखते पढ़ते हो। मुझे एक परेशानी है उस पर तुमसे चर्चा करना चाहता हूँ।' उन्होंने द्वितीय राजभाषा की माँग पर लगभग रोते हुए

कहा अब मैं क्या करूँ मैं यहाँ का सबसे बड़ा नेता हूँ। मैंने कहा नेतागिरी छोड़ दो। उन्होंने ठहाका लगाया और बोले तुम कभी गम्भीर नहीं हो सकते। मैंने कहा तुमने प्रश्न इतना टेढ़ा रखा है कि मेरी बुद्धि काम नहीं कर रही है।

मुझे कुछ समय चाहिए। उन्होंने दो-तीन सप्ताह का समय दे दिया। इस बीच में जनता की एक और नई माँग के तहत सत्ता परिवर्तन हो गया और हमारे नेताजी पटियों पर आ गये फिर भी दोस्ती के नाते मैंने उन्हें पत्र लिखा और कहा यदि प्रत्येक भाषा को हम एक साल के लिए द्वितीय राजभाषा बनने का मौका दें तो कैसा रहेगा? उनका पत्र आया क्या मूर्खता की बातें करते हो इसमें तो सदियाँ लग जायेंगी।

मैंने उन्हें दूसरा और अन्तिम पत्र लिखा कि भाई विभिन्न प्रदेशों की सरकारें हजारों-लाखों लोगों को लाटरी द्वारा करोड़ों का हिसाब-किताब कर रही हैं अत: आप भी समस्त भाषाओं की चिट डालिए और उनमें से सिर्फ पाँच चिट निकालिए और उन्हें सीरियल आर्डर से पाँच-पाँच वर्षों के लिए द्वितीय राजभाषा बनाने का आश्वासन दीजिए आप तो मंत्री रह चुके हैं।

इस पत्र के जवाब में उनका पत्र मिला कि तुम्हारा सुझाव बहुत अच्छा है। लेकिन मैं पटियों पर आ चुका हूँ। कभी राजनीति में दुबारा आया तो इस पर अमल करूँगा।

कहिए आपको मेरा सुझाव पसन्द आया यदि आया हो तो उन राजनेताओं को अवश्य दीजिए जो द्वितीय राजभाषा फोबिया से पीड़ित हैं और उन लोगों को भी जो द्वितीय राजभाषा के कारण मानसिक यंत्रणा भुगत रहे हैं। हो सकता है मेरे इस सुझाव से उन्हें मानसिक शांति मिले।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9977678054

प्रो. महेश दुबे

खोजत खोजत सतगुरु पाइये

संभवतया 40 के दशक में सस्ता साहित्य मंडल ने 'संत-सुधा-सार' शीर्षक से एक संकलन प्रकाशित किया था, जिसके संपादक थे - वियोगी हरि। पं. ब्रजवासी लाल दुबे द्वारा संकलित और संपादित 'अरथ अमित अरु आखर थोरे' (2021) इसी शृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। प्रस्तुत ग्रंथ में मध्ययुग की आध्यात्मिक विभूति महामती प्राणनाथ (1618-1694) और उनके प्रणामी संप्रदाय के साधक-भक्त कवियों (मुकुन्दर स्वामी, नवरंग स्वामी, जीवन मस्तान, ज्ञानदास महाराज आदि) की वाणी और वचनों के साथ हमारे प्रमुख सगुण भक्त कवियों (तुलसी, मीरा, सूर रसखान, रहीम, आलम आदि) निगुर्णी गायकों (कबीर, मलूकदास भीखा आदि) और सूफी साधकों (बुल्लेशाह, खुसरो, दरिया साहब आदि) की रचनाओं का संकलन हैं। दुबे जी स्वयं प्रणामी संप्रदाय से जुड़े हैं और प्राणनाथ जी के दर्शन के गम्भीर अध्येता हैं। 87-88 वर्षीय दुबे जी की सृजनात्मक जिजीविषा और साहित्य साधना श्लाघनीय और प्रणम्य है।

मध्ययुग लोक की प्रतिष्ठा का युग था। भाषा के आभिजात्य का दर्प तोड़कर ग्रामीण संस्कार युक्त जनपदीय बोली की सधुक्कड़ी भाषा ने ज्ञान, शिक्षा और साहित्य में अभिव्यक्ति की प्रतिष्ठा अर्जित की। उच्च वर्ण और जाति के वर्चस्व को चुनौती देते हुए - कबीर, रैदास, पीपा, नामदेव जैसे साधक-कवि अपनी खरी-खरी बातों और अनुभवजन्य सत्य के कारण समाज में स्वीकार्य हो रहे थे। इन साधकों में एक महत्त्वपूर्ण नाम है प्राणनाथ जी का जो राष्ट्रीय एक सूत्रता और विभिन्न मत-मतान्तरों में एकता के प्रबल पक्षधर थे। इनके शिष्यों ने भी अपने गुरु की विरासत को समृद्ध किया। प्राणनाथ जी एक स्वप्नदर्शी साधक थे। उन्होंने विश्व-धर्म समन्वय का जो सपना अपनी शिक्षाओं में रूपायित किया वह उस युग के लिए कल्पनातीत था। वे एक जागरूक युगपुरुष थे। उनकी और उनके शिष्यों की वाणी और वचनों में धार्मिक सद्भावना और साम्प्रदायिक एकता का संदेश है-ये समन्वयवादी रचनाएँ आज भी प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण हैं। यथा- छोड़ गुमान सब मिलसी ए जो सकल जहान/जात पांत न भांत कोई, एक खान-पान एक गान।

प्राणनाथ जी ने 'सुख शीतल करूं संसार' का सपना सँजोते हुए मानव समाज के लिए सामाजिक समरसता, सौहार्द्र और सामंजस्य की भावना का प्रचार-प्रसार किया। संकलन में कई अपेक्षाकृत कम चर्चित, लगभग अज्ञात प्रणामी भक्त कवियों की रचनाएँ पढ़ना अपने आप में एक अनुभूति है, जो शब्दातीत है। यहाँ योद्धा छत्रसाल को एक प्रणामी भक्त कवि के रूप में पढ़ना-विस्मित करता है। इन मर्मस्पर्शी रचनाओं में दर्शन के गूढ़ तत्वों को भक्त-कवियों द्वारा सहज और सरल भाषा में व्यक्त किया गया है। इनमें समर्पण के स्वर हैं, राग और अनुराग है तो विराग का विहाग भी है और है प्रतिरोध की गूँज।

ऐसी ही रचनाएँ सत्य का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

कृति : 'अरथ अमित अरु आखर थोरे', संपादन : पं. ब्रजवासी लाल दुबे

सम्पर्क : *इंदौर (म.प्र.)*

ए के शर्मा

वतन तेरे लिये

स्वतंत्रता दिवस की वर्षगाँठ के एक दिन पूर्व देश भक्ति, सद्भाव, भाईचारे की भावना से ओतप्रोत गीत और ग़ज़लों का संकलन मिलना मेरे लिए सौगात से कम न था, जी हाँ ज़िक्र हो रहा है श्री साजिद हाशमी की नई किताब 'वतन तेरे लिये' का जो हाल ही में प्रकाशित हुई है। प्रस्तुत पुस्तक में कुछ शेरों के साथ वतन परस्ती और देश प्रेम के गीतों और ग़ज़लों का शानदार संकलन है।

किताब की शुरुआत आज़ादी की हीरक जयंती पर मुबारकबाद के गीत से होती है, तो अगली कुछ रचनाएँ देश के प्रति नमन और पचहत्तर बरस के सुहाने सफ़र पर केन्द्रित हैं, जैसे 'तुम्हें हुए हैं बरस पचहत्तर, लबों पे खुशियाँ थिरक रही हैं'- उम्दा गीत है जिसे लम्बी बहर के साथ आसानी से गाया जा सकता है।

अगली कुछ ग़ज़लें वतन को समर्पित हैं जैसे 'कोई ग़ज़ल ए वतन तेरे नाम पर लिक्खूँ' और 'कोई मिसाल नहीं है मेरे वतन की तरह' अच्छी बन पड़ी हैं। मौजूदा हालात में जब फिरका परस्ती की सियासत और आपसी सदभाव बिगाड़ने का प्रपंच रचा जा रहा है ऐसे में प्रेम भाव का संदेश देती शायरी सुकून देती प्रतीत होती है, कुछ ग़ज़लें 'दुश्मनी को दोस्ती की अंजुमन तक ले चलें' और हो तज़करा भजन का या बातें अज़ान की पठनीय हैं।

इस संकलन में ग़ज़ल तिरंगे पर भी है तो शहीदों पर भी, वतन की मिट्टी पर भी है तो वतन की तरक्की पर भी 'आओ ऐसा देश बनाएँ' कुल मिलाकर पुस्तक में फुटकर शेरों के साथ पचास से अधिक गीत ग़ज़लों का संकलन है, सभी रचनाएँ देशभक्ति के गुलदस्ते में सजाए गए फूलों की तरह हैं। जिनमें हर एक का अपना रंग है अपनी महक है। हर रचना कुछ न कुछ संदेश देती है।

पुस्तक को भारतीय साहित्य संग्रह कानपुर द्वारा प्रकाशित किया गया है और कीमत आम पाठको की पहुँच के अंदर ही रखी गई है। देश भक्ति और आपसी सद्भाव के इन गीतों और ग़ज़लों या इनके शेरों को किसी भी अवसर पर पढ़ा जा सकता है, पुस्तक पठनीय है।

पुस्तक : 'वतन तेरे लिये', लेखक : साजिद हाशमी, प्रकाशक : भारतीय साहित्य संग्रह कानपुर

सम्पर्क : *राजगढ़ (म.प्र.)*
मो. 9425442820, मो. 9425660027

विवेक रंजन श्रीवास्तव

हम इश्क के बंदे हैं

स्व. रामानुजलाल श्रीवास्तव 'ऊंट' जी ने हिन्दी गीत, कवितायें, उर्दू गजलें, कहानियाँ, लेख, पत्रकारिता, प्रकाशन आदि बहुविध साहित्यिक जीवन जिया। उन्होंने प्रेमा प्रकाशन के माध्यम से साहित्यिक में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। तत्कालीन साहित्यिक पत्रिकाओं में 'प्रेमा' की बड़ी प्रतिष्ठा रही है। उनकी धरोहर कहानी कृति 'हम इश्क के बंदे हैं' जिसका प्रथम प्रकाशन 1960 में हुआ था, उसे त्रिवेणी परिषद के माध्यम से साधना उपाध्याय जी ने संस्कृति संचालनालय म.प्र. के सहयोग से पुनर्प्रकाशित किया है । इस कहानी संग्रह में शीर्षक कहानी हम इश्क के बंदे हैं, बिजली, कहानी चक्र, मूँगे की माला, क्यू ई डी, मयूरी, जय पराजय, वही रफ्तार, भूल भुलैया, बहेलिनी और बहेलिया, आठ रुपये साढ़े सात आने, तथा माला नारियल कुल 12 कहानियाँ संग्रहित हैं। प्रो. चित्र भूषण श्रीवास्तव विदग्ध जी की पंक्तियाँ हैं-

सुख दुखों की आकस्मिक रवानी जिंदगी/ हार जीतों की बड़ी उलझी कहानी जिंदगी
भाव कई अनुभूतियाँ कई, सोच कई व्यवहार कई/ पर रही नित भावना की राजधानी जिंदगी।

ये सारी कहानियाँ सुख दुख, हार जीत, जीवन की अनुभूतियों, व्यवहार, इसी भावना की राजधानी के गिर्द बड़ी कसावट और शिल्प सौंदर्य से बुनी गई हैं। ये सारी ही कहानियाँ पाठक के सम्मुख अपने वर्णन से हिन्दी कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद की कहानियों जैसा दृश्य उपस्थित करती हैं। कहानी 'वही रफ्तार' को ही लें...।

कहानी 1957 के समय काल की हैं अर्थात् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के सौ बरस बाद का समय। तब के जबलपुर का इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, राजनीति सब कुछ मिलता है कहानी में . सचमुच साहित्य समाज का दर्पण है। कहानी से ही उद्धृत करता हूँ 'अरे अब तो अंग्रेजी राज्य नहीं है। अब तो अपना राज्य है। अपना कानून है। अब तो होश में आओ रे मूर्खों।'

हम आप भी तो यही लिख रहे हैं, मतलब साहित्यकार पीढ़ी दर पीढ़ी लिख रहा है, वह लिख ही तो सकता है। पर लगता है मूर्ख होश में आने से रहे। एक दूसरा अंश है, जिसमें रिक्शा वाला सवारी से संवाद करते हुये कहता है- 'दिन भर में रुपया डेढ़ रुपया मार कूट कर बचा भी तो मँहगाई ऐसी लगी है कि पेट को ही पूरा नहीं पड़ता।' कहानी का यह अंश बतलाता है 1957 में रिक्शा वाला दिन भर में रुपये डेढ़ रुपये कमा लेता था। जो उसे कम पड़ता था। कमोबेश यही संवाद आज भी कायम हैं। यह जरूर है कि अब रिक्शे की जगह आटो ने ले ली है, रुपये डेढ़ रुपये की बचत तीन चार सौ में बदल गई है।

कहानी संग्रह : 'हम इश्क के बंदे हैं', लेखक : स्व. रामानुजलाल श्रीवास्तव, मूल्य : रुपये 200/-

इस कहानी में तत्कालीन जबलपुर का वर्णन भी बड़ा रोचक है 'देवताल के नुक्कड़ पर, गढ़ा की सँकरी सड़क में कुछ घुस कर एक मोटर दीख पड़ी।' या 'ग्वारी घाट सड़क पर रिक्शेवाला दाहिने मुड़ने लगा तभी सवारी ने कहा सीधे चलो चौथे पुल से इधर दो-दो रेल्वे फाटक पड़ेंगे।' छोटी लाइन की समाप्ति और शास्त्री ब्रिज के निर्माण ने यह भूगोल अवश्य बदल दिया है।

अब आपके सम्मुख इस कहानी का कथानक बता देने का समय आ गया है। जो आपको निश्चित ही चमत्कृत कर देगा, यही कहानीकार की विशिष्ट कला है।

आज भी रोज कमाने खाने वाले मजदूर में यह प्रवृत्ति देखने में आती है कि यदि किसी तरह उनके पास अतिरिक्त कमाई हो जावे तो बजाय उसे संग्रह करने के वह अगले दिन काम पर ही नहीं जाते। वही रफ्तार कहानी में एक रिक्शे वाले जग्गू को उसके चातुर्य से, एक प्रेमी जोड़े से अतिरिक्त आय हो जाती है। वह स्वयं साहब बनकर मजे करना चाहता है और एक सरल हृदय बारेलाल के रिक्शे पर सवारी करता है। साहबी स्वांग करते हुये जग्गू बारेलाल के रिक्शे से अपने मित्र तीसरे रिक्शेवाले मनसुख के घर पहुँचता है। जब बारेलाल पर यह भेद खुलता है कि उस पर अकड़ दिखाता रौब झाड़ता जो उसके रिक्शे की सवारी कर रहा था वह स्वयं भी एक रिक्शेवाला ही है, तो वह भौंचक रह जाता है। किन्तु फिर भी वह उससे किराया लेने से मना कर देता है तब तीसरा रिक्शे वाला मनसुख जिसके घर जग्गू पहुँचता है वह कहता है - 'भाई बारेलाल, यह सच है कि नाई-नाई से हजामत की बनवाई नहीं लेता। पर मैंने जो रूखी सूखी बनाई है, आओ हम तीनो बाँटकर खा लें और इस साले से पूछें कि आज क्या स्वांग किया है।'

बारेलाल कहता है, हाँ यह हो सकता है।

बारे लाल जग्गू से कहता है 'साले बेईमान एक दिन की बादशाहत में जिंदगी कट जायेगी? गधे, घोड़े बैल का काम करो, आधा पेट खाओ। फैक्टरी की छँटनी के मारे ऐसी भीड़ कि रिक्शा मिलना भी हराम है।'

मनसुख बोला धीरज धरो भैया सब ठीक हो जायेगा।

कैसे?

ऐसे कि जैसे जग्गू बाबू बना था। समय आने पर नकली बाबू का भेद खुल गया न। इसी तरह नकली स्वराज्य और असली स्वराज्य का भेद खुल जायेगा और समय आते क्या देर लगती है? आ ही तो गया सत्तावन गदर का साल। सत्तावन अठ्ठावन सब बीत गये परन्तु गरीबों के लिये तो वही रफ्तार बढ़ेंगी जो पहले थी सो अब भी है।

इस वाक्य से कहानी पूरी होती है। स्व. रामानुज लाल श्रीवास्तव की अभिव्यक्ति भारत के अधिकांश गरीब तबके की मन की स्थिति का निरूपण है। कहानियाँ सत्य घटनाओं पर आधारित अनुभूत समझ आती हैं।

प्रश्न है कि क्या राजनीती की लकड़ी ही हांडी आज भी वैसे ही चुनाव दर चुनाव नहीं चढ़ाई जा रही। जग्गू, मनसुख और बारेलाल की पीढ़ियाँ बदल चुकी हैं, पर समाज की विसंगतियों की वही रफ्तार कायम है।

सभी कहानियाँ भी ऐसी ही प्रभावकारी हैं। किताब जरूर पढ़िये। सत्साहित्य के पुनर्प्रकाशन की जो ज्योति त्रिवेणी परिषद ने प्रारंभ की है, वह प्रशंसनीय है। ऐसा पुराना साहित्य जितना अधिक प्रचारित प्रसारित हो बढ़िया है। यह नई पीढ़ी को दिशा देता है। स्वागतेय है।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*

डॉ.चन्द्रभान सिंह यादव

सन्त-साहित्य का मर्म

'सन्त साहित्य ने सम्पूर्ण भारतीय चेतना को जागृत, उद्वेलित और परिचालित किया। चर्चित, प्रचारित शब्दावाली में जिसे हम मध्यकाल कहते हैं, उस काल खंड का सबसे बड़ा आंदोलन था। इस आन्दोलन ने न सिर्फ साहित्य अपितु भारतीय समाज की मनोवृत्तियों को झकझोर कर रख दिया।' यह नंदकिशोर पाण्डेय की पुस्तक 'सन्त-साहित्य की समझ' की प्रस्तावना का आरम्भिक अंश है। भक्ति-आन्दोलन साहित्यकारों के साथ समाजविज्ञानियों के बीच शोध का विषय रहा है। भक्ति और राम का प्रभाव उत्तराधुनिक समाज, राजनीति और साहित्य में भी व्याप्त है। इसलिए आज भी आवश्यक है भक्तिकाल पर अनुसंधान और उसका मूल्यांकन। आलोच्य पुस्तक इस दिशा में मील का पत्थर है। इसके माध्यम से सन्त सहित्य की दुरूहता को भी सहजता से समझा जा सकता है।

पुस्तक में 'सन्त साहित्य के सम्बोध्य और सम्बोधन' पर एक अध्याय है तो 'लिखित और मौखिक परम्पराएँ' पर भी। 'सन्त साहित्य की ग्रन्थ-ग्रन्थन पद्धतियाँ' हैं तो 'पारम्परिक सौन्दर्य विवेक और राग अर्थ के मानक' भी। 'सन्तकाव्य की विलक्षणताएँ' समझे बिना बानियों के मर्म तक पहुँचना संभव नहीं है। 'सन्धा भाषा, उल्टीबानी और निर्गुण-निर्वान पद' भाषा विज्ञान के साथ समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। 'सन्धा भाषा के नियामक स्रोत' अध्याय संतों को भारतीय साधकों के भाषा-चिंतन से जोड़ता है।

शंकराचार्य के 'ब्रह्म सत्यम जगत मिथ्या' में सामाजिक विषमता के विरोध के लिए कोई स्पेस नहीं था। डॉ. राधाकृष्णन लिखते हैं कि 'जात-पात की व्यवस्था का शंकराचार्य की नज़रों में विशेष महत्व नहीं होना चाहिए था, तो भी वह उसमें विश्वास के लिए पूरी गुंजाइश छोड़ देते हैं'। (के.दामोदरन, भारतीय चिंतन परम्परा, पृ. 271) किन्तु भक्तिआंदोलन का उद्भव ही इस गुंजाइश को तोड़कर होता है। इस आंदोलन के प्राचीनतम वैष्णवजन आलवार थे, जिसमें सात ब्राह्मण, एक क्षत्रीय, दो शूद्र और एक अतिदलित जाति 'पनर' से थे। इनमें एक आलवार महिला आंदाल भी थी। अत: इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि भक्ति-आंदोलन उद्भव काल से ही वर्णव्यवस्था और स्त्री-पुरुष के भेदभाव का विरोधी है। रामानुजाचार्य के गुरु कांचीपूर्ण शूद्र थे। उत्तर भारत में भक्तिआंदोलन को स्थापित करने वाले

पुस्तक : सन्त-साहित्य की समझ, लेखक : नन्द किशोर पाण्डेय
प्रकाशक : यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर,दिल्ली

पं. रामानंद के शिष्यों में कबीर जुलाहा, रैदास चमार, धना जाट और सेन नाई थे। आपने पद्मावती और सुरसुरानंद की पत्नी को भी दीक्षित किया था।

हिंदी आलोचना में हिंदी भाषी क्षेत्र के भक्तिकाव्य को अधिक महत्व मिला जबकि यह आंदोलन अखिल भारतीय था। 'महाराष्ट्र के संतों में सन्त ज्ञानेश्वर सर्वाधिक प्रतिष्ठित और पूज्य नाम है। ज्ञानेश्वर के व्यक्तित्व और साहित्य में नाथ और भागवत दोनों सम्प्रदायों का सुंदर समन्वय दिखायी पड़ता है। ज्ञानेश्वर ने नाथ संप्रदाय के योग मार्ग को भक्ति का आधार प्रदान किया था। योग और भक्ति की एकता ही उनके जीवन का लक्ष्य था।' (पृष्ठ,48) महाराष्ट्र के अन्य संतों में सावता माली, मुक्ताबाई, जनाबाई, चोखामेला, एकनाथ, तुकाराम और रामदास का व्यक्तित्व और कृतित्व प्रभावशाली है। मराठी नामदेव हिंदी निर्गुण शैली के प्रथम कवि हैं। संतसाहित्य पर आपका प्रभाव स्पष्टत: देखा जा सकता है। 'उड़ीसा की सन्त परम्परा में 'पंचसखा' का उल्लेख आदर के साथ होता है। सन्त बलराम, जगन्नाथदास, अच्युतानंददास, अनन्तदास तथा यशोवंतदास ने समाज के अत्यंत पिछड़े वर्ग को भक्ति की सर्वसमावेशी चेतना के साथ जोड़ा। सन्त जयदेव जैसे कवि की रचना 'गीतगोविन्द' ने ओड़िसा और बंगाल के कावियों को प्रभावित किया। इनके गायन ने चारुता और तन्मयता को उत्पन्न किया।' (पृष्ठ 16) जयदेव की भक्ति गीत, संगीत एवं नृत्य की त्रिवेणी है। उड़ीसा में लोक प्रचलित कहावत है 'जगन्नाथ का भात, जाति पूछो न पात'। अच्युतानंद दास ने 'गुप्तगीता' में शूद्र को ईश्वर का मुख माना है। भीम भोई का साहित्य आजतक अनुसन्धान का इंतजार कर रहा है। मिथिला के कवि विद्यापति की पदावली में भक्ति के साथ श्रृंगार अपने उत्कर्ष पर है। जिसमें कुछ आलोचकों को अश्लीलता नजर आती है। जबकि वात्स्यायन का कामसूत्र, गाथासप्तशती और खजुराहो की गुफाएँ भारतीय संस्कृति का अंग हैं। सिख धर्म के 'आदिग्रंथ' या 'गुरुग्रंथ साहिब' के संकलनकर्ता गुरु अर्जुनदेव जी हैं। इस ग्रन्थ में सिख गुरुओं के साथ भारतवर्ष के विभिन्न संप्रदायों के भक्तों-संतों की रचनाएँ संकलित हैं। अर्जुनदेव जी की प्रमुख रचनाओं में सुखमनी, बारामासा और जपुजी का नाम आता है। 'इनके पदों में इनकी सत्यनिष्ठा, गर्वशून्यता, आस्था, प्रभु के प्रति सर्वस्व समर्पण के भाव ने गुरु अर्जुनदेव को ऐसा निडर बना दिया कि जहाँगीर के द्वारा दिए गए जघन्य दण्ड को भी प्रभु का नाम स्मरण कर सहते रहे।''(पृष्ठ 69) पुन: सिख गुरुओं जैसे देशभक्त-संगठनकर्ता व चरित्रवान संतों की जरूरत है।

सन्तकाव्य व्यापक जनसरोकार का साहित्य है। अशिक्षित समाज में आज भी इसकी मौखिक परम्परा मिलती है। योगी और जंगम जातियाँ उत्सव, पर्व और श्रम परिहार से जुड़े अनेक अवसरों पर इसका गायन करती हैं। 'अनेक कलाजीवी जातियों ने उन्हें गा-बजाकर भिक्षाकर्म से लेकर साधुता तथा वेश्यावृत्ति की विभिन्न इकाइयों में इसका उपयोग किया। दु:ख-सुख के विभिन्न अवसरों पर विभिन्न ऋतुओं में, विभिन्न तीर्थो में उन्हें गाया गया।' (पृष्ठ 7) सन्तकाव्य देश के शीर्ष साहित्यकार रविंद्रनाथ टैगोर, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल और राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी से लेकर लिंडा हेस, जॉन स्टैटन हौली, एल्विन अंडरहिल जैसे विदेशी विद्वानों के भी अभिरुचि का विषय रहा है।

समकालीन अस्मिता विमर्शों में आलोचक अपने वर्ग, जाति की कमजोरियों पर लिखने से प्राय: बच रहे हैं। जबकि नंदकिशोर पाण्डेय जी कबीर के माध्यम से अपनी जाति पर अचूक प्रहार करते हैं-

'पंडितों! एक तरफ तो तुम तब तक भोजन नहीं करते जब तक मृत प्राणी का शव घर से बाहर नहीं चला जाता है। दूसरी तरफ स्नान करके, देवता की पूजा करके, नव गुण युक्त जनेऊ कंधे पर डाले हांड़ी में माँस पकाते हो और चूस-चूस कर उसका स्वाद लेते हो।' (पृष्ठ, 34) समतामूलक समाज की अवधारणा को आधुनिक लोकतंत्र की देन या पाश्चात्य शिक्षा-संस्कृति का प्रभाव मानना सीमित दृष्टि का परिचायक है। भारतीय इतिहास और सांस्कृतिक चेतना में इस प्रकार की सोच प्राचीन काल से मिलाती है। प्राचीन भारतीय इतिहास के षोडश जनपद में लोकतान्त्रिक व्यवस्था के पद चिन्ह हैं। बौद्ध-साहित्य में समतामूलक समाज की जो अवधारणा है, वह सिर्फ वहीं तक सीमित नहीं है। नाथों-सिद्धों से होती हुई भक्ति आन्दोलन का मूल स्वर बनती है। कबीर इस अवधारणा के प्रखर प्रवक्ता हैं- ' सभी वर्ग, जाति, लिंग के लोग एक ही प्रकार से पैदा होते हैं।....प्रभु ने एक ही पृथ्वी रूपी पीढ़े पर सबको समान रूप से बिठा दिया है। फिर तुम किसको छूत कहते हो, किसको अछूत?' (पृष्ठ 34)

रैदास भी अमानवीय असमानता और जाति व्यवस्था से असहमत हैं। दैन्यता और विनम्रता उनके स्वभाव-साहित्य का मूलभाव है। यही कारण है कि आपकी भक्तिभावना से तत्कालीन राजा, सवर्ण सन्त से लेकर अछूत आमलोग तक प्रभावित हुए। रैदास की चर्चित पंक्ति है-'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। ऐसी ही पंक्ति गोरखनाथ के यहाँ भी कुछ यूँ मिलाती है- 'अवधू मन चंगा तो कठौती ही गंगा'। नाथों, सिद्धों की वैचारिक पृठभूमि ही नहीं, पंक्तियाँ और शैली भी कुछ परिवर्तन के साथ संतों के यहाँ देखी जा सकती हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में इस परविस्तार से टिप्पणी की हैं। आरंभिक चरण में संतों के यहाँ लिखित परम्परा से अधिक मौखिक परम्परा और किंवदंतियाँ मिलती हैं। मौखिक परम्परा में स्थानीय शब्दों का समावेश स्वाभाविक है। सन्त तीर्थयात्रा के विरोधी थे किन्तु भ्रमणशीलता उनके स्वभाव में थी। जिससे संतों की बानियाँ अनेक प्रान्तों के विभिन्न कंठों से होकर गुजरीं। शिल्पकारों की जुबान पर चढ़कर पेशापरक शब्दावाली को ग्रहण किया। गेय बनाने के लिए उसमें संगीत के नियमानुसार परिवर्तन किये गए। जिन संतों की बानियाँ जितनी अधिक व्यापक हैं, उनमें पाठान्तर की संभावना उतनी ही अधिक है। कहा जाता है की दादू की रचनाएँ 20 सहस्र थी। शिष्य संतदास और जगन्नाथदास ने 'हरडे वाणी' में इनकी रचनाओ का संग्रह किया। 'संतों की रचनाओं के लिपिकर्ताओं का ध्यान पदों की भाषा-शैली, वर्तनी या व्याकरण से सम्बंधित विधि-निषेधों की ओर नहीं था। लिपिकर्ताओं का ध्यान मूल प्रतिपाद्य की ओर था। ये लिपिकर्ता बहुत शिक्षित भी नहीं थे। संतों ने जिस प्रकार काव्यशास्त्रीय नियमों पर ध्यान दिए बिना बानियों की रचनायें कीं, उसी प्रकार उनके लिपिकर्ताओं ने भी लिपि नियमों की उपेक्षा की।' (पृष्ठ 86) संतों व उनके लिपिकर्ताओं का सम्बन्ध और संबोधन आमजन से था। इसलिए वे सामान्यजन की बोलचाल की भाषा-शैली को अपनाते हैं न कि शिष्ट समाज की भाषा संस्कृत और व्याकरण-शास्त्र के विधिविधान को। महात्मा बुद्ध के उपदेश भी लोकभाषा पालि में लिपिबद्ध हैं।

निर्गुण सन्त ने न तो लक्षण ग्रंथों का अध्ययन किया था और न ही काव्य-शास्त्रीय नियमों की वे परवाह करते थे। फिर भी उनकी कविता में उत्तम काव्य के अनेक लक्षण विद्यमान हैं। परम्परागत राग-रागिनियों, ताल, लय और छंद का प्रयोग कुछ परिवर्तन के साथ देखा जा सकता है। दोहा छंद 'साखी' के

रूप में प्रयुक्त है। 'सबद' गेय पद है जो सिद्धों के यहाँ चार्यागीति या 'चार्यापद' था। दोहा-चौपाई का संयुक्त रूप 'रमैनी' है। इसका मूल उत्स अपभ्रंश साहित्य में है। 'कहार झाझ, मृदंग, हुड़क बजाकर जिस गीत को गाते हैं, उसे 'कहरवा' कहते हैं। इस गीत को गाते हुए वे नाचते भी हैं। इसके ताल में आठ मात्राएँ होती हैं। इसे दादरा में भी गाते हैं।' (पृष्ठ,132) ऐसे संदर्भ लेखक की निम्न वर्ग के प्रति अभिरुचि के साथ उसके शास्त्रीय ज्ञान का प्रमाण हैं। बसंत, चाँचर, बेलि और हिंडोला संतों के अन्य प्रिय छंद हैं। जो अभी भी ग्रामीणांचल में मौसमानुसार लोकवाद्य यन्त्रों पर गीत-नृत्य के साथ प्रस्तुत किये जाते हैं। जैसे फाल्गुन मास में बसंत और सावन में हिंडोला।

किस राग को किस ऋतु, मास, पहर में गाया जाना चाहिए, पुस्तक इसका भी ज्ञान कराती है। आचार्यों का मत है कि समयानुसार गाये जाने से राग विशेष अधिक प्रभावकरी होता है। इस्लाम के आगमन से हिन्दुस्तानी संगीत फारसी संगीत से मिल कर समृद्ध हुआ। अलाउद्दीन के शासन काल में गुजरात और दक्षिण भारत के संगीतकारों को दिल्ली में बसाया गया। जिससे प्रादेशिक संगीत-संस्कृति को समन्वय का अवसर मिला। 'अलाउद्दीन संगीत का बड़ा प्रेमी था। अमीर खुसरो जैसे गायक उसके दरबारी थे। अमीर खुसरो ने अनेक नए वाद्यों का आविष्कार किया। सितार अमीर खुसरो की ही खोज मानी जाती है। अमीर खुसरो के कारण फारस के संगीत ने भारतीय संगीत को बहुत अधिक प्रभावित किया।' (पृष्ठ 170) ऐतिहासिक सन्दर्भों से पुस्तक में प्रामाणिकता आती है।

भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। भाषा की सहजता और सर्जनात्मकता लेखक के सामर्थ्य का परिचायक है। संतों ने शिष्ट समाज-साहित्य में हजारों वर्षों से उपेक्षित शब्दों को कविता में स्थापित कर दिया। 'कविता का हर शब्द श्रमजीवी साधुओं के हर स्वेद-कण के साथ टपकता था। स्वेद-कण की भाँति हर शब्द इनके गार्हस्थिक लगाव, परिश्रम की रोटी, इस लोक के विरुद्ध लिखते-बोलते हुए लोक के प्रति अनासक्त आसक्ति से संवलित, परिवेष्ठित तथा संपुटित थे।' (पृष्ठ 298) लोकभाषा और क्षेत्रीय-परिवेशगत शब्दों का प्रयोग सन्त सहित्य को सटीक अर्थवत्ता प्रदान करता है और प्रसार में सहायक भी है।

सिद्धों की 'संधा भाषा' गुणार्थ को प्रकट करने वाली है। इसका शाब्दिक अर्थ होगा अभिसंधि या अभिप्राय युक्त भाषा। पं. हरिप्रसाद शास्त्री के शब्दों में यह 'आलो आंधारि भाषा' है। अर्थात् कुछ अंधकार और कुछ प्रकाश की। यह सामान्य की जगह विशिष्ट अर्थ को प्रकट करने वाली भाषा है। 'इस प्रतीकात्मक शैली के माध्यम से बौद्ध सिद्धों ने अपने साधनात्मक गूढ़ ज्ञान को अभिव्यक्त किया है। यह शैली इनकी अपनी नहीं थी। इस शैली का प्रयोग इसके पूर्व भी भारतीय वाङ्मय में हो चुका था। ऋग्वेद, अथर्ववेद के अतिरिक्त उपनिषदों में भी इसका प्रयोग हुआ है।' (पृष्ठ 250) सन्त यत्र-तत्र पूर्ववर्ती साधकों के मत को उनकी ही शैली में प्रस्तुत करते हैं। बौद्ध सिद्धों की संधा भाषा नाथों से होते हुए संतों में आयी है जिसे आलोचकों ने नाम दिया 'उलटबाँसी'। इसका सामान्य अर्थ उल्टा प्रतीत होता है। लेकिन जब साधनात्मक प्रतीकों के माध्यम से गूढ़ार्थ प्रकट होता है तो जनसामान्य को चमत्कृत करने वाला होता है। गोरखनाथ के कथन-'उलटी चरचा गोरष गावै।' और सुंदरदास के वचन-'सुंदर सब उलटी कहै समुझै सन्त सुजान' में समानता दर्शनीय है।

सन्तकाव्य में आये कुछ विलक्षण-पारिभाषिक शब्द द्रष्टव्य हैं। जिनके अर्थ को जाने बिना बानियों के मर्म को नहीं समझा जा सकता। समीक्ष्य पुस्तक इन विलक्षण शब्दों को समझने-समझाने में सक्षम है। अजपाजप 'जिसके लिए किसी बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस जप में स्पष्ट रूप से मुख से इष्ट के नाम का उच्चारण नहीं होता, माला नहीं फेरी जाती, न ही अँगुलियों पर अँगुली घुमाई जाती है। इसका जप स्वत: अनवरत चलता रहता है।' (पृष्ठ 196) साधना के दौरान साधक को अनेक प्रकार की ध्वनियों का अहसास होता है। इन ध्वनियों या नाद को उत्पन्न करने के लिए किसी प्रकार की चोट नहीं करनी पड़ती। इसलिए इसे अनाहत या 'अनहदनाद' कहते हैं। संतों के यहाँ 'अगम' अनेक अर्थों में आया है। यह संस्कृत शब्द अगम्य से व्युत्पन्न है। जहाँ पहुँचाना कठिन या असंभव हो। सन्तकाव्य में इसका प्रयोग दुर्गम, दुर्बोध और अथाह के अर्थ में हुआ है। 'अनभै' अर्थात् भय रहित या अभय ज्ञान जो परम सत्ता से साक्षात्कार के बाद प्राप्त होता है।

'अरध, उरध' शब्द का प्रयोग संतों के यहाँ एक साथ हुआ है। अरध संस्कृत शब्द अध: तथा उरध संस्कृत शब्द ऊर्ध्व का अपभ्रंश रूप है। हठयोग साधक कुण्डलिनी को जाग्रत कर अरध यानी मूलाधार से उरध यानी सहस्त्रार तक ले जाता है। भारतीय साहित्य में 'अवधूत' या 'अवधू' शब्द का प्रयोग दैहिक एषणाओं और सांसारिक बंधनों से मुक्त योगी के लिए हुआ है। 'अमृत' अर्थात् अमर बनाने वाला रस। सिद्धों ने इसके लिए सहज शब्द का प्रयोग किया है। 'मेरुदंड में वायु का वहन करने वाली इड़ा बायीं ओर की और पिंगला दायीं ओर की नाड़ी है। इन दोनों के बीच सुषुम्ना नाड़ी है। ये नाड़ियाँ भ्रूमध्य (संगम) में जा कर मिलती हैं। इड़ा,पिंगला और सुषुम्ना को गंगा, जमुना और सरस्वती भी कहते हैं।' (पृष्ठ 207) पुस्तक में इसी प्रकार सन्त साहित्य के दुरूह शब्दों की व्युत्पत्ति बताते हुए नाथों-सिद्धों की परम्परा से जोड़ा गया है। इनमें से कुछ शब्द उल्लेखनीय हैं-उन्मनि, उल्टीगंगा, खसम, खटकरम, खेचरी मुद्रा, गगन मंडल, घरनी, दोजख-भिस्त, नांद-बिंदु, निरंजन और सुरति-निरति। इन शब्दों की व्याख्या बोधगम्य है। उक्त शब्दों का सम्बन्ध भारतीय परम्परा के साथ संतों की साधना से भी है।

'सन्त-सहित्य की समझ' पं.हजारी प्रसाद द्विवेदी और प्रो. शुकदेव सिंह की चिन्तन-परम्परा का विकास है। यह किताब भक्तिकाव्य के शोधार्थियों का मार्गदर्शन करने में समर्थ है। निर्गुण काव्य की अधिकांश शोध-आलोचना विरोध, विद्रोह, प्रगतिशीलता और दलित विमर्श के दायरे में की जा रही है, किन्तु इस पुस्तक में भाषाशास्त्र, काव्यशास्त्र एवं समाजविज्ञान के आधार पर विश्लेषण है। भूमंडलीकरण के कंधे पर आया बाजारीकरण ने आर्थिक असमानता व अपराध को बढ़ाया है तो उपभोक्तावादी संस्कृति ने यौन-हिंसा और भ्रष्टाचार को। ऐसे परिवेश में पुस्तक की प्रासंगिकता और महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि यह साहित्य-समाज को समरस बनाने में सहायक ग्रन्थ है।

सम्पर्क : *मुरादाबाद (उ.प्र.)*
मो. 8171075695

डॉ. प्रेम भारती

भारतीय तीर्थ दर्शन

भारतीय समाज व्यवस्था की अपनी विशेषता रही है कि सम्पत्ति के संग्रह को अधिक महत्त्व न देकर, उसका प्रवाह प्रभु कार्य में बहना होना चाहिए। प्रभुकार्य में व्यय होने के पश्चात् बची हुई सम्पत्ति को प्रभु-प्रसाद मानकर ही उपयोग करना चाहिए। इस दृष्टि से तीर्थ दर्शन करना हर व्यक्ति के लिए आवश्यक रहा है। किन्तु आज सम्पत्ति पर धर्म का नियंत्रण नहीं रहा, इसलिए वह केवल भोग का साधन बनती जा रही है। तीर्थ अब पर्यटन भावना से किए जाते हैं, इसलिए सांस्कृतिक भावना उनमें दिखाई नहीं देती।

श्री ओम प्रकाश खुराना ने अपनी पुस्तक 'भारतीय तीर्थ दर्शन' में लिखा है- दर्शन करने और देखने में बड़ा महीन अंतर है। पर्यटक केवल भौतिक दृश्यों, मूर्तियों, देवस्थानों व प्रकृति को केवल बहिरंग दृष्टि से ही देखता है, किन्तु हमारी संस्कृति में दर्शन का अर्थ स्थान, रूप, नाम और व्यक्ति के आवरण में छिपी अदृश्य सत्ता की प्रतीती से है। इसलिए अपनी आमदनी का एक अंश तीर्थ-यात्रा में लगाना हमारा परम कर्तव्य है। तीर्थ-दर्शन का फल आँखों से नहीं देखा जा सकता। फल भविष्य में मिलेगा इसकी प्रतीक्षा करना होती है। मूलत: इस पुस्तक की रचना ईश्वरीय प्रेरणा से ही हुई है। साथ ही आज की आवश्यकता को देखते हुए नई पीढ़ी से अपनी सांस्कृतिक भावना व तीर्थ दर्शन पर मंथन-मनन करने की अपेक्षा की है, ताकि उसके मनन और दर्शन से, उसे जीवन में सुखद अनुभवों के बीज-बपन करने का अवसर मिल सके। इस ग्रंथ में पूरे राष्ट्र की तीर्थ यात्राओं में लेखक को मिले अनुभवों के साथ-साथ धार्मिक जिज्ञासाओं के मिले समाधानों पर भी प्रकाश डाला है। तीर्थाटन पूर्व, तैयारी सावधानियाँ, पूजा-परिपाटी, अध्यात्म दर्शन आदि पर परिशिष्ट में चर्चा करके पुस्तक को बहुउपयोगी बनाया गया है।

पुस्तक का नाम 'भारतीय तीर्थ दर्शन' इसलिए रखा गया है कि साधारण लोगों के लिए दर्शन शब्द क्रिया का द्योतक है किन्तु दर्शन का आन्तरिक भाव चिन्तन से जुड़ा है। तीर्थ अगणित हैं, यह इस बात का द्योतक है कि ईश्वर सर्वत्र हैं। किसी विशेष स्थान से बँधकर वे नहीं रहते। तीर्थों में प्रतिवर्ष लाखों लोग भगवान के दर्शन करने के लिए यात्रा करते हैं किन्तु उनके जीवन में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता। जिस प्रकार पुजारी नित्य ही भगवान के दर्शन करता है किन्तु उसके जीवन में स्वभव परिवर्तन दिखाई नहीं देता। फिर भी वह पूरा जीवन देव-मूर्ति की सेवा में लगा देता है। उसे शृंगार करके सुन्दर बनाता है।

पुस्तक : भारतीय तीर्थ दर्शन, लेखक : ओम प्रकाश खुराना, मूल्य : रुपये 350/-

दिव्यमाला तथा धूपदान की गन्ध से पूरे परिसर को सुगन्धित करता है फिर भी उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ अतीन्द्रिय आनन्द से वंचित रहती हैं। इससे स्पष्ट है कि देवता को दृश्य में बिठाने तथा भावनाओं के अनुरूप जीवन ढालने में उसकी रुचि नहीं रहती इसलिए तीर्थ यात्रा करते समय मूर्ति के दर्शन से भीतर का देवतत्व जगाना चाहिए तभी देव-दर्शन की सार्थकता है।

लेखक ने सनातन संस्कृति के क्षरण को रोकने के लिए दर्शन के विचारण पक्ष को उजागर करने के लिए गुरुदेव के इस सन्देश को अपनी पुस्तक में केन्द्रीय रूप में प्रस्तुत किया है। लेखक ने अनेक वर्षों में की गई तीर्थ यात्राओं के वर्णन में अपने अनुभव में आने वाले समाज-कल्याण के अनेक कार्यक्रमों का अध्यन कर उन्हें अंगीकार करने का भक्तों से आग्रह किया है। जिन्हें निजी अथवा सामूहिक स्तर पर समयदान, अंशदान, प्रतिभादान, यज्ञ अथवा ज्ञान-यज्ञ रूप में किया जा सकता है। लेखक की यह मान्यता है कि सपरिवार तीर्थ करने से पारिवारिक प्रेम और सामंजस्य में वृद्धि होती है तथा मानव में नैतिक गुणों का विकास होता है। इस प्रकार पुस्तक का मुख्य लक्ष्य तीर्थों में जाकर अपनी संस्कृति की जड़ों तथा दार्शनिकता को समझाना भी है। और अपने जीवन को सार्थक बनानी भी है। राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से देखें तो इसी बहाने प्रादेशिक संस्कृति की गतिशील चेतना को समझने का भी यह अनिवार्य घटक है।

देश के सभी राज्यों में स्थित तीर्थों को राज्य क्रम के पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी तथा दक्षिणी क्षेत्रों में बाँटकर लेखक ने विषय वस्तु को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक को हर व्यक्ति को पढ़ना चाहिए, क्योंकि आज तीर्थ दर्शन करने की भावना शिक्षित लोगों की उपेक्षा और विडम्बना का शिकार बनी हुई है। अत: मात्र मूर्ति के दर्शन करना जीवन विकास में सहायक नहीं होता। दर्शन करने वालों को कौन समझाए कि मूर्ति दर्शन से मन को स्थिर करने की भावना नहीं आती है। धूप, दीप, अगरबत्ती, फूल मन को प्रसन्न करने वाले तन्तु हैं किन्तु यह भावना उनमें तब आएगी जब उन्हें मूर्ति के बाह्य स्वरूप के स्थान पर उसमें निहित भावना से प्रेम होगा। ध्यान रहे विश्व के सभी धर्मों में किसी न किसी रूप में इसी कारण मूर्ति पूजा का विधान है।

शास्त्रों में कहा गया है-

न देवो विद्यते काष्ठे, न पाषाणे न मृणमये।

भावेहि विद्यते देवो तस्मान भावो ही कारणम्।।

अर्थात् मूर्ति के दर्शन में भाव का ही महत्त्व है। मैं निश्चिय पूर्वक कह सकता हूँ कि श्री खुराना की इस कृति में तीर्थ दर्शन में ऐसे अनेक सांस्कृतिक सूत्र विद्यमान हैं, जो असंदिग्ध रूप में मानव जीवन की सार्थकता को व्यापक अर्थ में प्रकट करते हैं। प्रत्येक वाक्य में अनन्त की अभिव्यक्ति समायी हुई है। भौतिक दृष्टि से देखा जाए तो पुस्तक तीर्थों के ज्ञान का एक छोटा सा उपवन है, जो भव्य भावना की सुगन्ध से परिपूर्ण है इस पुस्तक को हर व्यक्ति को पढ़ना चाहिए। आज के युग में लेखन का विस्तार तो बढ़ा है किन्तु गहराई खोती जा रही है। इसके लिए में लेखक को साधुवाद देता हूँ? सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना का उनका यह प्रयास सराहनीय ही नहीं अनुकरणीय भी है।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9424413190

वसन्त निरगुणे

साथ नहीं देती परछाईं

कवि प्रदीप नवीन की कविता को मैं तब से जानता हूँ, जब से उन्होंने लिखना शुरू किया था। वे हँसते-हँसते अपनी कथा कहने में माहिर हैं। कभी गीत में, कभी ग़ज़ल में अपनी बात कहने वाले प्रदीप नवीन अपने आपको मंचीस कवि मानते हैं। उन्होंने कभी साहित्यिक कवियों में शामिल होने का दावा नहीं किया। वे अपनी धुन में गीत गाते रहे। ग़ज़ल पढ़ते रहे। छंद कविता करते रहे। कुछ माँग उलझी तुलना प्रसिद्ध शुद्ध हास्य के कवि काका हाथरसी से दाढ़ी के भ्रम में करते रहे हैं। लेकिन प्रदीप नवीन का लेखन पठन और गायन उनसे बिल्कुल अलग है। एक तो वे अपनी रचनाओं को याद रखते हैं, बिना कागज के नई से नई कविता पढ़ देते हैं। और कभी-कभी उन पर आशु कविता का जुनून सवार हो जाता है, तत्काल जोड़ी गई ऐसी तुक बन्दी, उपस्थित दर्शक श्रोताओं से तालियाँ बटोर लेती है। तब प्रदीप नवीन की काव्य-प्रतिभा का जैसे विस्फोट सा होने लगता है और कठिन से कठिन विषय मंच के सम्मुख हजारों दर्शक श्रोताओं के दिलों को शुदगुहाले हुए सहज ही उत्तर जाता है। यह जादुई करिश्मा मैंने प्रदीप नवीन के काव्यभाश में कई बार देखा-सुना है। उनकी कविता हास्य और व्यंग्य के बीच की सात्विक प्रवृत्ति की कविता कही जा सकती है। उनका हास्य-व्यंग्य धीरे-धीरे श्रोताओं के मस्तिष्क की परतों को खोलता है और मन को खिलखिला देता है। उनकी तुकबंदियाँ भी आश्चर्यजनक तरीके से अर्थ को व्यापक गहराइयों तक पहुँचा देती हैं। तब प्रदीप नवीन की काव्य प्रतिभा का लोहा सहज ही मान लेना पड़ता है।

वे कविता क्यों लिखते हैं? इसके प्रति भी उनका कविमन सजग है : 'खाते को एक ग्रास नहीं/ क्या इसका आभास नहीं/क्या इसका आभास नहीं/कलम पूछती लिखने लायक, क्या उनका इतिहास नहीं? और भी देखें-तू जिया हँसाने की खातिर/फिर भी कोई तुझसे खल गया। ये पाँव में तेरे जूते पर/तेरे जूते पर/फूलों में छाला फूट गया। फूलों के छाले के फूटने की व्यथा की करूणा जब प्रदीप की कविता में उत्तर जाती है, तब प्रदीप की कविता सर्वथा साहित्य की नई उद्‌भावना और उपमा प्रकट करती है। इस प्रकार प्रदीप हमें अनेक बार चौंका देते हैं।

पुस्तक : 'साथ नहीं देती परछाईं' (ग़ज़ल संग्रह), कवि : प्रदीप नवीन
प्रकाशक : हिन्दी परिवार, इंदौर

''अब तो कुछ भी कहा नहीं जाता/बिन कहे भी रहा नहीं जाता। समाज, सत्ता, सरकार की व्यवस्था देखकर प्रदीप का मन खिन्न हो उठता है, आक्रोश और खोज से भर उठता है- प्रजातंत्र का अभी का मेला/ देखने जाते लंगड़े-अन्धे।'' सभी हिलाते एक दूजे की हाँ में गर्दन/किन्तु समर्थन में उठती कोई बाँह नहीं।

अपने घर की रोशनी ठीक से जलती नहीं/गैर के अँन्धेरे से लड़ रहा है आदमी। हर कोई किसी से कहु रहा। वो मेरा दास है आजकल/साजिश के बीमार देश में/असर दिखाती नहीं दवाएँ/अब तो...सबकी आँखों पर हैं पर्दे/शर्म आदमी होने में/कवि की कैसी त्रासदी है- उसे अतीत भी काटने लगा है। ऐसा कुछ हो रहा प्रतीत है/मुझको त्रास के रहा अतीत है। जब अतीत किसी को सताने लगे, तब वर्तमान का काम हो सकता है। प्रदीप नवीन ने ही इन पंक्तियों में बहुत कुछ संकेत कर दिया है और यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। बातों-बातों में प्रदीप उस भाव शिखर को छू लेते हैं। जहाँ कविता का मुकाम होता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण किसी व्यक्ति का 'कवि' होना है। वैसे तो लाखों-करोड़ों लोग हैं इस पृथ्वी पर कवि लेखक होने का सौभाग्य कितने लोगों को मिलता है? एक संवेदनशील मन प्राण सबको नहीं मिलता। प्रदीप नवीन कवि हैं- छन्द बद्ध कविता जन सामान्य के लिये बहुत साफगोई और ईमानदारी से रचते हैं। वे दुविधा में नहीं हैं कि उनका नाम महान कवियों में लिखा जाये। बस वे कविता में जीते हैं, और कविता के लिये मरते हैं।

पता नहीं क्यों डरे हैं लोग,/ जिन्दा होकर मरे हैं लोग।/ ढूँढ़ कहाँ इंसान बचे हैं,/ गिन इतने शैतान बचे हैं।/ कब्जे में है बाप के बेटी,/ कुछ अवैध सामान बचे हैं।/ धर्म कर्म बेशर्म हो गया,/ पूछ कहाँ भगवान बचे हैं।

यह सच है सब पर कविता मेहर बान नहीं होती, जिस पर भी कविता मेहरबान होती है, वह उसे निहाल कर देती है। वाल्मीकि से लगाकर तुलसी, कबीर, मीरा, निराला, महादेवी पंत तक तर गये, प्रदीप नवीन भी उस कविता के हामी हैं, जो जन-जन तक पहुँच सके, कुछ संदेश दे सके।

बुरा बोल के फँसना मत,/ सत्य के आगे हँसना मत/ जल पे लकीरें खींच मत,/ पानी व्यर्थ उलीचे मत/ धरती के सूखे अधरों को/ एक आँसू से सींचे मत।

कवि को ज्ञात है कि दुनिया से प्रेम चला गया है, लोग सच्चा प्रेम करना भूल गये हैं।

अपशब्दों के व्याख्याय में / खोई-खोई प्रेम की भाषा।

कवि के पाँव के नीचे की जमीन खिसक गई है...।

पाँव के नीचे जमी है दलदली सी/ खड़े रहना है मगर धँसना नहीं है।

कवि प्रदीप नवीन यद्यपि मंचीय कवि अपने आपके मानते हैं पर मेरी नजर में कविता तो कविता होती है, उसमें मंचीय या साहित्यिक का भेद नहीं होना चाहिए। 'साथ नहीं देती परछाईं' 'ग़ज़ल संग्रह' पठनीय है इसका उदाहरण है।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*

डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र

अथर्वा : प्रयोगधर्मी काव्यकला की सशक्त कृति

'अग्निपुराण' के रचयिता ने कवि को काव्य-जगत का ब्रह्मा कहा है। पुराणकार के अनुसार अपार काव्य-संसार में कवि ही प्रजापति (ब्रह्मा) है। उसको जैसा रुचिकर लगता है वैसा ही काव्य-विश्व वह रच देता है-

'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथा वै रोचते विश्व तथेदं परिवर्तते।।' (अग्निपुराण-339/10)

इस श्लोक में कवि की रचनात्मक स्वायत्तता और स्वतंत्रता की स्पष्ट स्वीकृति रेखांकनीय है। प्रत्येक रचनाकार का अपना परिवेश अपना अध्ययन, अपना अनुभव-संसार, अपने संस्कार, अपनी रुचियाँ, अवधारणाएँ, मान्यताएँ और सपने आग्रह होते हैं इनके विविधवर्णी सूत्र ही उसके सतरंगे काव्यलोक की सृष्टि करते हैं और इन्हीं आधारों पर एक कवि का काव्य दूसरे कवि के काव्य से भिन्न और नवीन होता है। काव्य और कला के विस्तृत क्षेत्र में नये प्रयोगों के द्वार भी यहीं अनावृत होते हैं। यदि कवि कलाकार को रचना-स्वातंत्र्य न मिले तो उसकी कला-सृष्टि में मौलिकता एवं नूतनता का समावेश कभी संभव नहीं हो सकता। प्रत्येक देश-काल में कवि-कलाकार अपने रचनात्मक-स्वातन्त्र्य का उपयोग करते हुए नयी कलाकृति रचते रहे हैं और आज भी रच रहे हैं। डॉ. आनन्द सिंह कुमार की सद्य प्रकाशित काव्यकृति 'अथर्वा' भी इस तथ्य की साक्षी है।

डॉ. आनन्द कुमार सिंह अज्ञेय-साहित्य के सुधी अध्येता हैं। उनकी पूर्व प्रकाशित समीक्षा,-कृति 'सन्नाटे का छंद' अज्ञेय-साहित्य पर लिखित महत्त्वपूर्ण रचना है। इससे स्पष्ट होता है कि डॉ. सिंह पर हिन्दी-काव्य में प्रयोगवाद के प्रवर्तक अज्ञेय का गहरा प्रभाव है। अज्ञेय की प्रयोगशील काव्य परम्परा को नव-प्रवाह प्रदान करते हुए उन्होंने 'अथर्वा' के काव्य-शिल्प को नए आयाम दिए हैं, 'वस्तु' और 'शिल्प' दोनों स्तरों पर यह रचना अपनी प्रयोग धर्मी-प्रकृति का सशक्त परिचय देती है। इसकी प्रस्तुति गद्य-पद्यमयी है किन्तु यह चम्पू-काव्य नहीं है। इसमें कहीं गद्य की कथात्मकता एवं नाटकीय-संवादात्मकता है तो कहीं अतुकान्त शैली की नयी कविता अथवा छन्द बद्ध पारम्परिक कविता का रस-संसिक्त मोहक प्रवाह है, कहीं आवेगपूर्ण भाव-धाराओं की अति तीव्र गति है तो कहीं विचार के गंभीर आवर्त हैं, पाठक कहीं सुदूर अतीत के इतिहास-गहवरों में विचरता हुआ सभ्यता की विकास-यात्रा का परिचय पाता है तो कहीं अद्यतन परिस्थितियों से साक्षात्कार करता हुआ विश्वमानव के मंगलमय भविष्य का स्वर्णिम-पथ अन्वेषित करता है। इसलिए यह रचना समकालीन युगीन-संदर्भों में

पुस्तक : 'अथर्वा', लेखक : डॉ. आनंद कुमार सिंह

महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ विविध परिप्रेक्ष्यों में शाश्वत महत्त्व की भी है।

'अथर्वा' का रचना-विधान प्रबन्ध-काव्यात्मक है किन्तु इसकी प्रबन्धात्मकता का स्वरूप पारम्परिक लक्षणों के रूढ़ि-बन्धनों से प्रायः मुक्त है और अनेक प्रयोगधर्मी नवीनताओं से युक्त है। बौद्ध धर्म-ग्रन्थों एवं अनेक साहित्यिक-ऐतिहासिक ग्रन्थों से सूत्र सँजोकर डॉ. सिंह ने इस वृहतकाय प्रबन्ध काव्य का कथानक रचना है जिसमें चीनी यात्री फाह्यान और ह्वेनसांग बौद्ध धर्म-ग्रन्थों की दुर्लभ पाण्डुलिपियों की खोज में भारत आते हैं और उनके माध्यम से सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और विभिन्न परम्पराओं का परिचय पाने का प्रयत्न करते हैं। 'हिरण्यगर्भ,' 'वातायन' 'कुण्डल वन,' 'ब्रह्मावर्त,' 'सूत्रीसूक्त,' 'तन्त्रालोक,' 'महाश्मशान,' 'प्रतिनारायण,' 'लोपामुद्रा,' 'मायादर्श,' 'समुद्र कल्प,' 'पृथ्वी सूक्त,' 'अतिमानस,' 'जम्बूद्वीप,' 'आनन्दवल्ली' और षोडशी शीर्षकों में ग्रन्थ की विषय वस्तु निबद्ध है। उपर्युक्त शीर्षकों को दो खण्डों में वर्गीकृत किया गया है। खण्ड-एक 'पूर्वार्चिक' में 'हिरण्यगर्भ' से लेकर 'महाश्मशान' तक प्रारम्भिक आठ शीर्षक हैं जबकि खण्ड-दो 'उत्तरार्चिक' में 'प्रतिनारायण' से 'षोडशी' तक के आठ शीर्षक प्रस्तुत किए गए हैं। प्रत्यक शीर्षक को कवि ने 'पाण्डुलिपि' संज्ञा दी है जो प्रयोग एवं अर्थ की दृष्टि से सर्ग, काण्ड, प्रकरण, अध्याय आदि की समानार्थी है। जिस प्रकार 'रामायण' में प्रत्येक 'काण्ड' के अन्तर्गत और 'महाभारत' में प्रत्येक 'पर्व' के अन्तर्गत अनेक अध्यायों में निबद्ध कथा-विन्यास मिलता है उसी प्रकार उपर्युक्त प्रत्येक शीर्षक में अन्य अनेक उपशीर्षकों की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक शीर्षक से पूर्व उसका कथासूत्र 'इतिहास किशोर' और 'हिन्दी शिशु' संज्ञक दो सूत्रधारों के कथन के रूप में गद्य में प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न सम्बद्ध-असम्बद्ध, कथासूत्रों को एक साथ परस्पर सम्पृक्त किए जाने से कथानक जटिल वन गया है और प्रस्तुत अन्वितियों प्रायः बाधित हुई है। इसकी कथावस्तु को समझने के लिए विभिन्न धार्मिक-ऐतिहासिक परम्पराओं की विशिष्ट समझ अपेक्षित है। हिन्दी के साधारण पाठक के लिए इन कथासूत्रों के मर्म को समझ पाना सहज नहीं है।

प्रबन्धकाव्यों की रीति पर इस रचना में भी बहुत से पात्रों का नामोल्लेख है, जो अपने भावों-विचारों की अभिव्यक्ति से इस कृति का कथा-कलेवर पुष्ट करते हैं। कवि के सनातन प्रतीकार्थ में 'अथर्वा' प्रमुख पात्र है। दीर्घतमाः, वृद्धश्रवाः, श्वेतकेतुः, मधुछन्दा, मातरिश्वा, अपाला आदि पात्रों के नाम वैदिक साहित्य से चयनित हैं। अब्राहम, वज्रविरोचन, महमूद गजनवी, नौरंगजेब, बाजिद अली शाह, महात्मा गाँधी आदि अनेक पात्र-संज्ञाएँ इतिहास से सम्बन्धित हैं। डॉ. सिंह ने इनके कथनों के माध्यम से मानव सभ्यता पर इनके प्रभाव को परिलक्षित करने का यथा संभव प्रयत्न किया है। उसी में इनके व्यक्तित्व-कृतित्व की हल्की सी झलक मिल जाती है। पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य को रेखांकित करने में कवि की रुचि प्रायः नहीं रही है।

डॉ. आनन्द कुमार सिंह की इस काव्य-रचना का कथानक मुख्य रूप से 'उत्पाध' अर्थात् कल्पित कोटि का है। यद्यपि इसमें कथावस्तु बौद्ध धर्म ग्रन्थों, इतिहास-साहित्यादि ग्रन्थों से सूत्र रूप में चुने जाने और पात्रों के वैदिक-ऐतिहासिक स्रोतों से प्रतीक रूप में ग्रहण किए जाने से इसके कथानक में 'प्रख्यात' होने की गन्ध समाहित है किन्तु यह गन्ध अत्यन्त विरल है और कथानक का अधिकतम अंश कवि-कल्पित है। इसलिए इसकी कथावस्तु 'उत्पाद्य' कोटि में मान्य होने योग्य है। प्रस्तुत काव्यकृति के प्रारम्भ में डॉ. आनन्द कुमार सिंह ने इस रचना के कथास्रोतों पर 'रचना प्रक्रिया और ऋण ज्ञापन' शीर्षक से लिखा है- 'पांडुलिपियों की कहानी' गढ़ने में मैंने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की कृति 'अनामदास का पोथा,' जेम्स रेड फील्ड की

'सेलेशियल प्रोफेसी,' इको अम्बर्तो की 'द नेम ऑफ रोज' और खलील जिब्रान की कृति 'द प्राफेट' से सहायता ली है। कविता के भाषिक शिल्प पर प्रसाद, निराला, पंत, अज्ञेय, मुक्तिबोध और नरेश मेहता की शब्दावली मँडराती रहती है। सच्चिद्वेदना तंत्रालोक, प्रतिनारायण और अतिमानस के शीर्षक क्रमशः मुक्तिबोध, अभिनव गुप्त, गुबेरनाथ राय तथा श्री अरविंद से उद्धृत हैं। कुंडलवन के अंतिम चार अंशों को रचने में वासुदेव शरण अग्रवाल की 'भारत सावित्री' से सहायता ली गयी है जबकि कृति की दार्शनिक उड़ान रचने में श्री अरविंद की 'सावित्री,' प्रसाद जी की 'कामायनी' और दिनकर जी की 'उर्वशी' ही आदर्श रही है। पूरी कृति में इनकी प्रतिध्वनि मिलेगी... । ' (पृष्ठ 10) डॉ. सिंह की इस ईमानदार स्वीकारोक्ति से स्पष्ट हैं कि विषय की दृष्टि से उनकी यह रचना अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की एकान्वित प्रस्तुति है जिसे काव्य-सृजन की रेचन-विरेचन प्रक्रिया द्वारा रचना गया है। कथा-विस्तार की व्यापकता भी इसी ओर संकेत करती है। सथ ही डॉ. सिंह के अध्ययनशील स्वभाव और कठिन अध्यवसाय की भी साक्षी है। साहित्य, दर्शन, इतिहास, और समाज के उलझे सूत्रों से ग्रंथित इस काव्यकृति की कथा किसी तपस्वी के जटिल-जाल सी है जिसे सुलझाने और समझने के लिए इस रचना के रचनाकार जैसा ही गहन-गंभीर अध्ययन अपेक्षित है। यह विशिष्ट कृतिकार की वह विशिष्ट कृति है जो विशिष्ट पाठक की विशिष्ट निधि है। हिन्दी का सामान्य पाठक वर्ग जो उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण साहित्यिक-ऐतिहासिक कृतियों से नितान्त अपरिचित हैं, इस रचना का मर्म समझ पाने में कठिनाई अनुभव कर सकता है। तथापि कवि का यह सारस्वत-श्रम विशिष्ट बौद्धिक वर्ग के लिए तो निश्चय ही आनन्दप्रद सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। कृति अपने कृतिकार के व्यक्तित्व की छाया होती है, यह तथ्य भी इस ग्रंथ से प्रमाणित होता है। डॉ. सिंह का दार्शनिक व्यक्ति, उसमें निहित अज्ञेय के प्रभाव की अज्ञेयता, बौद्ध-मान्यताओं और विश्वासों में उनकी रुचि और भारतवर्ष की सम सामयिक राजनीतिक-सामाजिक स्थितियों के गंभीर प्रभावों की प्रतिछायाएँ- सबकी संयुक्त प्रस्तुति ने इस ग्रंथ को ऊर्जास्वित कर महत्त्वपूर्ण बनाया है।

मानव सभ्यता के इतिहास लेखन में सत्ता अधिष्ठानों पर प्रतिष्ठित शक्तिमंत इतिहास लेखकों से अपने हित में लिखवाते रहे हैं, बुद्धिजीवियों, कलावन्तों और कवियों को पद-पुरस्कार देकर अपने पक्ष में करते रहे हैं। सामन्तवादी राजतन्त्र का युग बीत जाने के बाद आज भी सत्ता का स्वभाव अपरिवर्तित है। वह लोकतन्त्र की छाया में भी 'कलम' खरीदने का यत्न करता है और इस तथ्य की साक्षी 'अथर्वा' की निम्नांकित पंक्तियों में साफ सुनाई देती है- 'सिर्फ परकोटों और धान्यागारों को भरने के लिए ही उपयोगी हैं इतिहास जन, शरण्य हैं कलाविद मात्र ताँबे की कुल्हाड़ियाँ बनाने को।

एक मात्र बस, वे ही वे ही मूल्यवान शरण्य हैं, न जाने।।' (पृष्ठ 71)

'ताँबे की कुल्हाड़ियाँ' - प्रयोग की व्यंजना युगीन विडम्बना को दूर तक व्यक्त करती है। मानव-मनीषा एक स्वर से संसार के रचनाकार के रूप में एक ही ईश्वरीय शक्ति की कल्पना करती रही है। संसार के सभी धर्म और आस्तिक दर्शन उस अज्ञात परम सत्ता को मान्य देते हैं किन्तु धर्म का ढोंग रचने वाली धार्मिक विस्तारवादी दृष्टि आज भी धर्म के नाम पर रक्तपात करने, कुचक्र रचने में व्यस्त है। 'तद्वन संगीत' की निम्नांकित पंक्तियाँ युग जीवन के इस निर्मम सत्य को इन शब्दों में व्यक्त करती हैं-

'उस अविनाशी एक सत्य की/अनेकान्तता दली गयी है
वहाँ धर्म का ढोंग किराये पर चलता है/बहुत नहीं, पर वह चलता है।' (पृष्ठ 84)

पाण्डुलिपि : ग्यारह के 'समुद्र कल्प' शीर्षक में 'धर्मचक्र' उपशीर्षक के अन्तर्गत डॉ. आनन्द कुमार सिंह ने अपने युग की परिस्थितियों का तथ्यपूर्ण विवेचन करते हुए बिना किसी पूर्वाग्रह ग्रस्त धर्मरूढ़ि में बँधे युक्तियुक्त संदेश देकर इस रचना को सार्थक बनाया है –

'भिक्खुओं, मत करो ध्यान/पहर यह ठीक नहीं है
अभी भी दुखों में डूबी है पृथ्वी। / इधर गान्धार जनपद में अभी भी घटाटोप अँधेरा है
सब कुछ ठीक नहीं है फिल्हाल / यहाँ हवाएँ आतंक और घृणा की
बन चुकी हैं हिंसक आँधियाँ /भिक्खुओं, प्रार्थना का समय बीतने लगा है।' (पृष्ठ 274)

अपने युग की आतंकवादी हिंसक गतिविधियों के शमन में सद्भावों की सत्विक सदुपदेशात्मकता की विफलता से व्यथित डॉ. आनन्द कुमार सिंह क्षत्रियोचित भावोत्तेजना महाकवि दिनकर के स्वर में स्वर मिलाकर आपद्धर्म के रूप में युद्ध के लिए भी सन्नद्ध रहने, वीरभाव जाग्रत करने के लिए प्रबोधित करती है–

'फूँको मन्त्र ज्वाल रसना से पढ़ो गगन तक भास्वर,
शौर्य रचो उज्जवल दिगनत तक ज्वाला लहराने दो!
बढ़ हिमाद्रि पर रखो चरण निर्भय भूगोल दबाकर,
गढ़ो नया इतिहास सुलगने दो वाडव ज्वाला को
पन्थ नमित हो दे देगा फिर एक बार रत्नाकर।' (पृष्ठ 383)

'अथर्वा' की भावभूमि में वैचारिक सम्पदा का वर्चस्व है। डॉ. सिंह ने यान्त्रिक सभ्यता के संत्रास से मुक्ति के लिए पुनः प्रकृति की ओर लौटने का आग्रह किया है। पाण्डुलिपि : दो 'वातायन' शीर्षक में 'वरिवस्या' के अन्तर्गत रचित निम्नांकित पंक्तियाँ इस संदर्भ में निम्नवत दृष्टव्य हैं–

'ओ मेरी जननी वनदेवी/मैं तेरा शिशु तू फिर से मुझे जन,
फिर से लौटा दे मुझे/वनानियों के तृणगुल्म पथ...'
ओ मेरी माँ शैलोदा वत्सला शैलझरा /तू अपनी धारा से मुझको भिगो
छू सकूँ तेरा मन/मुझे गोद में वनौषधि पिला
मेरी अम्बा, कर तू प्रलय में सृजन! (पृष्ठ 88)

आडम्बरों, पाखण्डों और रूढ़ियों के मकड़जाल में जकड़ा मनुष्य विकास नहीं कर सकता। विकास के लिए तर्कशील स्वतन्त्र चेतना आवश्यक है। समकालीन समाज उपर्युक्त बन्धनों में बँधकर, खण्डित समूहों में विभक्त होकर संघर्षरत है। इस सनातन संघर्ष को शान्त करने के लिए डॉ. आनन्द कुमार सिंह स्वातन्त्र्य एवं सवायत्तता को महत्त्व देते हैं–

'उड़ती हुई चिड़ियों के पदचाप पड़ते नहीं हैं गगन में खुले पंखों वाले तिरते हैं। अपने अनुभव के बल से सर्वथा अपने ही पथ पर अलग-अलग जीवन विहंगम बस जीवन का सूत्र भी यही है। कैद किया है हमने उसे अपनी मूढ़ताओं के विपर्यय में इसलिए नहीं खिल सके हैं समूहजन!' (पृष्ठ 161)

डॉ. आनन्दकुमार सिंह मानवीय धरातल पर विश्व बन्धुत्व की संपोषक चेतना के संवाहक हैं किन्तु उनकी राष्ट्रीय भावना विश्वस्तर पर व्याप्त सर्वग्रासी-युद्धोन्मादी मानसिक विकृति के समक्ष आत्म समर्पण करने अथवा तथाकथित शान्ति की बलिवेदी पर अपनी राष्ट्रीय अस्मिता और सांस्कृतिक गौरव की बलि देने

को प्रस्तुत नहीं है। पाण्डुलिपि चौदह में 'जम्बूद्वीप' के अन्तर्गत प्रस्तुत 'चिन्मय भारत' में उनकी राष्ट्रीय भावना का यह स्वरूप प्रभावपूर्ण ढंग से प्रकट हुआ है। भारत के स्वरूप-वर्णन और उसने भावी नेतृत्व के संदर्भ में प्रस्तुत कवित-दृष्टि अत्यंत महत्त्व की है- भारत वर्ष का निम्नांकित वर्णन-

'भारत महा ज्योति भूमा है, सीमाबद्ध नहीं है,
सूक्ष्म चेतना है विराट मंगल की, ऊर्जाद्रव से
बनी हुई इसकी सीमाएँ भूमण्डल पर प्रसरित,
भारत एक प्रतीक देश है जिसका सृजन-विसर्जन
आत्माओं के कर्मपन्थ को खोल दिया करता है...' (पृष्ठ 381)

'भारत वर्ष के भावी नेतृत्व को रेखांकित करती निम्नांकित पंक्तियाँ भी इन्हीं भवों से समृद्ध हैं-'

'आगे चलकर नए राष्ट्र जो भी नेतृत्व करेंगे
भारतवंशी होंगे वे चेतना और प्रतिभा में,
मिलकर वे ही खोज सकेंगे नए राष्ट्र को फिर से
पुनः जगाकर भारत को अवभृथ स्नान करेंगे।' (पृष्ठ 381)

'अथर्वा' की कथा में वैदिक, बौद्ध आदि दार्शनिक परंपराओं की विविध धाराएँ साथ-साथ प्रवाहित हुई हैं। उपनिषद की मान्यता है कि उसी परमात्मा का प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है- 'न तत्र सूर्यो भाति, न चन्द्र तारकम्... तस्य भासा सर्वमिदम् विभाति' - यही दृष्टि 'केवल मैं' शीर्षक में व्यक्त हुई है-

'जहाँ न पथ है न विपथ/जहाँ न काल है न व्योम
जहाँ न विस्मय है न स्फुरण/जहाँ न गति है न प्रकाश
जहाँ न जल है न वैश्वानर.../वाक् का शृंगार उद्गीथ प्रणव
मानस वन में अस्पर्श नाद भरता/मैं वही वन हूँ!' (पृष्ठ 120)

इसी शीर्षक में 'श्रीमद् भगवद गीता' में वर्णित विराट रूप के दर्शन में श्रीकृष्ण के आत्म परिचय का प्रभाव ध्वनित हुआ है। निम्नांकित पंक्तियाँ इस तथ्य की परिचायक हैं-

'मैं निद्रा मैं ध्यान मैं करुणा मैं काव्य/मैं अमृत और हलाल
मैं वैवस्वत यम मैं समुद्र और मन्दराचल/मैं रत्न और राशि मैं योजक और गोप्ता
मैं यज्ञ मैं होता मैं मन्त्र मैं फल...।' (पृष्ठ 120)

अन्य दार्शनिक अवधारणाओं की प्रस्तुति ने भी इस काव्यकृति को समृद्ध किया है। रचना का समापन अंश संस्कृत काव्यों की परम्परा के अनुरूप मंगलकामलनाओं की अभिव्यक्ति से हुआ है।

कवि की मंगलभावना का समुत्कर्ष देखते ही बनता है-

'वाणिज्य के छल-छन्द शान्त हों,/बुद्धि का विकास हो
धर्म है प्रकृति की चेतना/उसी की जय हो...
वसुधा प्रतिक्षण शान्त हो/सभ्यता -संस्कृति-प्रकृति के सुमेल से
बढ़े जगमंगल/अचल हो!' (पृष्ठ-413-414)

भाव एवं विषय-बोध की व्यापकता के अनुरूप प्रयुक्त काव्यभाषा के प्रभाव ने इस रचना को अपूर्व

उत्कर्ष प्रदान किया है। संस्कृत निष्ठ तत्सम प्रधान शब्दावली में सन्निहित अलंकारिकता, बिम्बात्मकता, प्रतिकात्मकता और लयात्मकता ने इस काव्यकृति के कलापक्ष को चारूतर बनाया है। उपमा के उचित प्रयोग इस कृति में सपृहणीय हैं। इस संदर्भ में एक अंश निम्नवत दृष्टव्य है–

'...यह जीवन्त इतिहास एक मरियल बैल–सा
मुँह से झाग फेंकता–सा लगता है
हम कहीं सब कुछ से छूट न जाएँ।
मुझे मय है अथर्वन् मुँह फाड़े व्याघ्र–सा यह दूसरा इतिहास
हमें लील न ले, लील न ले कहीं...' (पृष्ठ - 71)

इस अकेले अंश में 'बैल–सा' और 'व्याघ्र–सा' प्रयोग सार्थक अमान चयन के कौशल का निदर्शन करते हैं तो इनमें अन्तर्निहित प्रतीकात्मकता भी प्रभावित करती है। शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत चित्रात्मकता दृश्यात्मक बिम्बों की सृष्टि में सफल हुई है। 'लील न ले, लील न ले कहीं' में एक ओर 'भय' संचारीभाव प्रकट हुआ है तो इन वर्णों में प्रस्तुत अनुप्रासिकता भी स्पृहणीय है। पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार भी इन पंक्तियों में दृष्टव्य है। निम्नांकित पंक्ति में अनुप्रास अलंकार और नाद–बिम्ब की संयुक्त प्रस्तुति अपूर्व बन पड़ी है–

'डमड् डमड् डम् डम् ...
डमड् डमड् डम् डम् ...। (पृष्ठ–75)'

निम्नांकित पंक्तियों में छान्दसिकता, वर्ण बिम्बात्मकता, मानवीकरण की अलंकारिकता डॉ. सिंह की सिद्ध काव्यप्रतिभा की उत्तम साक्षी है–

'सोने के रस से दिन पीले
रात चाँदनी भर लाती है/कर देती है देह रूपहली
छाया के आकाश पनपता/साँस छोड़ती सौरभ गीले...
ताक रही है मुझे अकेली/चिड़िया खोले अपनी पाँखें
कहती जैसे –
तू भी मुक्त गगन में जी ले!' (पृष्ठ 85–86)

जहाँ उपर्युक्त पंक्तियों में गीतात्मकता संवलित पद्य चरम सौन्दर्य व्यक्त हुआ है वहीं इस रचना की निम्नांकित गद्य पंक्तियाँ कथा का आनन्द प्रदान रकती हैं–

'वहीं ह्वेनसांग का आज दोपहर का कलेवा था जिसे खाकर वह दोपहरी में खुले आसमान के नीचे एक लकड़ी की चौकी पर जिस पर मुंजवन्त की सूखी घास के ऊपर कौशेय चादर बिछा दी गई थी उसी पर बहुत थोड़ी देर के लिए उटंग रहा था।' (पृष्ठ 169)

इस प्रकार भाव, विषय और शिल्प की दृष्टि से यह रचना सर्वथा नवीन प्रयोग है। डॉ. आनन्द कुमार सिंह की प्रयोगोन्मुखी रचना चेतना ने इसे अधिकाधिक प्रभाव सम्पन्न बनाने के लिए सर्वोत्तम प्रयत्न किए हैं। उनका यह सारस्वत श्रम साहित्यिक वर्ग में समादृत हो इस मंगल कामना के साथ! सादर।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9893189646

चिट्ठी

साक्षात्कार का अप्रैल 2021 का अंक मिला। पढ़कर बेहद खुशी हुई। इतने अच्छे अंक के लिये कोटि-कोटि बधाईयाँ। संपादकीय में आपने समीक्षा क्षेत्र की विस्तार से चर्चा की जिसमें समीक्षा क्षेत्र की बारीकियों को समझाया। इतने अच्छे संपादकीय के लिये ढेर सारी बधाईयाँ। उषा यादव जी का डॉ. विकास दवे जी द्वारा लिया हुआ साक्षात्कार पठनीय है। जिसमें उषा जी की साहित्यिक यात्रा के बारे में ढेर सारी जानकारियाँ मिलीं। लेख, आलेख भी अच्छे हैं। प्रकाश मनु जी की आत्मकथा कुछ सतरें पिता के बारे में दिल को छू लेने वाला आत्मकथ्य है। सुषमा मुनींद्र जी का संस्मरण, डॉ. रंजना जायसवाल जी की कहानी मैं का से कहूँ पठनीय है। लघुकथाएँ और विविधरंगी कविताएँ मन को मोह लेती हैं। समीक्षा क्षेत्र में किताबों की समीक्षा की प्रस्तुति अच्छी है। कुल मिलाकर साक्षात्कार का यह अंक भी हमेशा की तरह पठनीय और संग्रहणीय है।-**माधुरी राऊलकर, नागपुर (महाराष्ट्र)**

साक्षात्कार का अंक 490 अप्रैल 2021 जो एक नये कलेवर में है। यह पत्रिका कई साल बाद हस्तगज हुई है। शायद कोरोना काल प्रमुख कारण रहा हो। यद्यपि पिछले अंकों में मेरी उपस्थिति रही है, किन्तु मैंने भी लगभग दो साल से कोई रचना नहीं भेजी। आपने संपादकीय में समीक्षा को लेकर जो चिंता प्रकट की है वह उचित ही है, उसका सुझाव भी दिया जो सार्थक लगता है। रचनाकार को स्वयं अपनी रचना की समीक्षा करना भी उचित लग रहा है।-**वीरेन्द्र आस्तिक, कानपुर (उ.प्र.)**

'सात्क्षात्कार' का मई-जून-जुलाई, 2021 (संयुक्तांक) प्राप्त हुआ। श्रेष्ठ रचनाओं के लिए साधुवाद। सभी रचनाएँ भारतीय संस्कृति एवं अध्यात्म के प्रति समर्पित हैं। डॉ. राम परिहार जी का ललित निबंध 'प्रकृति का गीत : सत्य का संगीत' आकाश में लिखी जा रही प्रकृति की कविता- अत्यंत मनभावन है। कृष्ण मुरारी त्रिपाठी की रचना 'पीड़ा का कालकूट पी! महाप्राण बने निराला, डॉ. आशा मिश्रा 'मुक्ता' की स्मृति रचना आँख नम और हृदय बोझिल शब्द कहाँ से लाऊँ गहरी संवेदना से परिपूर्ण हैं। बड़ी स्पष्टवादिता के साथ लिखा गया संपादकीय आलेख 'धिक्कार है ऐसे रचनाकर्म को' स्वागत योग्य है। बधाई एवं शुभकामनाएँ। **ऋता शुक्ल, राँची (झारखण्ड)।**

R.N.I.३०९९३/७६

आज़ादी का अमृत महोत्सव

साहित्य अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, बाणगंगा, भोपाल (म.प्र.)